पूज्य श्री काशीराम जी

अर्थात्

बाल ब्रह्मचारी परम प्रतापी पूज्य श्री पंजाब-केसरी
श्री १००८ आचार्य काशीराम जी महाराज
का दिव्य-जीवन-चरित ।

लेखक

'हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार' 'आदर्श निबन्ध निकुञ्ज'
'आधुनिक महाकवि' 'छन्दोलंकार दीपिका' 'आधुनिक कविता-
अलि' 'नव्य कविता कुञ्ज' 'वासन्ती' 'पद्मावत भाष्य'
आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक व सम्पादक

साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

पं० भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी

शास्त्री, प्रभाकर, बी० ए०

तथा

श्रीमती शकुन्तला देवी 'सुधा'

प्रकाशक

श्री सोहनलाल जैन ग्रन्थमाला

प्रथम वार १०००] [मूल्य ३)

प्रकाशक :
श्री सोहनलाल जी जैन,
ग्रन्थमाला ।

स्मरण रखिये

इस पुस्तक तथा पूज्य श्री प्रधानाचार्य सोहनलाल जी महाराज के जीवन-चरित्र व शुक्ल रामायण दोनों भागों की बिक्री से जो धन प्राप्त होगा वह फिर दूसरे सात्विक और सद्विचारों के प्रचारक साहित्य के प्रकाशन में ही व्यय होगा।

अतः कोई भी सज्जन इन पुस्तकों को बिना मूल्य प्राप्त करने का प्रयत्न न करें।

यह श्रद्धालु श्रावकों का परम पवित्र कर्तव्य है कि वे इन पुस्तकों की प्रतियां खरीद कर साधुसाध्वियों तथा अन्य अधिकारी ऐसे जिज्ञासु जनों को जो स्वयं नहीं खरीद सकते, भेंट कर साहित्य के प्रचार में सहायक बनें।

मुद्रक :
सम्राट् प्रेस,
पहाड़ी धीरज, देहली।

समर्पण

त्वदीयं वस्तु हे शुक्ल ! तुभ्यमेव समर्पये

पूज्य श्री १००८ काशीराम जी महाराज के
परम प्रिय शिष्य
युवाचार्य किंवा मन्त्री पद विभूषित
बाल ब्रह्मचारी परम प्रतापी सरलता सौम्यता व शान्ति के
साकार स्वरूप

श्री १००८ पं० शुक्लचन्द्र जी जी महाराज

के

कर-कमलों में सादर समर्पित
यह ग्रन्थ
चतुर्विध श्री संघ की सेवा में
अमूल्य उपहार के रूप में
भेंट

दान दाताओं की सूची

५००) श्री जैन श्रीसंघ बलाचोर
(यह रुपये पहले पुस्तक
पर खर्च किए गये)

३०१) श्रीमती इन्दरकौर
धर्मपत्नी स्व० भगवान
दास जी अमृतसर

२५०) श्रीमती पेड़ादेवी
मातेश्वरी श्रीपाल शाह
सत्तपाल (अमृतसर)
सदर बाजार देहली

२०१) श्रीमान् नत्थूमल चिरञ्जी-
लाल जैन
(खानगाह डोगरा वाले)
सदर बाजार देहली

१५१) श्री सुरजभान राजकुमार
(राजपुर वाले)
कटरा सत्तनारायण
चांदनी चौक देहली

१०१) श्री अशर्फीलाल ऊदोराम
जैन सराफ कान्दला
जिला मुजफ्फरनगर

१०१) श्री कुन्दनलाल सुन्दर-
पाल जैन चुड़ी वाले
सदर बाजार देहली

१०१) श्री ज्वालाप्रसाद रंगीलाल
जैन
क्लोथ मर्चेंट्स
सदर बाजार देहली

१०१) श्री मनोहर लाल जैन
बलाचोर

१०१) श्री अमरचन्द वलायती-
राम जैन
सदार बाजार देहली

१०१) श्री दौलतराम
प्रकाश चन्द जैन
अम्बाला शहर
(लाहौर वाले) सदर
बाजार देहली ।

१०१) श्री लक्ष्मीचन्द रामलाल
जैन सराफ अम्बाला शहर

१०१) श्री वहुमल झोपड़ सेन
जैन
कान्दला

१०१) श्री जसवंतसिंह जैन (हांसीवाले) सब्जी मंडी देहली

५१) श्री शिवलाल नानकचन्द जैन जौहरी, कटरा तम्बाकू नया बाजार देहली

५१) श्री मुन्नालाल गुजरमल जैन नवां शहर दोआबा

५१) श्री सुमेरचन्द दरयागंज देहली

५०) श्री खजानचीलाल दिवानचन्द जैन बलाचोर

५०) मातेश्वरी श्रीतिलकचंद अमृतसरवाले

५०) श्री वैष्णवदास चिरंजी-लाल जैन सदर बाजार देहली (अमृतसर वाले)

३५) गुप्त दान

२५) श्री उदोसिंह श्रीचन्द जैन चिराग देहली

२५) श्री शादीलाल तिलकचन्द जैन जम्मू वाले

२१) श्री तेलूराम अम्बाला शहर

२१) श्री बेलीराम ताराचन्द सरफ दरीबाकलां देहली

११) श्री खजानचन्द राजाखेड़ी

योग २७५२)

विषय-सूचि

प्राक्कथन

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।

—श्रीमद्भगवद्गीता

प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के पावन जीवन-चरित का अध्ययन, मनन तथा श्रवण करते हुए गीता के उक्त श्लोकों का सहसा स्मरण हो आता है, जिन में कहा गया है कि पिछले जन्म के योगभ्रष्ट योग-मार्ग में चलते-चलते किन्हीं विशेष प्रवृत्तियों के कारण जो फिर सांसारिक जीवन बिताने के लिए आते हैं महापुरुष दूसरे जन्म में पवित्र धर्मात्मा धनवानों के घर में जन्म लेते हैं और वहां पर अपने पिछले जन्म के योग-साधन के संस्कारों को फिर से प्राप्त कर उसी साधनापथ के पथिक बन जाते हैं। जिसके जन्म-जन्मान्तरों के दृढ़ संस्कार न हों वह कभी इस जन्म में ऐसा विरक्त संत नहीं बन सकता। अनेक जन्मार्जित सात्विक संस्कारों के बिना कोई भी इस जन्म में ऐसा विरक्त महापुरुष नहीं बन सकता, यह निश्चित है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि—

सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला,

पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ।

अर्थात्—

'सती नारी निश्चल प्रकृति परलोक हू संग जात' भाव यह कि मनुष्य के दृढ़ संस्कार अनेक जन्मों तक उसके साथ जाते हैं।

साधुवृत्ति ग्रहण करने के लिये पूज्य श्री काशीराम जी महाराज ने आठ वर्ष की छोटी सी अवस्था से लेकर अठारह वर्ष तक अत्यन्त भयंकर कष्ट सहने पर भी अपने लक्ष्य से एक क्षण के लिए भी अपना मुख नहीं मोड़ा और साधुवृत्ति ग्रहण करने के पश्चात् भी उस विरक्ति के प्रशंस्त पथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर ही होते गए।

इसीलिए तो पूज्य श्री काशीराम जी महाराज की जन्म कुण्डली को देखकर उस दिन प्रातः स्मरणीय सर्वतन्त्र स्वतन्त्र ब्रह्मनिष्ठ श्री १००८ अमृतवाग्भव जी महाराज के मुख से अनायास ही निकल पड़ा कि—

'यह तो किसी जन्मान्तर के योगी की जन्म कुण्डली है, इन्हें लययोग का अच्छा अभ्यास रहा होगा और किसी विशिष्ट महापुरुष के साथ इनका अवश्य सम्पर्क रहा है।'

यह कहते-कहते आप ऐसे तन्मय हो गये कि मानो एक योगी को दूसरे महान् योगी का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो रहा हो।
इसी अवसर पर आपके मुख से—

'नरो योगभ्रष्टो मुहुरनुयोगाय यतते'❀

आदि पद्य भी निकल पड़ा। हम तो पहले ही प्रत्येक कार्य और

❀ यह पूरा पद्य आगे २८८ पृष्ठ पर उद्धृत किया गया है।

घटना पर विचार करते हुए प्रतिक्षण सोचा करते थे कि वास्तव में पूज्य श्री पंजाब केसरी भवान्तर के ही योगी थे, पर इस प्रत्यक्ष दर्शन ने तो हमारे उस विश्वास को शत प्रतिशत सत्य सिद्ध कर अत्यधिक सुदृढ़ कर दिया। वास्तव में पूज्य श्री एक बड़े ही दिव्य सन्त थे।

सन्तों के जीवन का अध्ययन करते समय हमें उस में कुछ अलौकिक चमत्कार ढूंढने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। साधना के मार्ग पर अग्रसर होने वाले साधक लौकिक सिद्धियों को प्राप्त करने के चक्कर में कभी नहीं पड़ते। यद्यपि सब सिद्धियां स्वभावतः उनकी अनुवर्तिनी होती हैं।

सच्चे साधु कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते जिससे प्रकृति के नियम भंग होने की सम्भावना हो। इसीलिए जादूगरों के समान कोई अद्भुत घटना या कार्य कर दिखाना महापुरुषों के जीवन का लक्ष्य कदापि नहीं होता, अतः जिज्ञासु जनों को किसी महापुरुष या सच्चे संत का जीवन चरित पढ़ते समय उसमें कुछ अलौकिक चमत्कार ढूंढने का प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि तात्विक दृष्टि से देखने पर तो महात्माओं के सम्पूर्ण जीवन का एक-एक क्षण चमत्कार पूर्ण प्रतीत होता है।

जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त साधना के असिधार व्रत पर चलना-साधु नियमों का अक्षरशः पालन करना-ही क्या कम चमत्कार है। हम गृहस्थी तो एक आध दिन ही कोई व्रत रखना पड़ जाय-किन्हीं विशेष नियमों का पालन करना पड़ जाए-तो घबरा जाते हैं, कुछ घण्टों के लिए भी अपनी सांसारिक प्रवृत्तियों का परित्याग नहीं कर सकते, तो फिर जो संत जन्म भर अपनी पांचों ज्ञानेद्रियों और पांचों कर्मेद्रियों को वश में रख सब विषय वासनाओं से मन को मोड़ लेते हैं, यह क्या कोई सहज कार्य है? हम संसारी प्राणी तो अपने मन के ऐसे क्रीतदास हैं कि यह जब जहां भटकाता है, वहीं इसके पीछे दौड़ पड़ते हैं।

जिह्वा ने कहा कि आज अमुक फल, पदार्थ या पक्वान्न खाऊँगी और हम तत्काल वही ले आए। नेत्रों ने कहा कि आज हम अमुक नाटक, सिनेमा, खेल-कूद या मेला तमाशा देखेंगे और झट वहाँ जा पहुँचे। कानों ने कहा कि हम अमुक संगीत सुनेंगे कि उसी क्षण ग्रामोफोन या रेडियो लगाकर सुनने लगे। शरीर ने कहा कि हम तो आज ऐसे बढ़िया वस्त्र पहनेंगे और वैसे ही सूट धारण कर लिए। पर संतों के कठोर व्रत का क्या कहना जो न तो अपनी जिह्वा के स्वाद को पूर्ण करने के लिए कभी कुछ खाते ही हैं, न नेत्रेन्द्रिय की तृप्ति के लिए विविध मनोहर दृश्य ही देखने जाते हैं, न स्वेच्छा पूर्वक विविध रङ्ग-बिरंगे वस्त्र ही धारण करते हैं, उन्हें तो गोचरी करते समय जो कुछ नियमबद्ध आहार प्राप्त हो गया, उसी को प्राप्त कर परम सन्तुष्ट रहना होता है, जिह्वा के रस पर परिपूर्ण विजय प्राप्त करनी होती है। स्थानक से आहार आदि लेने के लिए श्रावकों के घरों तक या दिशा जंगल के सिवा वे अनावश्यक रूप से कहीं आ-जा भी नहीं सकते। रात्रि के समय तो भले ही प्राण ही क्यों न निकल जाएं पर न तो कोई अन्नजल औषधि आदि ग्रहण करना और न अपने स्थान को छोड़ कर बाहर ही जाना, यह कितना कठोर व्रत या साधु नियम है। इस प्रकार के साधु नियमों का अक्षरशः पालन करना सचमुच तलवार की नंगी धार पर चलने के समान ही कठिन है।

भाव यह कि जो लोग किसी अलौकिक चमत्कार को ही देखने के इच्छुक हों उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि महापुरुष के जीवन का तो एक-एक क्षण चमत्कार पूर्ण ही होता है, पर वह चमत्कार दिखाता है आंख वाले को। जो विषय वासनाओं में लीन होकर स्वार्थान्ध हो रहा है, वह उन सन्तों की महिमा को कैसे देख सकता है, जो नंगे पाँव नंगे सिर देशदेशान्तरों में घूम-घूम कर शीत, आतप, वर्षा आदि नानाविध परीषहों को सहकर, मान अपमान, क्षुत् पपासा आदि द्वन्द्वों

की परवाह न कर ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में जाकर प्राणीमात्र को आत्मकल्याण का दिव्य सन्देश देते फिरते हैं।

हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना रामचरित मानस में पंजाब केसरी पूज्य श्री काशीराम जी महाराज जैसे सन्तों की महिमा का वर्णन करते हुए बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति के साथ प्रणाम किया और कहा है कि—

पुनि प्रणवौं हों संत समाजू। जे जग जंगम तीरथराजू।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि पावनचरित्र संत पुरुष चलते-फिरते तीर्थराज ही होते हैं, और तीर्थों पर तो हमें जाना पड़ता है, पर संत रूपी तीर्थ तो स्वयं चलकर हमारे यहाँ पहुँचता और हमारा उद्धार करता है। आत्मकल्याण और लोककल्याण ही जिनका एक मात्र व्रत है, ऐसे उदारचेता पूज्य श्री काशीराम जी महाराज जैसे सन्तों को पाकर भारत भूमि और श्रीसंघ कृतार्थ हो गया था।

पूज्य श्री के जीवन की एक-एक घटना स्मरणीय और अनुकरणीय है। जिन लाखों साधु साध्वियों व श्रावक-श्राविकाओं को पूज्य श्री के सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ था, वे सब उस महान् सन्त के विविध मधुर संस्मरणों का वर्णन करते हुये गद्‌गद् हो जाया करते हैं। साधु के पंच महाव्रतों का पंजाब केसरी पूज्य श्री कितनी कठोरता से पालन करते थे इसके सैंकड़ों प्रमाण और निदर्शन प्राप्त होते रहते हैं।

एक बार पूज्य श्री पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज आदि अपने शिष्य मुनिगणों के साथ कपूरथला से जालन्धर की ओर आ रहे थे। सड़क के मार्ग से ३-४ मील का चक्कर पड़ता था अतः साथ के सन्तों ने पगडण्डी से चलने की विनति की।

पगडंडी को साफ-घास दूब आदि से रहित देख कर पूज्य श्री ने पगडंडी से चलने की अनुमति दे दी। पर दो ढाई मील चलने पर

मार्ग में हरी दूब आ गई, कहीं भी सूखा मार्ग दिखाई नहीं दिया, फलतः पूज्य श्री तत्काल वापस लौट पड़े।

साधु नियम पालन के प्रति यह कितनी दृढ़ और अटल आस्था है, एक आध फर्लाङ्ग के टुकड़े में मामूली सी दूब आगई, इसके लिए वापस लौटना स्वीकार है, भले ही ४–५ मील का चक्कर ही क्यों न पड़ जाय; पर यह स्वीकार नहीं कि साधु नियमों में तिल मात्र भी त्रुटि आ जाय।

आपकी अपरिग्रहशीलता की तो सैंकड़ों स्मृतियाँ सुनने को मिला करती है। जिनमें से एक दो को यहां उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—

पूज्य श्री का चातुर्मास बंबई में है, बंबई श्रीसंघ के मंत्री जी तथा दो एक अन्य भाई पूज्य श्री के दर्शनार्थ आए हुए हैं, उनकी ऐनक पूज्य श्री के ठीक लग जाती है। अतः पूज्य श्री पूछते हैं कि यह ऐनक कितनी कीमत की होगी?

'मामूली है गुरुदेव! इसे ग्रहण कर लीजिए' उत्तर मिलता है। इस पर पूज्यश्री उस ऐनक को ज्यों ही ग्रहण करने के लिए उद्यत होते हैं कि साथ में बैठे हुए दूसरे सज्जन बोल उठते हैं कि 'यह ऐनक बहुत सुन्दर है, इसके लेन्स नीलम के हैं, सात-आठ सौ रुपये की होगी, अवश्य स्वीकार कर लीजिए महाराज।'

बस फिर क्या था यह सुनते ही पूज्य श्री ने यह कहते हुए कि 'यह ऐनक हमारे काम की नहीं है' उस ऐनक को वापिस लौटा दिया।

ऐनक की आवश्यकता है, वह अनायास ही मिल भी गई है, उसका नम्बर भी ठीक है, भाई प्रार्थना कर रहा है—हाथ जोड़ रहा है कि इसे ग्रहण कर लीजिए, पर फिर भी अपने लिए अत्यन्त आवश्यक व उपयोगी ऐनक जैसी वस्तु को भी वे इसलिए ग्रहण नहीं करते कि उस की कीमत बहुत अधिक है और अपरिग्रह-व्रती साधु को ऐसी बहुमूल्य वस्तु नहीं रखनी चाहिए। बिना ऐनक के काम चला लेंगे या

जब मिलेगी तब देखी जायगी पर बहुमूल्य वस्तु कदापि ग्रहण नहीं करेंगे ।

धन्य है यह त्यागशीलता !

इस अवसर पर एक अन्य घटना का उल्लेख करना भी अप्रासंगिक न होगा—

पूज्य श्री गुजरात में बोरस गाँव के कलोल गाँव में जेसिंह भाई शान्तिलाल भाई के मिल के बंगले में ठहरे हुए हैं । विहार के समय शान्तिलाल भाई एक बहुमूल्य ऐसी सुन्दर गरम चादर पूज्य श्री को भेंट करना चाहते हैं जिसका वजन तो कुल पाव डेढ़ पाव है, पर जिसके अकेली के ओढ़ लेने पर भी सर्दी का कहीं नाम निशान भी नहीं रहता ।

पूज्य श्री की छाया के समान निरन्तर साथ रहने वाले पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज उस चादर को देख कर समझ लेते हैं कि पूज्य श्री ऐसी बहुमूल्य चादर को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, पर यह चादर ग्रहण कर ली जाय तो पूज्य श्री के वस्त्र आदि उठाकर ले चलने वाले मुनिराज (श्री त्रिलोकचन्द्र जी महाराज) का भार कम हो जायगा—तीन मोटी-मोटी चादरों के स्थान पर एक से ही काम चल जायगा—यह सोचकर उसे स्वीकार कर लेते हैं और उसके सम्बन्ध में पूज्य श्री से निवेदन कर देते हैं कि —

'शान्तिलाल भाई ने एक चादर दी है ।'

'कैसी चादर है लाओ दिखाओ' पूज्य श्री ने आज्ञा दी ।

'साधारण चादर है अब विहार की तय्यारी के कारण दूसरी चादरों के साथ बंध गई है, 'दिखाने के लिए आज्ञा हो तो लाई जाय' दूसरे मुनिराज ने उत्तर दिया ।

कोई बात नहीं खोल कर लाकर दिखा दो फिर बांध देना । पूज्यश्री ने स्पष्टता पूर्वक आदेश दिया । इस पर चादर खोल कर दिखाई गई और हुआ वही जिसकी पहले से संभावना थी ।

पूज्य श्री ने चादर को देखते ही तत्काल कहा कि यह चादर हमारे काम की नहीं है।

और उसी समय वह चादर वापिस लौटा दी गई। श्री शान्तिलाल भाई ने लाख अनुनय विनय की कि किसी प्रकार पूज्य श्री उनकी भेंट को स्वीकार करलें और निवेदन किया कि साधु के निमित्त निकाली हुई चादर को मैं वापस नहीं लौटाऊँगा, पर पूज्य श्री तो साधु नियमों में अणु मात्र भी शैथिल्य नहीं आने देना चाहते थे। उन्होंने उस चादर को किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया सो नहीं किया।

अन्त में वह चादर वहां पर विराजित हरिया पुरी सम्प्रदाय के सन्त श्री उत्तमचन्द जी महाराज को भेंट कर दी गई।

आज ऐसी अद्भुत त्याग भावना एक जैन संत के सिवा अन्यत्र कहाँ देखने को मिल सकती है।

पूज्य श्री का तप त्याग ऐसा दिव्य था कि छोटा या बड़ा एक साधारण व्यक्ति से लेकर बड़े से बड़े विद्वान् तक जो भी कोई पूज्य श्री के समक्ष एक बार उपस्थित हो जाता, वही आप से प्रभावित हो जाता।

सन् १६१४ की घटना है पूज्य श्री लाहौर में विराजित थे। आपके प्रवचनों की नगर भर में धूम मची हुई थी। क्या जैन क्या अजैन सभी पर आपके व्याख्यानों की गहरी धाक जमी हुई थी। इस समय कुछ विद्वान् प्रोफेसरों ने दयालसिंह कालिज लाहौर के तात्कालिक प्रिंसिपल श्री टी० एल० वस्वानी को पूज्य श्री के व्याख्यान श्रवणार्थ आमंत्रित किया। वे जब व्याख्यान भवन में आए तो कोई दूसरे संत व्याख्यान दे रहे थे। दो एक मिनट भाषण सुनने के बाद वस्वानी जी ने पूछा कि 'क्या इन्हीं का व्याख्यान सुनाने के लिए आप मुझे यहाँ लाए हैं'

'नहीं ये दूसरे संत हैं, उन महाराज का प्रवचन अभी आरंभ होने वाला है' उत्तर मिला।

तत्पश्चात पूज्य श्री के प्रवचन को सुन कर श्री टी० एल० वस्वानी अत्यन्त प्रभावित हुए और वे पूज्यश्री के अनन्य भक्त बन गए।

आगे चल कर यही प्रिंसिपल टी० एल० वस्वानी विश्व विख्यात थियासोफिस्ट धर्माचार्य, साधु टी० एल० वस्वानी के रूप में विख्यात हुए।

बात तो यह है कि पूज्य श्री का पुण्य प्रताप ही कुछ ऐसा था कि उनके सम्मुख उपस्थित होते ही सब शंकाओं का समाधान अपने आप हो जाता था। आपके व्याख्यान प्रवचन या उपदेश तो निमित्त मात्र होते थे। आपके दिव्य दर्शन होते ही प्रत्येक व्यक्ति की सब शंकाओं संदेहों और भ्रमों का निवारण हो जाता और वह व्यक्ति अपनी सब साम्प्रदायिक भावनाओं को छोड़ कर आपका अनन्य भक्त बन जाता।

जाति,समाज और राष्ट्र के प्रति पूज्यश्री के हृदय में अपार प्रेम हिलोरें लेता रहता था। अंधपरम्परा, रूढ़िवाद या थोथे बाह्याडम्बरों के आप कट्टर विरोधी थे। मुनि नियमों का कठोरता पूर्वक पालन करते हुए भी समाज सुधार के कार्यों में आप सदा सबसे आगे दिखाई देते थे।

पंजाब में तथा अन्य प्रान्तों में भी अनेक हिन्दू जन-अजैन मुसलमान बन रहे थे। इस प्रकार स्वधर्मी भाइयों को विधर्मी बनते देख पूज्य श्री का कोमल हृदय द्रवित हो उठता, और वे जहां तक हो सकता उन्हें पुनः स्वधर्म में लाने के लिये भरसक प्रयत्न करते। आपने पसरूर में, स्यालकोट और जंडियाला गुरु में अनेक मुसलमान बने हुए स्वधर्मी भाइयों को फिर जैन धर्म में दीक्षित किया और सब जैन परिवारों को कहा कि इनके साथ किसी प्रकार का भेद भाव का व्यवहार न किया जाय। तदनुसार सारी जाति उनके साथ बड़े प्रेम से पहले के समान ही खाती पीती रही।

यह है स्वजाति प्रेम की उत्कट भावना ।

पूज्य श्री का पुण्य प्रताप कैसा दिव्य और अनुपम था, इसकी कथाएं तो सहस्रों मुखों से प्रतिदिन सुनने को मिला करती हैं। उनमें से एक दो को उद्धृत करने के लोभ को हम रोक नहीं सकते।

देहली के प्रसिद्ध रईस श्री ला० ज्ञानचन्द जी एक बार अत्यन्त अस्वस्थ हो मृत्युशय्या पर पड़ गए। उस समय उन्होंने पूज्य श्री की सेवा में लिख भेजा कि अब तो मेरे बचने की कोई आशा नहीं है।

उस पर पूज्य श्री ने उन्हें सान्त्वना देते हुए लिखवाया कि चिन्ता की कोई बात नहीं, अभी आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा।

तदनुसार श्री ला० ज्ञानचन्द जी उस भयंकर बीमारी से बच गए और पूज्य श्री के स्वर्गवास के पश्चात् तक जीवित रहे। आपका स्वर्गवास अभी दो वर्ष पूर्व हुआ है।

इसी प्रकार दिल्ली के प्रसिद्ध लाला श्री टीकमचन्द जी जौहरी उर्फ 'लाट साहब' घातक रोग से आक्रान्त होकर हास्पिटल में मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे। सौभाग्य से उस समय पूज्य श्री दिल्ली चांदनी चौक बारहदरी में विराज रहे थे। लाला जी ने तब पूज्य श्री की सेवा में निवेदन करवाया कि 'अब मेरा अन्त समय निकट है अतः पूज्यश्री एक दिन हास्पिटल पधारकर मंगली सुनाने की कृपा करें तो बड़ा उपकार होगा।'

इस पर पूज्य श्री हास्पिटल पधार कर बोले कि 'अभी आपको बहुत दिन जीना है, इसलिए चिन्ता न करें, अच्छे हो जाएंगे।'

लाला जी तथा उनके परिवार के लोगों ने कहा—'महाराज, सभी बड़े-बड़े डाक्टरों ने जवाब दे दिया है, किसी को बचने की आशा नहीं है।'

पूज्य श्री ने यह सुन कर सब लोगों को तथा लाला जी को सान्त्वना देते हुए कहा कि 'घबराइए मत लाला जी इस रोग से मुक्त

हो जायेंगे। इनका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, मैं स्वयं इन्हें नित्य 'मंगली' सुनाने आया करूंगा।'

पूज्य श्री के आशीर्वादों से लाला जी उस मृत्युशय्या से बचकर आगए और अभी तक सानन्द जीवन यापन कर रहे हैं। (आप सं २०११ में स्वर्गसिधार गये) कहां तक लिखें ऐसे हजारों संस्मरण हैं, जिनसे पूज्य श्री का दिव्य प्रताप प्रकट होता है।

पूज्य श्री पंजाब केसरी श्री काशीराम जी महाराज वास्तव में एक ऐसे महापुरुष थे जिनके कारण क्या व्यक्ति क्या समाज, क्या राष्ट्र क्या धर्म, सभी को दिव्य लाभ पहुँचा है।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि संत पुरुष लौकिक या बाह्य दृष्टि से किसी का कुछ काम करते दिखाई नहीं देते। अश्रद्धालु जनों को ऐसा प्रतीत होता है कि ये साधु लोग करते क्या हैं, खाते पीते मस्त रहते और उपदेश दे छोड़ते हैं, या कथा आदि कर देते हैं, इस के सिवा कुछ नहीं करते।

किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि सन्तों की आध्यात्मिक साधना के बल पर ही जातियाँ उन्नति करती हैं। यह विश्वास रखिए कि जिस जाति में जितने अधिक पावन-चरित महात्मा होते हैं, वह जाति भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से उतनी ही उन्नत होती है। जैन समाज जो इतना श्रीसम्पन्न सुखी समृद्ध और उन्नत है उसका बहुत बड़ा श्रेय पावन चारित महात्माओं का है।

साधु साध्वियों के दिव्य प्रताप और शुभाशीर्वाद से ही चतुर्विध श्रीसंघ उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर अग्रसर हो रहा है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

परम प्रतापी पूज्य श्री काशीराम जी महाराज जैसे नैष्ठिक ब्रह्म-चारी तप त्याग और सदाचार के साकार रूपधारी महात्मा संत पुरुषों की पावन चरण रज के स्पर्श से जिन सौभाग्यशाली श्रावकों के प्रांगण पवित्र हो गये, उनके घरोंमें आठों सिद्धियां नवों निधियाँ अनायास विलास

करने लगती हैं। वास्तव में वे लोग धन्य हैं, जिन्हें पूज्य श्री जैसे पुण्य चरित महात्माओं की चरण रज प्राप्त करने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। महापुरुषों के दर्शन, उपदेश-श्रवण और सम्पर्क मात्र से ही मनुष्य के तीन जन्म के अघ-ओघ नष्ट हो जाते हैं, इसी लिये तो कहा है कि—

'महापुरुषों का दर्शन वर्तमान काल—इस जन्म के सब पापों-दुःखों और कष्टों का निवारण कर देता है, आने वाले अगले जन्म के पापों को निवृत्त करने का वह कारण बनता है, और पिछले जन्म के शुभ कर्मों की भी वह सूचना देता है कि हमने पिछले जन्म में अवश्य ही कोई शुभ कर्म किये थे जिसके परिणाम स्वरूप हमें इस जन्म में महापुरुषों का सम्पर्क प्राप्त हुआ है। ×

हम समझते हैं कि जैन समाज ही एक ऐसा सौभाग्यशाली समाज है, जिसमें इस भयंकर कलिकाल में भी अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह और सत्य इन पांच महाव्रतों को धारण करने वाले दो-चार दस-बीस नहीं सैंकड़ों परम प्रतापी ऐसे सन्त विद्यमान हैं, जिनके कृपा कटाक्षों से सारे समाज का उद्धार हो सकता है।

पूज्य श्री पंजाब केसरी जैसे पावन चरित महात्माओं का सम्पर्क तो कहीं रहा, उनके तो स्मरण मात्रा से प्राणी का उद्धार हो सकता है। इसी लिए तो भक्त प्रवर गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ने कहा है कि—

वन्दहु गुरु पद नखमणि ज्योति, सुमरित दिव्य दृष्टि हिय होती।

अर्थात् उन महापुरुष गुरुदेव-सन्तजनों को बड़े श्रद्धाभाव से प्रणाम करता हूं जिनके चरणों के नख रूपी दिव्यमणि का स्मरण करने मात्र से मनुष्य को ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिस से भूत भविष्य वर्तमान सब सुधर जाते हैं।

× हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥

इसीलिए--महापुरुषों का स्मरण करने के लिए ही—उन महात्माओं का गुणगान जीवनचरितों के रूप में किया जाता है। जो लोग संतों के चरित को श्रद्धापूर्वक पढ़ते सुनते हैं, उनके अपने जीवन भी वैसे ही निर्मल पावन और सात्विक बन जाते हैं। साधुजनों के जीवन वृत्तों को पढ़कर समाज में वैसी ही सात्विक विचारधारा प्रवाहित हो, बच्चा बच्चा उन्हीं पवित्र भावनाओं के रंग में रंग जाय, इसी परम पावन उद्देश्य को लेकर ही पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के इस जीवन चरित का निर्माण हो रहा है।

ऐसे प्रातःस्मरणीय महात्मा के जीवनवृत्त को श्रीसंघ के समक्ष सजीव रूप में उपस्थित करने या यूं कहें कि पूज्य श्री के सम्पूर्ण दिव्य-जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन कराने का महत्त्वपूर्ण पुण्य कार्य करने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ है, उसे मैं अपना महान् सौभाग्य समझता हूँ।

पूज्य श्री पंजाब केसरी श्री १००८ काशीराम जी महाराज के परम प्रिय शिष्य श्री पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज ने इस महापुरुष के दिव्य जीवन के निर्माण के लिए जो स्तुत्य उत्साह दिखाया है, उसके लिए श्रीसंघ पंडित मुनि श्री जी का सदा कृतज्ञ रहेगा। विद्या-प्रेम तथा समाजोन्नति के भाव श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज की नस नस में व्याप्त हैं। आप प्रतिक्षण श्रीसंघ की समुन्नति के लिए तत्पर रहते हैं। श्रीसंघ की समुन्नति की सात्विक भावना से प्रेरित होकर ही सं० २०१० के देहली चातुर्मास में प्रधानाचार्य श्री १००८ अखंड प्रतापी सोहनलाल जी महाराज और पंजाब केसरी पूज्य श्री काशीराम जी महाराज का जीवन चरित निर्मित करवा कर प्रकाशित कराने का आपने उपक्रम किया।

श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के प्रबल पुरुषार्थ और प्रेरणा के परिणाम स्वरूप ही यह जीवन चरित आप लोगों के हाथों में उपस्थित हो रहा है। इसकी सामग्री पंडित मुनि श्री ने श्री उदय जैन के द्वारा

संकलित करवा दी थी, उसी के आधार पर यह ग्रन्थ प्रस्तुत हो सका है।

महापुरुषों के दिव्य जीवन के अध्ययन से व्यक्ति और समाज को दिव्य लाभ प्राप्त होता है। इस शुभ भावना से प्रेरित होकर ही इस दिव्य जीवन का प्रकाशन किया जा रहा है। आप देखेंगे इस जीवन-चरित्र को पढ़ते समय इसके प्रत्येक अध्याय, प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक पंक्ति यहां तक कि प्रत्येक अक्षर से पाठक के हृदय में एक अपूर्व सात्विक विचार धारा का संचार होता जा रहा है।

बचपन से लेकर अन्तिम समय तक पूज्य श्री के जीवन का एक-एक क्षण एक-एक कार्य दिव्य और पवित्र था। ऐसे पावन दिव्य चरित्र का अध्ययन करते समय पाठक के हृदय में भी एक अपूर्व पवित्रता, शान्ति और सात्विकता का संचार हो जाय, यह सर्वथा स्वाभाविक है।

अतः आशा है कि चतुर्विध श्रीसंघ के समग्र सदस्य साधु साध्वियाँ तथा श्रावक-श्राविकाएँ—ऐसे पावन चरित के पठन-पाठन का प्रचुर-प्रचार कर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए समाजोन्नति में सहायक बन पुण्य के भागी बनेंगे।

निर्जला एकादशी
सं० २०११
श्रीतुलसीपरिषद्
दिल्ली

निवेदक—
भवानीशंकर त्रिवेदी

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में

पूज्य श्री पंजाब केसरी परमप्रतापी प्रातःस्मरणीय श्री १००८ काशीरामजी महाराज का यह दिव्य जीवन चरित श्रीसंघ के समक्ष उपस्थित करते हुए परम हर्ष हो रहा है। जीवन चरित-लेखन का कार्य अत्यन्त कठिन होता है। लेखक को सर्वथा निष्पक्ष रहते हुए भी अपने चरितनायक के प्रति सहानुभूतिशील रहना होता है। साठ सत्तर वर्ष के लम्बे जीवन में घटने वाली हजारों घटनाओं को चुन चुन कर उनकी महत्ता व उपयोगिता को परखते हुए मधुकरी प्रवृत्ति से सार-सार को ग्रहण कर संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली रूप में उन्हें पुस्तक रूप प्रदान करना होता है।

सब से बढ़कर ग्रन्थ की सजीवता को बनाए रखने के लिए उसे सरस और रोचक बनाना होता है। जीवन चरित की भाषा और शैली इतनी परिष्कृत, प्रभावपूर्ण व रोचक होनी चाहिए कि पुस्तक की प्रथम पंक्ति ही पाठक को पकड़ ले और पुस्तक को समाप्त किए बिना वह उसे रख न सके।

महापुरुषों का जीवन चरित एक ओर उपन्यास के समान सरस व रोचक तथा दूसरी ओर धर्मग्रन्थ के समान उपदेश-प्रद होना चाहिए।

इन सब गुणों की एकत्र अवतारणा सचमुच एक अत्यन्त दुस्साध्य कार्य है। फिर भी लेखक ने इस दिव्य जीवनचरित को उक्त सर्व-गुणोपेत बनाने में अपनी ओर से कोई कसर उठा नहीं रखी है।

पहले जीवन चरित का मूलरूप इतना बड़ा हो गया था कि प्रकाशित होने पर १००० पृष्ठ से भी अधिक हो जाता। उसमें से कोई बात न छोड़ते हुए उसे संक्षिप्त रूप प्रदान करना एक कठिन कार्य था।

प्रस्तुत जीवन चरित के निर्माण में पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के द्वारा संकलित सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग करते हुए लेखक एक वर्ष तक दिनरात इसको सजाने संवारने और सम्पादित करने में व्यस्त रहा। इतने श्रम व साधना के पश्चात् प्रस्तुत यह पुस्तक आशा है श्रीसंघ में अनुपम प्रेरणाप्रद सिद्ध होगी।

पूज्य श्री ने अपने जीवन में हजारों महत्त्वपूर्ण प्रवचन किए। उन सबको यहाँ संकलित नहीं किया जा सकता था। फिर भी यथास्थान महत्त्वपूर्ण प्रवचनों का सार भी दे दिया गया है। साथ ही इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि पुस्तक आवश्यकता से अधिक बड़ी न हो जाय और सरसता में कहीं कमी न आ जाय।

सारी पुस्तक को सुविधा की दृष्टि से निम्न सात भागों में विभक्त कर दिया गया है—

१. बालक श्री काशीराम २. वैरागी श्री काशीराम जी ३. सन्त श्री काशीराम जी ४. युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ५. पंजाब केसरी श्री काशीराम जी महाराज ६. पूज्य आचार्य श्री काशीराम जी महाराज और ७. भारत केसरी श्री पूज्य काशीराम जी महाराज।

इन सातों भागों के शार्षकों से ही पूज्य श्री के आध्यात्मिक जीवन के विकास का क्रम स्पष्ट रूप से आंखों के सामने आ जाता है।

इन सात बड़े भागों के अनन्तर महत्त्वपूर्ण घटनाओं के आधार पर जीवन चरित को अनेक अध्यायों में विभक्त कर दिया गया है। प्रत्येक भाग के आरम्भ में तथा बीच-बीच में भी यत्र-तत्र सूक्तियों से पुस्तक को अलंकृत कर दिया गया है।

अतः इस जीवन चरित का भी नीरस प्रतीत होना स्वाभाविक है, फिर भी इसे अधिक से अधिक सरस बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया।

यद्यपि यह एक ऐसे साधु श्री का जीवन चरित है जिसके सम्बन्ध में महात्मा तुलसीदास जी ने स्पष्ट लिखा है कि—

साधुओं के चरित कपास के फल के समान नीरस शुष्क किन्तु स्वच्छ निर्मल गुणों से युक्त होते हैं।*

फिर भी इसमें मानव सुलभ अनेक त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। अतः अन्त में इतना निवेदन कर देना चाहता हूँ कि इस पुस्तक में जो भी कुछ विशेषताएँ हैं वे सब पूज्य श्री के पुण्य प्रताप के परिणामस्वरूप हैं और जो त्रुटियाँ हैं, वे लेखक की अपनी है।

अन्त में पण्डित मुनि श्री १००८ शुक्लचन्द्र जी महाराज का किन शब्दों में धन्यवाद करूँ जिन्होंने मुझे इस दिव्य जीवन के निर्माण जैसे आध्यात्मिक पवित्र कार्य करने के लिए सब प्रकार से प्रोत्साहित कर एक वर्ष तक निरन्तर पूज्य श्री जैसे महापुरुष के आध्यात्मिक जीवन की चर्चा में व्यस्त रहने का सुअवसर प्रदान किया। इस जीवन चरित के निर्माण से लेखक को जिस आध्यात्मिक अनुपम सम्पत्ति की प्राप्ति हुई है, वह वास्तव में अवर्णनीय है। इसके लिए मैं समस्त श्रीसंघ का और विशेषतः श्री पण्डित मुनि श्री का भी उपकृत रहूँगा।

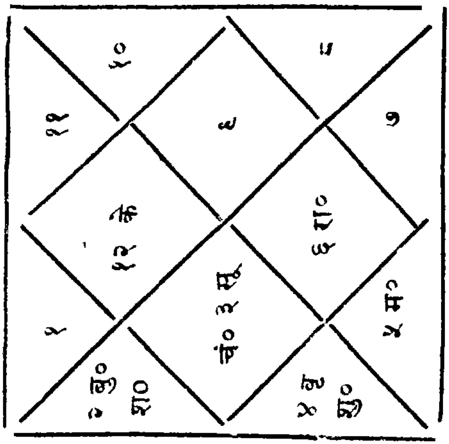
प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण-लेखन कार्य—में मेरी सहधर्मिणी श्रीमती शकुन्तलादेवी त्रिवेदी 'सुधा' जी ने अनुपम सहयोग देकर जिस तन्मयता से अर्धांगिनी के कर्त्तव्य का पालन किया वह वास्तव में स्तुत्य है।

—भवानीशंकर त्रिवेदी

---

*साधु चरित सुभ सरिस कपासू, नीरस बिसद गुणमय फल जासू।

आचार्य श्री जी की जन्म कुन्डली



जन्म संवत् १९४१
आषाढ़ वदी अमावस्या सोमवार,
अर्ध-रात्रि १२ बजे, पसरूर

स्वर्गारोहण सं० २००२
ज्येष्ठ वदी ८, रविवार
अम्बाला शहर।



बालक काशीराम

जयन्ति ते सुकृतिनो धर्मात्मानो मुनीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

वन्दनीय केहि के नहीं, ते मुनीन्द्र मतिमान ।
स्वर्ग गए हूं दिव्य यश, जिनको जगत जहान ।।

प्रवेश

महापुरुषों के जीवन-चरित्रों के अध्ययन से मनुष्य का जीवन उन्नत एवं प्रशस्त बन जाता है। इन महापुरुषों को हम मुख्यत: दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, एक प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाले नेतागण, तथा दूसरे निवृत्ति मार्ग के अनुयायी संसार से विरक्त रहने वाले साधु संत महात्मा आदि। राजनैतिक महापुरुषों के जीवन-चरित्रों के अध्ययन से मनुष्य केवल संसार में प्रवृत्ति की ओर ही अग्रसर होता है। वह उन के कार्यों का अनुसरण कर अपने ऐहिक कल्याण में तो समर्थ हो सकता है, पर आमुष्मिक कल्याण नहीं कर सकता। इसके विपरीत सांसारिक पदार्थों को तृणवत् तुच्छ समझने वाले सब प्रकार की एषणाओं से हीन विरक्त महात्माओं के जीवन-चरित्र का अध्ययन कर मनुष्य लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार का हितसाधन कर सकता है। श्रेय और प्रेय दोनों की एक साथ ही प्राप्ति के लिए वीत-राग साधु-सन्तों के चरित्रों का पठन-पाठन अत्यन्त हितावह सिद्ध हुआ है। ऐसे अनेक निदर्शन उपस्थित किये जा सकते हैं जिनसे यह भली भाँति सिद्ध होता है कि महापुरुषों के जीवन-चरित्र के अध्ययन या श्रवण से ही अनेक व्यक्ति कुछ के कुछ बन गये। दूर क्यों जाएँ, अभी इस हमारे ही युग में और हमारे

ही सम्प्रदाय में गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज ने जम्मू स्वामी के जीवन-चरित्र को पढ़ कर ही मुनिवृत्ति ग्रहण कर ली थी। उन्होंने अपने पवित्र आचरण चरित्र, ज्ञान और क्रिया के द्वारा अपने जीवन को इतना उन्नत बना लिया कि चतुर्विध श्री संघ में वह अनुपम स्थान पर जा विराजे। गणी जी के जीवन-निर्माण-कार्य में उक्त जीवन-चरित्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रामायण क्या है, श्री राम का जीवन-चरित्र ही न ?

इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध होता है कि मानव जीवन-निर्माण के लिए महापुरुषों के जीवन-चरित्र से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं हो सकती। ये महापुरुष भी देश-काल सापेक्ष और देश-काल निरपेक्ष भेद से दो प्रकार के होते हैं। महावीर स्वामी, सुधर्मास्वामी, जम्मू स्वामी आदि के चरित्र सार्वकालिक एवं सार्वदैशिक हैं। उनके चरित्रों से अनन्त काल युग-युगान्तरों तक मानव आत्मा को दिव्य संदेश मिलता रहेगा। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे चरित्र भी होते हैं जो अपने समय को अपने दिव्य प्रकाश से जगमगा देते हैं। समाज की परिस्थिति सदा एक सी नहीं रहती। इन परिवर्तित परिस्थितियों में अपने समय की महान् आत्माओं के दिव्य-चरित्रों के अध्ययन से भी महान् कल्याण होता है। फलतः राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीरस्वामी आदि सार्वकालिक महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का पठन-पाठन एवं प्रकाशन समाज के लिए जितना कल्याण कारक हो सकता है, सामयिक महापुरुषों के जीवन-चरित्रों के द्वारा भी उस से कम कल्याण नहीं होता। क्योंकि हमें अपने समय के अनुसार अपने जीवन को आदर्श एवं उन्नत बनाने में अपने सम सामयिक महान् आत्माओं के चरित्रों से दिव्य व अनुपम प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

आज हम अपने पाठकों एवं चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष ऐसे ही वीतराग, पुनीतचरित्र, प्रातःस्मरणीय, बालब्रह्मचारी, सन्त शिरोमणि की दिव्य जीवन लीला का प्रकाशन कर रहे हैं, जिस के अध्ययन से मानवात्माओं को आत्मोन्नति के मार्ग में चलने में महत्त्वपूर्ण साहाय्य प्राप्त हो सकता है।

पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात बम्बई, मध्यभारत आदि प्रान्तों के चतुर्विध श्रीसंघ का ऐसा कौन सदस्य होगा, जिसे 'पंजाब केसरी' अथच 'भारतकेसरी' स्वर्गीय पूज्य श्री १०८ काशीराम जी महाराज के दर्शनों का अथवा नाम-श्रवण का सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो। कोई बहुत पुरानी बात नहीं है, आज से ८-१० वर्ष पूर्व ही तो उस महान् आत्मा ने उक्त अनेक प्रान्तों के शीतोष्ण वर्षातप भूख प्यास आदि अनेक कष्ट सह कर नंगे सिर, नंगे पाँव हजारों मीलों की लम्बी यात्रा करते हुए भारत के कोटि-कोटि नर-नारियों को सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम और भ्रातृभाव मूलक ऐक्य का दिव्य संदेश सुनाया था। ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में जा कर इस महामानव ने मानव मात्र के लिए आत्म-कल्याण का प्रशस्त पथ प्रदर्शित करते हुए चारों दिशाओं में जैन धर्म की विजय-दुन्दुभी निनादित की थी। लक्षावधि जैन अजैन श्रावक श्राविकाओं एवं साधु साध्वियों के कर्णकुहुर उस भारत केसरी की धर्म प्रचार एवं रुढ़िवाद के खंडन सम्बन्धी सिंह-गर्जनाओं से अब तक भी प्रतिध्वनित हो रहे हैं। पूज्य श्री के देवोपम दिव्य गौर-गात्र एवं विकसित कमलवत् प्रसन्न मुख मंडल के दर्शनों का अथवा शान्त, धीर, गम्भीर सुधारस सने दिव्य उपदेशों के श्रवण का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज श्री आज भी उनके सम्मुख विराजमान हो कर उनका

मार्ग प्रदर्शन कर रहे हों। अजमेर साधु—सम्मेलन के अवसर पर महाराज श्री ने जिस दृढ़ता, निष्पक्षता एवं अपूर्व संगठन कुशलता का परिचय देकर साधु सम्मेलन को सफल बनाया, उससे तथा पैदल भारत भ्रमण के कार्य से आपने पंजाब सम्प्रदाय के महान् यश में सचमुच चार चाँद ही लगा दिये थे। आपके अपूर्व पुरुषार्थ के परिणाम स्वरूप पंजाब के चतुर्विध संघ का नाम देश-देशान्तरों में गूंज उठा था। इस प्रकार सामान्यतया समग्र भारत के तथा विशेषतया पंजाब के साधु साध्वियों एवं श्रावक श्राविकाओं के महान् मार्ग-दर्शक पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के पुण्य संस्मरणों को पुस्तकाकार में संकलित करते हुए आज-हृदय सहसा भावोद्रेक के कारण श्रद्धान्वित हो जाता है।

—

आविर्भाव

भारत के पश्चिमोत्तर में स्थित सर्वविध सुखैश्वर्य-सम्पन्न शस्य-श्यामल पंजाब के पावन प्रदेश का भारत भूमि में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज दैवदुर्विपाक से ऋषि मुनियों, संत-महात्माओं, अनुपम वीरों तथा विद्वानों की जननी पश्चिमी पंजाब की वह उर्वरा भूमि पाकिस्तान के रूप में परिवर्तित होकर अपने सुपुत्रों से सर्वथा वियुक्त हो गई है, पर आज से छः सात वर्ष पूर्व तक उसी पश्चिमी पंजाब के गाँव-गाँव और नगर-नगर में धर्म की अखंड ज्योति जगमगा रही थी, पारस्परिक प्रेम भ्रातृ-भाव उदारता, आतिथ्य-सत्कार के उदात्त विचारों के कारण वहाँ के निवासियों का जीवन अत्यन्त स्पृहणीय एवं सुशोभन बना हुआ था। पंजाब की जनता के हृदयों में सद्धर्म के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। अधिकतर लोग मध्यम श्रेणी के थे। भारत के अन्यान्य प्रान्तों की भाँति वहाँ आर्थिक वैषम्य न था। न तो वहाँ करोड़-पति ही थे और न भिखारी ही। अधिकतर मध्यवित्त परिवारों से पूरित इस पश्चिमी पंजाब की जनता का आदर्श धन का संचय न होकर त्यागोपभोग ही था।

अपने सम-सामयिक सम्पूर्ण जैन जगत् को निज अलौकिक तेज की दिव्य आभा से आलोकित कर देने वाले हमारे चरित

नायक इस संत प्रवर का आविर्भाव भी ऐसे ही रम्य पश्चिमी पंजाब के सियालकोट जिले की पसरूर नामक एक तहसील में हुआ था। पश्चिमी पंजाब के साथ ही साथ पसरूर का वह व्यापार-व्यवसाय, वैभव-विलास एवं प्राकृतिक सौन्दर्य आदि सभी कुछ अतीत का एक सुखद स्मरणीय स्वप्न मात्र बन गया है। अतः यहां की महिमा का विशेष वर्णन न करते हुए इतना ही कहना चाहते हैं कि इस पसरूर नामक नगर में हमारे चरित नायक का परिवार जैन समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठित तथा सम्मानित समझा जाता था। जीव दया, अहिंसा और अतिथि सेवा की भावनाएँ इस परिवार में विशेष रूप में लक्षित होती थीं। पूज्य श्री के पिता के ज्येष्ठ भ्राता गन्डे राय जी का तो सारा समय ही इसी प्रकार की सत् प्रवृत्तियों में ही बीतता था। चाहे कितने ही अतिथि किसी समय क्यों न आ जाएँ उनके परिवार में सत्कार की व्यवस्था में कमी किसी प्रकार की भी न आ पाती थी। जीव रक्षा के लिए घर में रोगी और घायल पशु पक्षियों की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध रहता था। उन्होंने अपने पराक्रम और साहस से अनेक बार अनेक पशुओं को वधिकों के हाथों से छुड़ा कर प्राणदान दिया था। वे अपने समय के एक अत्यन्त प्रभावशाली नागरिक थे। इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर जनता ने उन्हें नगरपिता या म्युनिसिपल कमिश्नर के महत्त्वपूर्ण पद पर निर्वाचित कर प्रतिष्ठित किया था।

आचार्य श्री के पिता श्री गोविन्द शाह में भी अपने अग्रज के उक्त गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान थे। वास्तव में शाह जी के परिवार के रूप में प्रख्यात यह ओसवाल महाजन कुटुम्ब नगर में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता था।

पूज्य श्री की माता राधा देवी जी एक धर्मपरायण सुशील आदर्श गृहिणी थीं। सामयिकी आदि दैनिक धर्म कृत्यों के प्रति वे सदा जागरूक रहती थीं। वास्तव में राधा और गोविन्द की यह जोड़ी राधे गोविन्द की जुगल जोड़ी के समान ही धर्म कर्म परायण थी। इसी यशस्वी दम्पति श्री राधा गोविन्द के घर में बालक श्री काशीराम का जन्म संवत् १६४१ की आषाढ़ कृष्णा अमावस्या सोमवार (सोमवती अमावस्या) को अर्धरात्रि में मीन लग्न में पसरूर नगर में हुआ था। यद्यपि राधा देवी जी १ विशनदास, २ पन्ना शाह, ३ मोती शाह, ४ काशीराम जी, ५ नन्द-शाह, ६ गोकुल शाह नामक इन ६ पुत्रों की माता थी, पर उनकी कोख के गौरव को बढ़ाने वाले तो पूज्य श्री ही थे। वास्तव में उसी पुत्र का जन्म सार्थक है जो अपने सद्गुणों और सदाचारों के द्वारा अपने कुल, समाज, जाति एवं धर्म के यश में चार चाँद लगादें।

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा।

उस पुत्र के उत्पन्न होने से भला लाभ ही क्या है ? जो अपने वंश रूपी बाँस के डंडे के ऊपर झंडे के समान सबसे ऊँचा उठकर न लहराये। वास्तव में वह घड़ी और माता धन्य थी जिसने जैन जगत् के प्रकाशमान प्रभाकर साधु-शिरोमणि पूज्य श्री काशी-राम जी महाराज जैसे नर-रत्न को जन्म दिया।

महाराज का परिवार एक बहुत बड़ा परिवार था। मातृ-पक्ष पितृ-पक्ष दोनों पक्ष खूब समृद्ध थे। महाराज श्री तो ६ भाई थे ही, इनके पिता जी भी ४ भाई थे।

पूज्य श्री के सब से बड़े भाई विसनदास जी भी एक बहुत

बड़े समाज सेवक कार्यकर्ता थे। देश और समाज के प्रत्येक कार्य में आप सदा सोत्साह भाग लिया करते थे। बालक काशीराम के जीवन पर उक्त गुरुजनों के सुसंस्कारों की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। बिशनदास जी के पुत्र श्री बाबू फग्गू मल जी एक बड़े व्यवसायी हैं। आपका व्यापार-व्यवसाय देहली, बम्बई, कलकत्ता आदि अनेक नगरों में खूब फल-फूल रहा है। देहली के जैन समाज के आप परम धार्मिकरुचि-सम्पन्न उदारमनस्क लोकसेवाव्रती कार्यकर्ता हैं। श्री चिरंजीलाल और श्री शादीलाल नामक आपके सुयोग्य पुत्र भी पितृगुणों के प्रतिरूप ही हैं। इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूज्य श्री काशीराम जी महाराज एक परम ऐश्वर्यशाली प्रसिद्ध ओसवाल वंश की कार्ति पताका को विश्व भर में फहरा देने वाले महामानव थे।

जातकर्म, नाम करण, कर्ण वेधादि संस्कारों के साथ-साथ शिशु काशीराम योग्य अभिभावकों की देख-रेख में प्रतिदिन बढ़ती हुई चन्द्रकला की भांति बढ़ने लगा। तीनों बड़े भाई और माता-पिता तो इन्हें अपने प्राणों से भी प्रिय मान कर सदा इनकी परिचर्या में लगे रहते।

एक अद्भुत घटना—

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार बालक काशीराम के दिव्य लक्षण शैशव ही में प्रकट होने लगे थे।

यूं तो सदा ही कोई न कोई विलक्षण घटना घटती रहती, पर एक दिन तो बाहर खेलते हुए आभूषणों से मंडित बालक काशीराम को देख कर उसके आभूषणों के लोभ से कोई दुष्ट उठा ले भागा। इधर सारे परिवार, समाज और नगर में हाहाकार मच गया, नगर का बच्चा-बच्चा बालक को ढूंढने में व्यस्त दिखाई दे रहा था। जिसे देखो वही उसी विषय

की चर्चा कर रहा था कि 'कैसा होनहार बालक था, अब भला दुष्ट गुण्डों के चंगुल से कैसे बच पायेगा। अब पता नहीं उस लाडले लाल का मुख भी देख पायेंगे कि नहीं।'

उधर उस अपहरण करने वाले दुरात्मा का हृदय भी दिव्य तेज और स्वाभाविक भोलेपन के साथ मृदुल मुस्कराहट से मंडित बालक के मुख कमल को देखकर पवित्र भावनाओं से प्रभावित हो जाता है। उसकी अन्तरात्मा उसे इस दुष्कृत्य के लिए धिक्कारती है, उसकी लोभ-मूलक पापमयी प्रवृत्तियां बात की बात में हवा हो जाती हैं और वह कुछ व्यक्तियों को सामने आते देख घबराकर बालक को आभूषणों के साथ सकुशल घर के पास छोड़ जाता है। इस प्रकार बालक सकुशल घर पर आ पहुंचता है।

बालक को घर ही में सानन्द खेलते देख लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, एक क्षण पहले जहां शोक का पारावार लहरा रहा था, दुःख और उदासी के अंधकार की काली घटाएँ छाई हुई थीं, दूसरे ही क्षण वहीं पर हर्षातिरेक का सागर लहराने लगा। सब के हृदय मारे खुशी के फूले न समाते थे। एक-दूसरे को बधाईयां दी जाने लगीं, मिठाइयां बँटने लगीं, सभी के मुख पर यही चर्चा थी कि यह भी कैसी दिव्य घटना घटी है। मानव मात्र के हृदयों पर दया, करुणा, प्रेम आदि सत्प्रवृत्तियों का अखंड साम्राज्य छा गया।

अध्ययन के साथ आध्यात्मिक संस्कारों का विकास—

समय को बीतते कुछ देर नहीं लगती। खेलते-कूदते अनेक प्रकार की शिशु-लीला दिखाते, हंसते-हंसाते बालक काशीराम की अबोध शैशवावस्था भी बीत गई। कौमारावस्था के प्रारम्भ होते ही बालक को पढ़ने के लिए पाठशाला में प्रविष्ट करवा दिया

गया। पढ़ाई के साथ-साथ माता-पिता और बड़े भाई विशनदास जी के साथ उपाश्रय में जा कर साधु-साध्वियों के दर्शन एवं उपदेश श्रवण का कार्य भी निरन्तर चलता रहा। बालक का हृदय निर्मल शुभ्र वस्त्र के समान होता है, उस पर जो संस्कार आरम्भ में अपना रंग चढ़ा देता है वह कभी नहीं मिटता। बालक काशीराम के हृदय में पूर्वजन्मोपार्जित आध्यात्मिक संस्कार जन्म से ही विद्यमान थे, अनुकूल परिस्थितियों को पाकर वे प्रवृत्तियां अब पल्लवित होने लगीं। सौभाग्य से उस समय पसरूर नगर धर्म-कर्म का मुख्य केन्द्र बना हुआ था। जनता की इस अटल धार्मिक विचार धारा के कारण साधु-संतों का भी इस नगर के प्रति विशेष आकर्षण था। श्री जमीतराय जी महाराज श्री गंडेराय जी महाराज, श्री जवाहर लाल जी महाराज, श्री मायाराम जी महाराज. श्री लालचन्द जी महाराज सती शिरोमणी पार्वती देवी जी आदि उस समय के विख्यात विद्वान् तपस्वी मुनिराजों में से किसी न किसी के उपदेश एवं दर्शनों का लाभ इस नगर को सदा प्राप्त होता रहता था। बालक काशीराम के दिव्य लक्षणों एवं अद्भुत प्रतिभा के कारण उक्त सभी मुनिराजों की इन पर विशेष कृपा थी। वे जब भी कोई प्रश्न पूछते तो उन्हें बड़े प्रेम से प्रत्येक बात समझाई जाती। एक बार उपाश्रय में पद्मासन से बैठे सामयिकी करते हुये बालक काशीराम के पांव की लम्बी ऊर्ध्व रेखा को देखकर गंडेराय जी महाराज के मुख से सहसा निकल पड़ा कि—यह बालक तो कोई दिव्य आध्यामिक पुरुष होगा और अपने कुल व समाज के नाम को विश्व-विश्रुत बना देगा।

वैरागी काशीराम जी

क ईप्सितार्थात्स्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ।
—कालीदासकृत कुमारसंभव

सांच सनेह सांची रुचि, जो हठि फेरई ।
साबन सरित सो सिन्धु रुख, सूप सों घेरई ॥
—तुलसीदास कृत पार्वती मङ्गल

वैराग्य भाव का अंकुर

श्री जमीत राय जी महाराज प्रायः बालकों तथा श्रावकों को ऐसे चित्र दिखाया करते थे जिनमें आत्मा अपने कर्मों के अनुसार चौरासी लाख योनियों में भटकती हुई नाना प्रकार के कष्ट पाती है। बालक के कोमल हृदय पर इन चित्रों तथा उपदेशों का अनुपम प्रभाव पड़ता और वह मन ही मन सोचने लगता कि क्या मुझे भी जन्मजन्मान्तरों के इन कष्टों को भोगना पड़ेगा। फिर उसकी आत्मा कह उठती कि नहीं मैं ऐसे कर्म ही नहीं करूंगा, जिनसे मुझे भी इन सब योनियों में भटकना पड़े। मैं अपने आपको परमार्थ के पथ का पथिक बना लूंगा। ताकि जन्म मरण की चौरासी से छुटकारा पा सकूं। मुनिराजों के मधुर उपदेशों से इस सुकुमार मति बालक के हृदय को बड़ी सान्त्वना प्राप्त होती, और वह सोचने लगता कि एक दिन मैं भी ऐसा ही शुभ्र वेष धारण कर तप, त्याग, प्रेम, दया और अहिंसा की मूर्ति बन जाऊंगा। वह दिन कब आयेगा जब कि मैं भी ऐसा पवित्र सफेद बानक पहन कर अपने लोक और परलोक को सुधारने के लिये तत्पर हो जाऊंगा। बारह तेरह वर्ष का यह किशोर काशीराम सदा ऐसे ही उदात्त विचारों में झूमा करता था। वह अपने आप में कुछ खोया सा रहता और मन ही मन

लोक परलोक की अनेक समस्याओं को सुलझाया करता।

'एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा।'

के सिद्धान्तानुसार किशोर केसरी काशीराम ने संसार से विरक्त मुनिराजों को ही अपना मित्र और पथ-प्रदर्शक बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

इधर बालक के मानसिक जगत् में ऐसे ही दिव्य भव्य भावों की सृष्टि बस रही थी। और उधर उसके माता पिता सगे सम्बन्धी उसके लिये एक नये ही संसार की रचना में लगे हुये थे। माता नित्यप्रति सुख स्वप्न देखा करती कि वह दिन कब आएगा जब मेरे होनहार लाल काशी की नवेली दुल्हिन की मुख चन्द्र की छटा से घर का आँगन जगमगा उठेगा। पिता रात-दिन इसी उधेड़ बुन में रहते कि इतनी रूपवती गुणवती लड़कियों के सम्बन्ध काशीराम के लिये आ रहे हैं, उनमें से किसे स्वीकार किया जाय और किसे अस्वीकार। पर काशीराम को इन सब झंझटों से कुछ लेना-देना नहीं। वह तो अपनी ही धुन में मस्त आत्मोन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता चला जा रहा है। वह सोचता है कि क्या मैं भी इन असंख्य अन्यान्य तुच्छ जीवों की भांति क्षणिक सुखों के प्रवाह में बहकर अपने इस मानव शरीर रूपी रत्न को व्यर्थ ही में मिट्टी में मिलाऊँ। नहीं ऐसा कभी नहीं होने का, मैं चौरासी लाख योनियों में बहुत भटक चुका हूँ। अब तो मैं ऐसे प्रयत्न करूंगा कि इस जन्म मरण की चौरासी में न जाना पड़े। मैं जो मुनिराजों के नित्य उपदेश श्रवण करता हूं क्या उन का मुझ पर कुछ भी प्रभाव न होगा। नहीं मैं जीवन भर उन उपदेशों पर चलता रहूंगा। मर जाऊंगा पर

विचारों में बालक काशीराम उलझा हुआ था कि उस के कान में सहसा भिनक पड़ी कि उस की सगाई (मंगनी) होने वाली है। फिर क्या था यह सुनते ही उस के हृदय में एक हल चल सी मच गई, वह सोचने लगा कि क्या मैं विवाह के जाल में फंस कर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाऊं। यह तो सम्भव नहीं कि एक बार विवाह के बन्धन में बन्ध जाने के पश्चात् सांसारिक झंझटों से अनायास छुटकारा मिल सके। उस के कानों में हिन्दी की किसी रीडर में पढ़ा हुआ रहीम का निम्न दोहा बार-बार गूंजने लगा —

'रहिमन ब्याह बियाधि है सकहु तु जाहु बचाय।
पायन बेड़ी परत है, ढोल बजाय-बजाय॥

कभी-कभी उसे ऐसा अनुभव होता कि मानो रहीम ने यह दोहा उसी के लिये लिखा है।

माता-पिता को अपने निश्चय की सूचना

कई दिनों तक उसने मन ही मन अनेक प्रकार संकल्प विकल्प करने के पश्चात् अन्त में यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह ढोल बजा-बजा कर डाली जाने वाली विवाह की इन बेड़ियों को अपने पैरों में कदापि न पड़ने देगा और माता पिता से स्पष्ट कह देगा कि मैं विवाह के बंधन में न बन्धूगा। तदनुसार एक दिन अवसर पाकर माता-पिता के समक्ष अपने हार्दिक भावों को व्यक्त कर ही तो दिया। एक समय अपनी जननी और जनक को प्रसन्न मुद्रा में पाकर कहा कि—पिता जी मैं आप से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ आशा है आप मेरे विचारों की महत्ता को देखते हुए मेरी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।

मैं कई दिनों से देख रहा हूँ कि आप सब लोग बहुत दिनों

से मेरी सगाई की चर्चा कर रहे हैं। पर मैंने प्रवृत्ति-पथ का परित्याग कर निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय कर लिया है। मैं सांसारिक माया मोह के बन्धनों में फँसकर अपने परम-लक्ष्य से विचलित नहीं होना चाहता। मैं अपने तथा समाज के लोक और परलोक को सुधारने के लिए कृत-संकल्प हूँ। मनुष्य को विवाह बन्धन में बन्धकर अपने घर गृहस्थी और परिवार का पालन पोषण करने के लिये न जाने कितने झंझटों का सामना करना पड़ता है। न जाने कितना झूठ-सच बोलना पड़ता है, न जाने कितने अनुचित कार्यों का आश्रय लेना पड़ता है। और इस प्रकार मनुष्य आरम्भ से अन्त तक माया ममता के मोह में फंसा हुआ अपने जीवन को व्यर्थ खो देता है। न जाने किन पूर्वकृत पुण्यों के उदय से मुझे यह दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त हुआ है। भारतवर्ष जैसे त्याग-प्रधान देश में तथा अहिंसा और दया प्रधान जैन धर्मानुयायी वंश में जन्म पाकर भी मैं अपने जीवन को इन तुच्छ एवं हेय विषय वासनाओं में फंसकर निरर्थक गंवादू तो मुझसे बढ़कर अज्ञ कौन होगा। इसलिये मैं फिर करबद्ध प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे सम्बन्ध की चिन्ता छोड़ कर मेरे शुभ संकल्प में बाधक न बन कर सहायक बन जाइये।

माता-पिता का मोह व बालक को समझाना

अपनी समग्र आशाओं के केन्द्र होनहार पुत्र के मुख से ऐसे असम्भावित वाक्यों को सुनकर माता और पिता का हृदय सन्न सा रह गया। वे क्षण भर के लिये किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गए। वे क्या सुख स्वप्न देख रहे थे और पुत्र क्या कह रहा है। उनकी तो सब आशाओं पर मानों पानी ही फिर गया।

ममतामयी माँ का हृदय भर आया। वह करुणाश्रु पूर्ण नेत्र एवं गद्-गद् कंठ से कहने लगी कि 'बेटा तुम यह क्या कह रहे हो। क्या तुम माँ के हृदय को और उसकी आशाओं-अभिलाषाओं को नहीं जानते। मैंने तुमसे कैसी-कैसी आशाएँ लगाई हुई हैं। एक दिन तुम बड़े होकर घर-बार का भार सम्भाल कर अपने व्यापार व्यवसाय को ऐसा चमकाओगे कि चारों ओर तुम्हारा नाम हो जायगा। मैं तुम्हारे लिये एक अत्यन्त सुन्दर सुशील बहू देख आई हूँ, मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब कि साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपिणी मेरे काशी की बहू के पाँव मेरे घर में पड़ें। पर तुम न जाने क्या कह रहे हो, मैं बहुत शीघ्र तुम्हारे विवाह की सब व्यवस्था कर रही हूं, देखो बेटा! समझदार लड़के माँ बाप के दिल को दुःखाने वाली ऐसी बातें नहीं किया करते' आदि।

माता के इन वात्सल्य भरे हृदय-द्रावक वचनों को सुनकर किशोर काशीराम का हृदय भर आया। क्षण भर के लिये कंठावरोध हो गया। पर फिर उसने अपने आपका सम्भाल लिया और बड़ी नम्रता व दृढ़ता से निवेदन करने लगा कि 'माता जी सौभाग्य से आपके मेरे सिवा पांच पुत्र और हैं। जिनमें से दो मुझसे छोटे भी हैं, उनको पढ़ाइये, लिखाइये, योग्य बनाइये उनके विवाह शादी कीजिये, उनकी बहुओं की आभा से आपका घर आँगन दमक उठेगा। मुझसे तीन बड़े भाई घर गृहस्थी और व्यापार व्यवसाय के कार्य को सम्भालने में अत्यन्त निपुण हैं। इन पाँचों भाइयों के रहते हुये मेरे विरक्त हो जाने से भी आपको किसी प्रकार की कोई कमी प्रतीत नहीं होगी। विशेषतः भाई विशनदास जी जैसे अत्यन्त योग्य सेवापरायण समझदार पुत्र के रहते हुये आपको किसी प्रकार का कोई अभाव कभी न

खलेगा। उनसे आपकी सब सांसारिक लोक व्यवहार की आशाएँ पूरी होती रहेंगी। वे आपके वंश की मान मर्यादा को भी खूब बढ़ाते रहेंगे। मुझे तो आप अपने ही मार्ग पर चलते रहने की आज्ञा दे दीजिये।

यह सुनकर पिता गोविन्दशाह जो अब तक विचार मग्न चुपचाप बैठे हुए थे, कहने लगे कि बेटा तुम अभी अबोध बालक हो, तुमने मुनियों के दर्शन और उनके उपदेश श्रवण तो अवश्य किये हैं, पर उस मार्ग की कठिनता का अनुभव नहीं किया। जैन-मुनियों का जीवन कोई सरल साधारण जीवन नहीं है। उस मार्ग पर चलना बड़ा टेढ़ी खीर है। जन्म-भर नंगे सिर और नंगे पांव रहना पड़ता है, सदा अपना आहार पानी घर-घर से माँग कर लाना पड़ता है। यदि वर्षा पानी या बूंदा-बान्दी न रुके तो सप्ताहों तक उपाश्रय में भूखे प्यासे पड़े रहना पड़ता है। आम, अंगूर, सेब, केला, संतरा, लीची, अनार आदि सभी फल फूलों का जन्म भर के लिये परित्याग कर देना पड़ता है। चातुर्मास के सिवा सदा गर्मी-सर्दी धूप हवा सब कुछ सहते हुये देश देशान्तरों में भटकना पड़ता है। और सबसे कठिन यातना जिसका स्मरण आते ही संसारी लोग रोमांचित हो उठते हैं—केश-लोचन का तो कहना ही क्या? सब प्रकार के सुख विलास और वैभव में पले हुए कहाँ तो तुम्हारा कुसुम जैसा कोमल यह सुकुमार शरीर और कहाँ मुनियों की कृच्छ्र-साधना। यह सब तुमसे कभी नहीं होने का।

यह सुनकर बालक काशीराम ने विनय के साथ निवेदन किया कि मैं मुनि जीवन के इन सब कष्टों से भली भांति परिचित हो चुका हूँ। शैशव से लेकर अब तक साधु सन्तों के प्रत्येक कार्य-

गति विधियों को भली भाँति देखता आया हूं। मुझे मुनियों के इस कठोर जीवन को अपना लेने में दुःख या कष्ट तो कहीं रहा, एक दिव्य आनन्द का अनुभव हो रहा है। मैं तो सदा यही सोचता रहता हूँ कि कब आप आज्ञा दें और कब मैं स्वेच्छा पूर्वक अपनाये हुए तप और त्याग के उस शुभ बानक को धारण करूं। मेरे समक्ष मुनिजीवन के परीषहों की कथा कह कर आप मुझे अपने लक्ष्य से विचलित करने का प्रयत्न न कीजिये।

पुत्र की ऐसी अविनय भरी वाणी सुनकर पिता के नेत्रों में स्नेह सजलता के स्थान पर रुक्षता की लालिमा झलकने लगी। वे किंचित् कठोर एवं दृढ़ संयत स्वर से कहने लगे कि बेटा बचपन में हरएक बालक ऐसी ही बातें सोचा करता है। बच्चे का हृदय अत्यन्त कोमल होता है, उस पर सात्विक संस्कार तत्काल अंकित हो जाते हैं। पर ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती है त्यों-त्यों वह संस्कार समाप्त होते जाते हैं, बचपन में कोई बहुत बड़ा देश भक्त, कोई समाज सेवक तो कोई विरक्त साधु बनने के स्वप्न देखा करता है, पर जवानी आते ही वे सब विचार हवा हो जाते हैं। यौवन की आँधी में सब अंधे होकर बहने लगते हैं। अभी तुम नहीं जानते कि वह यौवन का मद कैसा होता है। इस यौवन की मादकता ने बड़े बड़े ऋषि मुनियों के अभिमान का चूर चूर कर डाला। फिर तुम तो हो ही क्या बेटा, अभी साधु बन कर फिर उस बाने को छोड़ते फिरोगे। इस प्रकार अपने को तथा अपने कुल को कलंकित कर डालोगे। इसलिये हमारा कहना मानो और अभी अपने इस विचार को छोड़ दो। यदि तुम को साधु-वृति ग्रहण करनी ही हो तो पहले विवाह करलो, घर गृहस्थी का पालन करलो, सांसारिक सुखों के भोग से अपनी इच्छाओं को

पूर्ण करलो और फिर परिपक्व अवस्था में साधु वृत्ति भी ग्रहण कर लेना फिर तुम्हें कोई न रोकेगा।

इस प्रकार समझाते समझाते आधी रात का समय होने आया। सभी की पलकें झपकने लगीं, माता तो निराश हो एक ओर जा लेटी और पिता पुत्र भी अपने अपने विचारों को बीच ही छोड़ निद्रादेवी की गोद में जा विराजे।

दूसरे दिन पुत्र को माता और पिता ने एकान्त में बुला कर फिर समझाना आरम्भ किया। गोविन्दशाह कहने लगे कि आशा है तुमने हमारे कल के समझाने पर अब तक खूब विचार कर लिया होगा! इस पर पुत्र ने उत्तर दिया कि हां पिता जी मैंने खूब सोच समझ लिया, आप ने जो यह कहा कि विवाह करा कर गृहस्थ धर्म का पालन करने के पश्चात् चाहो तो साधु बन जाना, सो तो मुझे कुछ जंचा नहीं, क्योंकि—

'ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत त्यों त्यों उरझत जात'

के अनुसार एक बार गृहस्थ के जंजाल में फंस जाने पर कोई विरला ही उससे निकल सकता है। आप के चरणों की कृपा से मैं यौवन के विकार काम-वासना पर भी पूर्ण विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाऊंगा। आप मेरी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहें, मैं ऐसा कोइ कार्य न करूंगा जिससे मुनि-वेष या आप के कुल की मर्यादा में बट्टा लगे। आप मुझे अपने अभीष्ट पथ पर चलने की स्वीकृति दे दीजिये।

पर पिता जी भला इन बातों को कब मानने वाले थे, वे बालक की इन बातों को बचपन का पागलपन या शेखचिल्ली की बातें समझते थे।

माता जी बार-बार समझाती कि बेटा तू ही मेरी आंखों का

तारा और मां-बाप का सहारा है। क्या तू हमारी इतनी सी इच्छा भी पूरी न करेगा। माता पिता की आज्ञा मानना और उनकी सेवा सुश्रुशा करना पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है, इसी लिये एक बार हमारी बात मान कर विवाह करवालो। फिर समय आने पर जैसा चाहे करना। जब मैं अपने पौत्रों का मुख निहार लूंगी तब तुम भले ही साधु बन जाना। उसमें हमें कोई दुःख न होगा परन्तु खुशी ही होगी। इसलिये हठ छोड़ दो और एक बार विवाह की स्वीकृति देदो।

अन्तर्द्वन्द्व

माता के इस प्रकार के मधुर वचनों और पिता के हितावह अनुभव पूर्ण उपदेशों को सुन-सुनकर बालक काशीराम मन ही मन सोचने लगता कि क्या करूं और क्या न करूं, हृदय में निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा। एक ओर दीक्षा ग्रहण की उत्कट अभिलाषा तो दूसरी ओर माता-पिता की ममता के झूले में इसका मन कई दिनों झूलता रहा। पर पूर्व-जन्म के प्रबल संस्कारों की प्रेरणा से अन्त में बार-बार वह इसी निर्णय पर पहुंचता कि नहीं मुझे तो माया, ममता, मोह के इन बन्धनों को तोड़ कर भगवान् महावीर स्वामी एवं जम्बू कुमार की भांति जन्म-मरण के बन्धनों को काटने के लिये निवृत्ति-मर्ग का ही अनुसरण करना है।

'समय लाभ सम लाभ नहीं, समय चूक सम चूक'

के अनुसार यदि मैं इस समय अपने लक्ष्य से चूक गया तो फिर ऐसा दुर्लभ अवसर हाथ आने का नहीं। तदनुसार एक दिन फिर जब माता-पिता समझाने बैठे थे, तो स्पष्ट निवेदन किया कि आप लोग मेरे लिये इतने उद्विग्न क्यों हो रहे हैं। मैं जिस

पथ का पथिक बनने जा रहा हूँ, उस पर चलने से मैं केवल आप ही का नहीं प्रत्युत प्राणी-मात्र का प्रिय बन जाऊँगा।

जरा जायन पीडेइ, वाही जाही जायन पड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे ॥*

दश० अ० ८ गा० ३६

भगवान् महावीर प्रभु का यह संदेश मेरे कानों में सदा गूंजत रहता है। मैंने भगवान् महावीर के एक तुच्छ अनुचर के समान उक्त आज्ञा का पालन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। पर मैं अपकी आज्ञा के बिना दीक्षा न लूँगा। आप मेरे जन्मदाता व पालक-पोषक माता-पिता हैं। पितृ ऋण से उऋण होना पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है। इसलिये मैं दीक्षा ग्रहण कर ऐसे कल्याण मार्ग का अनुसरण करना चाहता हूं, जिससे एक क्या अनेक जन्म-जन्मांतरों के पितृ-ऋणों से मुक्त हो जाऊं। यदि आप का अपने इस बालक पर सच्चा प्रेम है, तो मुझे दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति दे दीजिये।

पुत्र की ऐसी बातों को सुन कर माता-पिता दोनों अत्यन्त निराश हो गये। अन्त में राधादेवी ने गद्-गद् स्वर से गोविन्द शाह से कहा –

प्राणनाथ ? यह लड़का बहुत सिर चढ गया है, यह हमारे लाड़ प्यार ही का परिणाम है, जो आज इस प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर करने लगा है। महाराज ने इसे बहका दिया है, इसलिये

---

*बुढापा व्याधि और इन्द्रियों की अशक्तता जब तक न आवे तभी तक तू धर्म का आचरण करले।

भ्रम में पड़ कर यह ऐसी उल्टी सीधी बातें किया करता है। इस समय यह यूं नहीं मानेगा, इसे दूसरे उपायों से उचित मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

तब पिता ने कहा कि–

'बेटा जरा सोचो तो सही तुम्हें क्या हो गया है यह तुम ने क्या सोच रक्खा है, हम तुम्हारे हितचिन्तक हैं सब प्रकार से तुम्हारे ही भले की बात कहते हैं। साधुओं का क्या है वे आज यहां हैं तो कल चलते बनेंगे, वे भला तुम्हारा कब साथ देंगे, उन से तुम्हारा क्या उपकार होगा। हमारी बात मान लो तो ठीक, नहीं तो तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। हां! पर इतनी बात जरूर याद रखना, तुम अभी नाबालिग हो, सरकार तुम्हें अपनी मरजी से कुछ न करने देगी।'

लगन बढ़ी

इस प्रकार दोनों पक्षों का आग्रह अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचा। अब तक तो दोनों को आशा थी कि वे दूसरे पक्ष को अपने अनूकूल कर लेंगे। माता पिता तो समझते थे कि हम पुत्र को मना कर एक दिन अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिये बाध्य कर देंगे। और पुत्र यह समझता था कि मैं एक न एक दिन अनुनय विनय से माता-पिता को मना कर दीक्षा के लिये स्वीकृति प्राप्त करने में सफल हो जाऊंगा। पर अब पिता और पुत्र दोनों को यह निश्चय हो गया कि दोनों में से कोई भी अपने विचारों से टस से मस होने का नहीं।

इस के विपरीत अब यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि यदि माता-पिता की इच्छानुसार आचरण न किया गया तो अब कठोरता से काम लिया जायगा। इस लिये घर में रहना ठीक न समझ कर बाहर निकल भागना ही उचित समझा। साथ ही इस धैर्य-शाली और दृढ़ निश्चयी युवक ने प्रत्येक प्रकार के कठोर व्यवहार, दण्ड और ताड़ना के लिये भी अपने आप को तैयार कर लिया। अंत में यह वीर-व्रती एक बार घर से निकल ही तो पड़े, घर से निकल सर्व प्रथम लाहौर पहुँचे और लाहौर से जिधर भी पांव उठ गये उधर ही चल पड़े। यह क्रम निरन्तर

चलता रहा। कभी अमृतसर, कभी अहमदाबाद और कभी बम्बई तक भी जा पहुँचे। जयपुर, दिल्ली और कानपुर भी हो आये, पर कहीं भी सफल मनोरथ न हो पाये। किसी ने भी उन्हें दीक्षा देना स्वीकार नहीं किया। जहां भी जाते यही उत्तर मिलता कि बिना माता-पिता की आज्ञा के दीक्षा नहीं दी जा सकती। निराश हो वापिस घर लौटना पड़ता। घर पर घरवालों के साथ वही संघर्ष चलता। फल स्वरूप उन्हें फिर घर से निकल भागने के लिये विवश होना पड़ता। प्रत्येक बार यही सोच कर घर से निकलते कि अब कभी घर नहीं लौटूंगा, पर घर वाले भी तत्काल उनकी खोज में निकल पड़ते और कहीं न कहीं जा घेरते और घर पकड़ लाते।

अब दीक्षा के लिये घर वालों की ओर से कई प्रकार के बहाने किये जाने लगे। कभी कहते कि कुछ दिनों के पश्चात् घर में अमुक कार्य सम्पन्न होने के अनन्तर दीक्षा दे देंगे, कभी कहा जाता कि घर में अमुक व्यक्ति की बीमारी ठीक हो जाने पर स्वीकृति दे दी जायगी। इस प्रकार घर से, भागने और पकड़े जाने तथा घर वालों की ओर से नित्य बहाने एवं डर भय दिखाने, यहां तक कि मार पीट का भी क्रम निरन्तर छः वर्ष तक चलता रहा। कभी बुरी तरह से मार पड़ती, कभी बंदियों की भांति मकान में बन्द कर दिये जाते, कभी रस्सी से बांध दिये जाते और कभी जंजीरों से जकड़ दिये जाते। इस प्रकार एक के बाद दूसरी दंड-व्यवस्था की जाती, पर दृढ़निश्चयी काशीराम का संकल्प रूपी अटल पर्वत भला इन छोटे मोटे दंड और प्रताड़ना रूपी वायु के झोंकों से कब उखड़ने वाला था।

एक बार आप को चक्कर में डालकर बजाजी की दुकान पर

काम-काज सम्भालने के लिये बैठा दिया गया। कहीं इधर उधर न चले जाएँ इस भय से उनकी निगरानी के लिये दो व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया गया। इस प्रकार पिता जी ने यह सोचा था कि चलो कुछ व्यापार में ही मन लग जाए तो उस बला से बच जायगा। किन्तु वहां तो वही धुन सवार थी! पिता और पुत्र दोनों ही अपनी-अपनी चालें चल रहे थे। दोनों ही एक दूसरे को अपने दांव में फंसाने का प्रयत्न कर रहे थे।

बात तो यह है कि अब तक किशोर केशरी काशीराम का हृदय वैराग्य के रंग में पूरी तरह रंगा जा चुका था। वह अब किसी बन्धन में बन्धने वाले न थे। यह फिर घर से निकल भागने के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में लग गये। एक दिन वह अवसर मिल ही तो गया। दोनों पहरेदारों में से जब कि एक सो रहा था तो दूसरे की मुट्ठी गरम कर बालक काशीराम फिर घर से भाग निकले। जाते समय उस नौकर को दुकान की देख-रेख के लिये भली भांति सावधान कर दिया। सियाल-कोट से लहौर अमृतसर होते हुए दिल्ली में पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की सेवा में जा पहुंचे। वहां पूज्य श्री की वन्दना कर पैर पकड़ कर प्रार्थना करने लगे कि—

गुरुदेव! अब तो कृपा कीजिये, दयालु, पूज्य अब तो दया कीजिये, मैं बहुत कष्ट पा चुका हूं, अब तो मुझे अपनी शरण में ले लीजिये, अब तो मेरा उद्धार कर ही दीजिये। मुझे माया ममता, मोह के जाल से छुड़ा दीजिये, और दीक्षा देकर मेरे जीवन को सार्थक बना दीजिये। जब तक आप के चरणों का स्थायी और दृढ़ आश्रय न मिल जायगा तब तक मुझे कहीं शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। मैं आप ही की चरणों की शरण में हूं।

मेरे भव-ताप को अपने आश्रय की छाया से निवारण कर दीजिय ।

बालक की इस हार्दिक विनय को सुन कर पूज्य श्री अपने मधुर वचनामृत से बालक को इस प्रकार धर्य बन्धाते हुए समझाने लगे कि "मुझे तुम्हें दीक्षा देने में कोई आपत्ति नहीं, मैं तुम्हारे हार्दिक वैराग्य भाव को देखकर प्रसन्न हूं, और प्रतिक्षण तुम्हारा उद्धार करने के लिये तत्पर हूँ। किन्तु साधु हूँ । सांसारिक प्रपंचों से साधु को सदा दूर ही रहना चाहिये। मैं ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता जिस से साधु जीवन पर किसी प्रकार की कोई आंच आने की सम्भावना हो। देखो सारे पँजाब में तुम्हारे पारिवारिक सम्बन्धी लोग फैले हुए हैं, तुम्हारे ताया गन्डेरायजी एक प्रभावशाली म्युनिस्पिल कमिश्नर हैं। सरकार में उनका बड़ा सम्मान है। सरकारी कर्मचारियों पर उनका पूरा प्रभाव है। पंजाब जैन कान्फ्रैंस के वे प्रजिडैन्ट हैं, तुम्हारी दीक्षा के कारण कल को वे कोई तूफान खड़ा कर सकते हैं। उनके हाथों में सत्ता है, सरकारी बल है, वे मोह में अन्धे हो रहे हैं। हम साधु-सन्तों को सब परिस्थितियों पर भली भांति विचार कर निश्चय पूर्वक चलना और निभाना पड़ता है। तुम्हें दीक्षा देने में बड़ा भारी प्रपंच करना पड़ेगा और हम लोग प्रपंचो से दूर रहते हैं। अतः इस समय तुम्हें दीक्षा देना कठिन है। पर इसे सरल बनाना तुम्हारे ही हाथ में है। तुम घर वालों से आज्ञा ले आओ तो हमें दीक्षा देने में देर ही क्या लगेगा। हम तुम्हें चट से मून्ड लेंगे। तुम्हारे यहां आने से साधु और श्रावक सभी अनेक प्रकार के विचारों में पड़ जाते हैं। साथ ही तुम्हारे सम्बन्धियों के प्रपंचों से भी घबराते हैं। ऐसी स्थिति में मैं तो तुम्हें अभी अपने पास रखना ही उचित नहीं समझता।"

यह सुनकर काशीराम जी ने निवेदन किया कि—

गुरुदेव दीक्षा होगी और उसका समग्र उत्तरदायित्व मैं स्वयं वहन करूंगा। किसी प्रकार का कोई झंझट नहीं होगा। आप कृपा करके इतना बता दीजिये कि यहां पर आपका और कितने दिन विराजना होगा।

पूज्य श्री ने फरमाया—

कल सवेरे ही कांधला (उत्तर प्रदेश) की ओर विहार करने के भाव हैं। कांधला परसने का विचार है।

पूज्य श्री के निश्चय को जानकर काशीराम जी ने मन ही मन महाराज श्री के साथ ही रहने का निर्णय कर लिया और दूसरे दिन साथ-साथ पैदल चल पड़े। पूज्यश्री दिल्ली से खेखड़ा, लुहारा सराय, बड़ौत, बामनौली, एलम आदि नगरों में धर्म का प्रचार करते हुए कांधला पधारे। आप भी वैरागी की भांति पूज्यश्री के साथ साथ चलते हुए कांधला आ पहुंचे।

इधर घर वाले उन को ढूंढने निकल पड़े। पहले तो उन्हें कहीं कुछ पता न लगा, पर देहली आने पर सब बातें ज्ञात हो गई। उन्हें ढूंढने के लिये सर्व श्री राय साहब उत्तमचन्दजी, उन के बड़े भाई मोतीशाहजी, चुन्नीशाहजी आदि आठ भाइयों ने पसरूर से प्रस्थान किया था। ये लोग दिल्ली से कांधले की ओर आ रहे थे, कि उधर से वैरागी काशीराम जी तपस्वी श्री गणपतराय जी म० सा० जी के दर्शनार्थ रामनीखंड ग्राम की ओर जाते हुए मार्ग में मिल पड़े। उन्हें देखते ही आठों भाई क्रुद्ध सिंह की भांति उन पर झपट पड़े। उन्हें घोड़ी से उतार कर बलात् बग्घी में डाल कर दिल्ली-शाहदरा स्टेशन पर आ पहुँचे। वहां से ट्रेन द्वारा फिर पसरूर पहुंचा दिये गए।

कठोर परीक्षा का प्रारम्भ

लगी लगन छूटे नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अङ्गार में, जो चकोर तेहि खाय॥

काशीराम जी को इस प्रकार सकुशल घर आये देख कर लोगों के हर्ष का पारावार न रहा। साथ ही उन पर व्यंग्यबाण भी छोड़े जाने लगे। कोई कहता—

ले आया दीक्षा, इधरउधर भागता फिरता है, भटक-भटका कर आया तो घर पर ही न, आखिर काम तो घर से ही चलेगा। साधुओं के पास रखा ही क्या है, वे तो खुद ही भिखारी हैं। वाह रे बदमाश तूने सब के नाकों दम कर रखा है, तेरे कारण तो घर भर तंग आ गया है। क्या ऐसी ही करतूतों से गुरु जी को खुश करेगा, कभी कहीं गुरु जी के पात्रे फोड़ कर भाग गया तो माता-पिता और कुल का नाम डुबो देगा। अब भी हमारी बात मान जा, और घर पर रह कर शान्ति से घर-दुकान का काम-काज सम्भाल।

इसी प्रकार छोटे-बड़े सभी उन्हें उपदेश देने लगे। भाई कुछ कहते, माता अनुनय-विनय करती, पिता डराते धमकाते और डाँटते डपटते समझाने का प्रयत्न करते। यहां तक कि छोटे छोटे बाल बच्चे भी आ आकर उन्हें छेड़ने लगे। घर भर में

चारों ओर से कहीं कोई सहानुभूति दिखाने वाला दिखाई न देता। पर दृढ़निश्चयी काशीराम जी ने उक्त सभी प्रकार के कठोर वचनों को शान्ति पूर्वक सहते हुए अपने लक्ष्य पर डटे रहने का निश्चय कर लिया था। भय, प्रलोभन, डाँट डपट, अनुनय, विनय आदि का उनके हृदय पर रंचक भी प्रभाव न होता था।

उन्हें अपने विचारों से टस से मस न होते देख घरवालों ने अब अन्तिम उपाय को अपनाने के लिये कमर कस ली। अन्त में एक दिन काल कोठरी में बन्द कर दर्वाजे पर ताला ठोक दिया गया। ताले की चाबियाँ तक पहरे में रहने लगीं। पर कुछ दिनों पश्चात् इस कठोर व्यवहार में कुछ कोमलता आ गई। पहरा ढीला कर दिया गया। बाहर भीतर आने जाने की सुविधा मिल गई। अब क्या था अवसर पाते ही फिर घर से निकल भागे और लाहौर पहुंचकर एक सिविल सर्जन को १०० रुपये देकर अपनी वयस्कता या बालिगपने का सर्टीफिकेट ले लिया। इस समय अवस्था भी लगभग सत्रह वर्ष की थी।

सर्टीफिकेट पाकर इस वैरागी का हृदय आनन्दोन्मत्त हो उठा। कल्पना के लोक में विहार करते हुए और प्रसन्नता में झूमते हुए काशीराम जी लाहौर से चलकर पूज्य श्री की सेवा में जा पहुंचे। किन्तु घरवालों ने फिर ढूंढ निकालने में कोई कसर न उठा रखी। वे भलीभांति जानते थे कि मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक ही है। वह पूज्य श्री के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं जाने का। तदनुसार वे लोग भी पीछे ही पीछे वहां आ पहुँचे और बलात् पकड़ कर घर ले गये।

घर में ही जेल

इस बार उन्हें घर की दूसरी मंजिल में बन्दकर जीने का ताला लगा दिया गया। साथ ही रोटी देते और शौच आदि जाते समय भी पहरे की कठोर व्यवस्था कर दी गई। इस प्रकार नवयुवक काशीराम जी को अनायास घर में ही 'कृष्ण मन्दिर'-जेल के निवास का अवसर प्राप्त हो गया। पर वैरागी के लिये तो यह एकान्त वास परमानन्ददायक था। अब वह दिन भर अपने में ही लीन, ध्यान मग्न बैठा रहता और आत्म-चिन्तन किया करता। इस प्रकार घर की जेल में रहते-रहते काशीराम जी महाराज ने अपने आपको वैराग्य के लिये पूर्ण अधिकारी बना लिया। वे घरवालों के प्रत्येक कठोर व्यवहार को बड़ी शान्ति से सहते रहे।

एकान्त वास में रखने के पश्चात् भी जब उन पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनके विचार अविचल रहे, तो घर वाले कठोरतम यातना देने पर उतारु हो गये। यहां तक कि उन्हें ज़मीन पर लिटा कर उनके दोनों हाथ पलंग के पायों के नीचे दबाकर ऊपर लोगों को बैठा दिया जाता और फिर पूछा जाता कि—

'तू अब भी बाज आयगा या नहीं। क्या फिर दीक्षा का नाम लेगा ?'

पर यह दृढ़प्रतिज्ञ वीर इस मार्मान्तिक वेदना को सहकर भी बार बार यही उत्तर देता कि—

'मैं तो माया मोह के जाल में अब कभी न फसूंगा। वैराग्य धारण करना ही मेरे जीवन का एक मात्र लक्ष्य है। आपकी यह भयंकर यातनायें मुझे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकतीं। चाहे मुझे प्राणों से भी हाथ क्यों न धोने पड़ें, मैं अपने मार्ग से पांव पीछे न हटाऊँगा।'

ऐसे अप्रत्याशित निर्भीक उत्तर को सुनकर घर वालों की क्रोधाग्नि में घी की आहुति पड़ गई। आव देखा न ताव वे बालक को कोड़ों से पीटने लगे। इसी प्रकार दिन प्रतिदिन शारीरिक और मानसिक यातनाएँ दी जाने लगीं। पर इन असह्य यातनाओं को सहकर भी श्री महाराज के मुख से उफ तक भी न निकला।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
समदुःखसुखः स्वस्थः कूटस्थो विजितेन्द्रियः॥

के अनुसार यह बालब्रह्मचारी तो स्वभावतः स्थितप्रज्ञ की अवस्था में पहुंचा हुआ था। ये नाना प्रकार के कष्ट इसे अपने निवृत्ति-मार्ग पर अग्रसर होने के लिये प्रेरित करनेवाले ही प्रतीत होते थे। जब भी उन्हें पूछा जाता वे स्पष्ट कहते 'चाहे मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े ही क्यों न हो जाएँ, मैं अपने सद्विचारों से मुख नहीं मोड़ूंगा। आप लोग मुझे इस प्रकार नाना कष्ट देकर मुनि जीवन के कष्टों को सहने के लिये मुझे पहले से ही तैयार कर रहे हैं। इतनी असह्य यातनायें सहकर मैं जैन मुनियों की कठोर कृच्छ्र साधना के लिये पूर्णतया सन्नद्ध हो गया हूँ।

नवयुवक के ऐसे ओजस्वी वचनों को सुनकर घरवालों का हृदय अन्ततोगत्वा कुछ दयार्द्र हो उठा। परिणाम-स्वरूप कठोर

दंड व्यवस्था बंद कर दी गई, पर बंदीगृह से मुक्ति नहीं दी गई। पहरा पूर्ववत् बना रहा। बाहर आने-जाने की किसी प्रकार की कोई सुविधा न थी। दिन रात एक ही घर में ऊपर या नीचे बंद रहना पड़ता था। इस कठोर कारावास से मुक्ति पाने के लिये किशोर केसरी काशीराम अब अन्तिम उपाय को अपनाने का— छज्जे पर से नीचे कूद पड़ने का—निश्चय कर किवाड़ के अन्दर की सांकल लगा छज्जे पर जा पहुँचा। वहाँ से कूदने की तैयारी करते हुए को पहरेदार ने देख लिया और शोर मचाकर सब लोगों को इकट्ठा कर लिया। वे लोग नीचे बड़े-बड़े पाल पकड़ कर खड़े हो गये और कहने लगे कि—

"क्यों नाहक मौत के मुँह में जाने की सोच रहा है। मरना ही था तो हमारे घर में पैदा ही क्यों हुआ? हमें व्यर्थ में इस प्रकार क्यों हैरान कर रहा है। हमारी बात मान जा। अन्दर से दर्वाजे की कुंडी खोल दे।"

पर नवयुवक का मस्तिष्क तो एक निराले ही कल्पना के लोक में विहार कर रहा था। वह इन सब बातों को सुनकर भी कुछ नहीं सुन रहा था। उसे ये सब स्वजन सम्बन्धी अपने मार्ग के बाधक शत्रु के समान दिखाई देते थे। उसे न उनके प्रेम की परवाह थी और न दंड का भय। वह तो राग द्वेषादि द्वन्द्वों से ऊपर उठकर अपने ही में मस्त हो रहे थे।

जब लोगों ने देखा कि किसी प्रकार भी दरवाजा न खुलेगा और यदि यह अन्दर ही बन्द रहा तो अवसर पाकर ऊपर से कूद पड़ेगा, तो लम्बी सीढ़ी लगा कर छज्जे पर जा पहुंचे। ऊपर से पकड़ कर नीचे ले आये और फिर वही समझाना मनाना, डराना, धमकाना और पुचकारना आरम्भ हुआ।

उनके विचारों को परिवर्तित करने के लिये एक के बाद दूसरे उपायों का तांता सा लगा दिया गया। पर—

चटक न छांडत, घटत हूँ सज्जन नेह गम्भीर।
फीको परै न बरु फटै, रंग्यो चोल रंग चीर॥

चोल के रंग में रंगा हुआ वस्त्र फट भले ही जाय पर उसका रंग कभी फीका नहीं पड़ सकता। वैसे ही सज्जन पुरुष का हृदय जब एक बार प्रभु के सच्चे प्रेम के रंग में रंग जाता है तो वह रंग उतारे नहीं उतरता। काशीराम जी के हृदय के वस्त्र पर भी ऐसा ही पक्का रंग चढ़ चुका था। अब चाहे उसे कितना ही कूटो, पीटो, पछाड़ो, तपाओ. गलाओ, पर वह रंग उतरने का नहीं।

सब सगे सम्बन्धी एक-एक करके सिर पटक पटक कर हार मान बैठे, पर कोई भी इन्हें अपने विचारों से विचलित न कर पाया। अन्त में सब प्रकार से निराश हो घरवालों ने एक नवीन अन्तिम अमोघ उपाय को अपनाने का षड्यन्त्र रच डाला।

लम्बे चौड़े परामर्श के पश्चात् राजाज्ञा के रूप में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवा दिया कि—

'कोई भी जैन साधु काशीराम को दीक्षा न दे। यदि इस आज्ञा की अवहेलना कर किसी ने दीक्षा दे दी तो इसका उत्तरदायित्व उसी पर होगा और इसका परिणाम अच्छा न होगा।'

यह सूचना सभी स्थानकों, उपाश्रयों में मुनिगणों के पास भी भेज दी गई। यह सूचना भेज कर सब घर वाले निश्चिंत हो गए कि अब तो कोई किसी प्रकार दीक्षा दे ही नहीं सकता। अब भाग कर कहां जायगा। इसी विचार से पहरे में भी ढील कर दी गई।

सफलता की झलक

सांच सनेह सांची रुचि जो हठि फेर दई।
सावन सरित सो सिन्धु रुख सूप सो घेर ही* ॥

वैरागी तो अवसर की ताक में ही थे। एक दिन फिर आंख बचा कर घर से निकल पड़े। इस बार वे अकेले न थे। उनके साथ दूसरे वैरागी नरपतिराय जी भी थे। नरपतिराय जी अवस्था में पूज्य श्री से दो-एक वर्ष बड़े थे। आप भी इसी प्रकार वैराग्य के रंग में रंगे हुए थे। दोनों ही निवृत्ति-पथ के पथिक थे। दोनों ही दीक्षा के मद में मतवाले हो रहे थे। एक और एक मिलकर ग्यारह हो जाते हैं। तदनुसार इस बार काशीराम जी के हृदय में एक अपूर्व उत्साह का संचार हो रहा था। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि जिसके लिए बारह वर्ष तक असह्य कृच्छ्र साधना की है, वह सिद्धि प्राप्त होने ही वाली है। सफलता

---

*जो किसी की सच्ची लगन और हार्दिक प्रेम को बदलने का प्रयत्न करता है वह मानो समुद्र की ओर बहती हुई सावन-वर्षा ऋतु की उमड़ती घुमड़ती नदी को छाज से रोकना चाहता है। जिस प्रकार सावन की नदी के प्रवाह को सूप से रोकना असम्भव है उसी प्रकार साधु के हृदय की सच्ची लगन को भी कोई नहीं रोक सकता।

मानो उन्हें अपने चरण चूंमती हुई सी प्रतीत हो रही थी। आशा उत्साह और उमंग से भरे हुए दोनों मित्र घर से निकल कर एकान्त अज्ञात जंगल के मार्ग की ओर हो लिये। कुछ दूर जाने पर सियालकोट जाने वाली सड़क पर जा पहुंचे। वहां से एक टांगे वाले को पंद्रह रुपये देकर अपरिचित मार्ग से सियालकोट आ पहुँचे। वहां से ट्रेन में सवार हो सीधे कांधला आ गये।

कांधला में लाला घमंडीलाल जी नामक एक जैन सद्‌गृहस्थ थे। पिछली बार भी वैरागी जी को आपने सब प्रकार से सहायता एवं प्रोत्साहन दिया था। उसी विश्वास पर अब भी आप उन्हीं के पास पहुँचे। लालाजी ने आपको सब प्रकार की सहायता का विश्वास दिलाया। इस समय वैरागी काशीराम जी का हृदय अन्तर्द्वन्द्वों का अखाड़ा बना हुआ था। एक ओर हर्ष और उत्साह की लहरें उमड़ रही थी, तो दूसरी ओर निराशा का तूफान प्रचंड वेग से उठ खड़ा होता था। कभी सोचते अब तो दीक्षा हो ही जायगी, पर दूसरे ही क्षण घरवाल‹ का स्मरण आते ही सफलता क द्वार में घरवालों के द्वारा उपस्थित की जाने वाली विघ्न बाधाओं की अलंघ चट्टानें सामने खड़ी दिखाई देतीं। ऐसा लगता कि वे लोग उनका पीछा करने तथा दीक्षा को रोकने में कोई कसर न उठा रखेंगे। फिर भी अन्दर से एक अज्ञात शक्ति आश्वासन देता हुई कहती कि नहीं अबके समस्त विघ्न बाधाओं के पर्वत चकनाचूर हो जायेंगे तथा मुझे दीक्षा देवी के प्राप्त करने में सफलता अवश्यम्भावी है। घमंडीलाल जी जैसे उदार आश्रयदाता को पाकर तो उनके हर्ष का पारावार न रहा। वे भी इस नवयुवक के सच्चे वैराग्य से इतने प्रभावित हुए कि तन मन धन से उनकी सहायता के लिये कटिबद्ध हो गये।

इसके लिये उन्होंने सर्व प्रथम वैरागी जी के ताया पसरूर के म्यूनिसिपल कमिश्नर श्री गेंडामल जी का एक पत्र लिखा। उसमें श्री काशीराम जी के कांधला पहुंचने तथा पूज्यश्री के वहीं विराजने की सूचना दी। साथ ही यह भी स्पष्ट सूचित कर दिया कि—

'काशीराम जी ने दीक्षा लेने की पूरी तैयारी कर ली है। वे अभी पूज्यश्री की सेवा में रहते हैं। उनकी अटल वैराग्य धारणा और दीक्षा लेने की प्रबल अभिलाषा से हमारे हृदय बड़े प्रभावित हुए हैं। उनका वैराग्य पक्का मजीठी रंग का है, जो कभी उतरने का नहीं। आप भी सैंकड़ों प्रकार से परीक्षा कर देख चुके हैं। सब परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आशा है आप अब किसी प्रकार की कोई विघ्न बाधा अथवा रुकावट न डालेंगे। किसी प्रकार का कोई अड़ंगा न कर बालक को दीक्षा लेने की स्वीकृति दे देंगे और इस सद्धर्म के कार्य में सहायक बनेंगे।

यद्यपि हम यह भलीभाँति जानते हैं कि ऐसे होनहार सर्व-गुण सम्पन्न सुलक्षण बालक का विरह आप सब परिजनों के लिये अत्यन्त असह्य होगा और जिस प्रकार श्रीकृष्ण को गज सुकुमार जी का बिछोह सहना पड़ा वैसे ही आपको भी सहना होगा।

अब इनकी अवस्था भी अट्ठारह वर्ष की हो चुकी है और इनके पास वयस्कता या बालिगपने का प्रमाणपत्र भी विद्यमान है, अतः कानून की दृष्टि से भी आप इन्हें रोक नहीं सकते। आपका, बालक का और सभी का इसमें कल्याण है कि आप सहर्ष दीक्षा की अनुमति दे देवे।'

पत्र पढ़ते ही घर वाले तथा लाला गेन्डामल जी मारे क्रोध के

आग बबूला हो उठे। वे तत्काल जिलाधीश (डिप्टीकमिश्नर) के पास पहुँचे। उनके द्वारा पुलिस विभाग से कांधला-थाने में इस आशय का पत्र भिजवाया कि पसरूर निवासी लाला गेंडामल जी म्यूनिसिपल कमिश्नर का भतीजा काशीराम नामक एक वैरागी घर से भाग कर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज (जैन साधु) के पास कांधला पहुंचा है। उसकी जांच कर उसे दीक्षा लेने से रोक दिया जाय, साथ ही दीक्षा दिलाने में लाला घमंडोमल जी का हाथ है, इसलिये उन से भी जमानत ले ली जाय आदि।

थानेदार का अड़ंगा

पत्र के कांधला पुलिस स्टेशन पर पहुंचते ही वहां का थानेदार दो कांस्टेबिलों के साथ लाला घमंडीलाल जी के घर पर आ पहुंचा और उन्हें धमकाते हुए कहने लगा कि—

'कहां है पसरूर से भाग कर आया हुआ लड़का काशीराम ?'

लाला जी ने नम्रता से उत्तर दिया कि—

'सामने उस थानक में पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज जैन साधु के पास सामायिक कर रहा है। सामायिक में आप विघ्न न डालें यह हमारा धर्म-कर्म है। जब तक सामायिक पूरी न हो जाय हमारे नित्य कर्म में बाधा न पहुँचावें। क्योंकि बिना अपना नित्य-कर्म समाप्त किये वह किसी से बात न करेगा।' थानेदार ने उत्तर दिया—

'धर्म-कर्म होते रहेंगे, हमें इतनी फुरसत कहां है जो हम तुम्हारे दर्वाजे पर बैठे रहें। हम खूब जानते हैं यह सब तुम्हारी बदमाशी है।'

इसी प्रकार के और भी वह अनेक अपशब्द कहने लगा।

थानेदार के ऐसे दुर्वचनों को सुनकर सब लोग आवेश में आ गये। बात का बतङ्गड़ बन गया और बड़ा भारी बखेड़ा खड़ा हो गया। थानेदार को फिर कुछ मुंह से अपशब्द निकालते देख लाला जी ने उसके मुख पर एक तमाचा जमा दिया और कहा कि जाओ कानूनी कार्यवाही करो।

थानेदार जानता था कि यहां अधिक चूं चपट किया तो ये लोग हमारी मरम्मत कर डालेंगे। इसलिये अपना सा मुँह लेकर लौट गया. पर इस अपमान के कारण मन ही मन आग बबूला हो उठा। पुलिस स्टेशन पर आते ही उसने पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट के नाम लाला घमंडीलाल जी के विरुद्ध एक कड़ी रपट तैयार की और उसे लेकर स्वयं सुपरिंटेन्डेन्ट के पास पहुँचा। इधर लाला जी पहले ही उससे जा मिले, और सारी स्थिति बता कर कोई कार्यवाही न करने का आश्वासन ले आये।

इधर थानेदार भी थोड़ी देर बाद जा पहुँचा, और अपनी लिखित रपट प्रस्तुत कर प्रार्थना करने लगा कि—

'एक साधारण से व्यक्ति के द्वारा पुलिस आफिसर का ऐसा अपमान सर्वथा असह्य और अक्षम्य है। यह मेरा नहीं प्रत्युत सरकार का अपमान है। हजूर को उसके विरुद्ध तत्काल कठोर कार्यवाही की व्यवस्था करनी चाहिये। अन्यथा पुलिस आफिसरों का प्रभाव क्या रहेगा।'

इस पर सुपरिंटेन्डेन्ट ने उत्तर दिया:—

'तुम लोगों को अपने पद की मान-मर्यादा का ध्यान स्वयं रखना चाहिये। अपनी इज्जत तुम्हारे अपने हाथ में है। तुम यदि व्यर्थ ही में किसी से उलझते फिरोगे तो कोई क्या कर सकता है। छोटी-छोटी बातों पर अपने आपे से बाहर होकर दूसरे किसी

भले मानुस का अपमान करना या गालियां देना ठीक नहीं है। पुलिस कर्मचारियों व अधिकारियों को अपने आप को जनता का सेवक समझना चाहिये न कि मालिक। तुम्हारा कर्तव्य चोरों गुण्डों लुटेरों या बदमाशों से लोगों की रक्षा करना है न कि उन्हें अकारण डरा धमका कर भयभीत करना। यदि तुम सद्-व्यवहार करते और सभ्यता से पेश आते तो किसी की क्या मजाल कि कोई तुम पर हाथ उठाने का साहस करता। अब यदि यह केस चलाया जायगा इस में तुम्हारा अपमान होगा, मजि-स्ट्रेट तथा दूसरे सब लोग यही कहेंगे कि थानेदार होकर भी एक पब्लिकमैन से मार खा आया है। इस प्रकार सब तुम्हारी ही हंसी उड़ायेंगे। सो मेरा कहना मानो तो इन कागजात को जेब में धर कर ले जाओ और सब लोगों के साथ समयानुसार बर्ताव करना सीखो।'

अपने आफिसर से इस प्रकार फटकार खाकर थानेदार खिसियाना सा होकर घर लौट गया। फिर उसने कभी कुछ कहने या दीक्षा में अड़ङ्गा अड़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

इस प्रकार लाला गेंडामल जी ने तथा घर वालों ने पहले तो दीक्षा को रोकने के लिये बहुत हाथ पैर मारे पर जब किसी प्रकार भी सफलता न मिली तो सब ओर से निराश होकर और यह सोच कर कि अब तो लड़का हाथों से चला ही गया उसे हम रोक तो किसी प्रकार सकते ही नहीं, तो अपनी ओर से ही स्वकृति क्यों न दे दी जाय। दीक्षा के लिये स्वकृति पत्र लिख दिया।

स्वीकृति पत्र के प्राप्त होते ही कांधला का चतुर्विध श्रीसंघ-हर्ष-विभोर हो उठा। किशोर केशरी श्री काशीराम का हृदय

आनन्दोत्साह के कारण बल्लियों उछलने लगा। उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा।

'मनो कृपण महानिधि पाई'

के अनुसार उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों उनके जीवन की सब आशाएँ पूरी हो गई हों। जन्म से ही दीन दुःखी दरिद्र व्यक्ति को जैसे महानिधि प्राप्त कर प्रसन्नता होती है, वैसे ही वे भी हर्षोन्मत्त हो रहे थे।

'देखहु सपन कि सोतुख सही'

उन्हें यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वास्तव में सच-मुच स्वीकृति पत्र आ गया है, या वे स्वप्न ही देख रहे हैं। इस हर्षातिरेक के कारण इस युवक को आज सारी रात एक क्षण के लिये भी नींद न आई। वह प्रति-पल यही सोचता रहा कि अब-कब वह शुभ घड़ी आएगी, जब मेरा मनोरथ सफल होगा और मैं दीक्षा ग्रहण कर तप और त्यागमय जीवन के प्रतीक साधु जीवन की शुभ्र पवित्र चादर को अपने शरीर पर धारण कर अपने जीवन को कृत-कृत्य बना लूंगा। कभी वह कल्पना-लोक में विहार करता हुआ सोचने लगता कि उसकी दीक्षा की सब तैयारियाँ हो चुकी हैं, दीक्षा के लिये उसे हाथी पर बिठाकर भव्य जलूस निकाला जा रहा है। और पूज्य श्री उपदेशामृत से जनता के कर्ण कुहरों को तृप्त कर रहे हैं। दूसरे ही क्षण विचार आता है कि घरवालों के मन का क्या पता है, वे फिर कोई अड़चन न डाल दें, कहीं बना बनाया खेल बिगड़ न जाय। फिर विचार आता कि नहीं अब कोई विघ्न बाधा न आयगी मैं महाराजश्री के चरणों में प्रातःकाल ही निवेदन करूंगा कि मुझे बिना आडम्बर के तत्काल दीक्षा दे दी जाय। इसी प्रकार विचार करते और

स्वप्न लोक में विहार करते-करते युवक के हृदयाकाश में आशा की प्रकाश रेखा अंकित हो गई। उसे लगा कि अब शीघ्र ही निराशा के अन्धकार को नष्ट कर सफलता का सूर्य उदित होने वाला है।

प्रात:काल होते ही सर्व प्रथम लाला घमंडीलाल जी का धन्यवाद करते हुए उन के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। तत्पश्चात् उपाश्रय में जाकर अत्यन्त श्रद्धा, विनय और आदर के साथ पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के चरण कमलों में साष्टाङ्ग वन्दना की, और दूसरे साधु-सन्तों की वन्दना कर सबके प्रति अपने हार्दिक श्रद्धाभाव को विज्ञापित किया।

दीक्षा की तय्यारी

(मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी १९५०)

आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमगुणाः न परित्यजन्ति ॥

कायर पुरुष विघ्नों के भय से किसी शुभ कार्य में प्रवृत्त ही नहीं होते । मध्य श्रेणी के मानव शुभ कार्य को आरम्भ तो कर देते हैं, पर विघ्न आने पर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं ।पर श्रेष्ठ पुरुष वे हैं जो किसी कार्य को करने के लिये एक बार सोच लेते हैं तो लाख रुकावटें या विघ्न बाधाएँ भी क्यों न आयें, फिर अपने मार्ग से एक पग भी पीछे नहीं हटाते । निरन्तर आगे ही बढ़ते जाते हैं ।

प्राय: देखा जाता है कि कभी किसी मनुष्य को कोई भी उत्कृष्ट वस्तु बिना परिश्रम किये अनायास नहीं प्राप्त हो सकती । दुर्लभ पदार्थ को प्राप्त करने के लिये कुछ न कुछ तप, त्याग और कष्ट सहन करना ही पड़ता है ।यदि कोई दुर्लभ वस्तु किसी के हाथों में बिना परिश्रम किये आ जाय-उसे यों ही मिल भी जाय-तो वह

अनायास ही उसके हाथों से निकल भी जाती है। किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को प्रथम अपने आपको उसके धारण करने का अधिकारी या पात्र बनाना होता है। जो जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए जितना ही श्रम करेगा, कष्ट उठायेगा, वह उसे प्राप्त हो जाने पर उतना ही सम्भाल कर रखेगा, उसकी मान-मर्यादा की रक्षा करेगा। अन्यथा—

'Easy comes Easy goes'

के अनुसार उत्कृष्ट वस्तु जैसे मिलेगी वैसे चली भी जायगी। जब साधारण सांसारिक वस्तुओं की भी यह दशा है, तो मोक्ष मार्ग की सीढ़ी के समान दुर्लभ संत-वृत्ति या विरक्ति की प्राप्ति का तो कहना ही क्या! इस मार्ग में चलने वाले पथिक के समक्ष अनेक विघ्न बाधाएं आती हैं, कभी माता पिता, भाई,-बन्धु, चाचा-चाची, नाना-नानी, आदि परिजनों का मोह आ घेरता है, तो कभी घर-बार मित्र, साथी, संगी, तथा सखाओं का साथ बिछुड़ने का स्मरण आते ही हृदय कांपने लगता है। धन-धान्य, सुख-विलास, आमोद-प्रमोद तथा सांसारिक वैभव का अछेद्य जाल निरन्तर पैरों में उलझता ही रहता है। एक ओर तो माया-ममता और मोह के इन दुर्निवार पाशों को काटना होता है और दूसरी ओर स्वजनों तथा सगे सम्बन्धियों के असह्य अपमान और तिरस्कार की ज्वालाओं में जलना पड़ता है। न केवल मौखिक कटुवचन या डांट फटकार का ही सामना करना पड़ता है, प्रत्युत नानाविध असह्य शारीरिक यातनाओं को सहन करने के लिए अपने आपको प्रस्तुत करना पड़ता है। इसीलिये तो संत कबीर ने कहा है कि—

बड़ा दूर है प्रेम घर लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरे तो चकनाचूर ॥

वास्तव में सांसारिक पदार्थों के प्रति भी सच्ची लगन लगाना बड़ा कठिन है, फिर वैराग्य की लगन का तो कहना ही क्या! वैराग्य मार्ग पर चलने वाला साधक यदि अपनी साधना में सफल हो जाता है तब तो विश्व-प्रेम का अनुपम रस उसे प्राप्त हो ही जायगा, किन्तु यदि इस मार्ग पर चलते-चलते बीच ही में पांव डगमगा गये तो गिर कर इस प्रकार चकना-चूर हो जायगा कि कहीं पता भी नहीं लगेगा।

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
शीश उतारै भुई धरै तो या में चल आहि ॥

जो अपने सिर को काटकर पृथ्वी पर उतार फैंकने को कठोर से कठोर परीक्षा देने को प्रस्तुत हो वही इस निराले मार्ग पर चलने का अधिकारी है। संत जीवन के द्वार में प्रविष्ट होने के पूर्व साधक की सैंकड़ों प्रकार से कठोर परीक्षाएं होती हैं। किसी भी परीक्षा में फेल हुआ नहीं, कि उसका प्रश्न-पत्र रद्द कर दिया जाता है। सुवर्ण की शुद्धि के लिये उसे आग में खूब तपाया, गलाया और ठोका-पीटा जाता हैं। बिना कष्टों की आंच में तपे खरे खोटे साधक रूपी स्वर्ण की परीक्षा हो ही नहीं सकती। और विना परीक्षा के भला कोई किसी का मूल्यांकन कैसे कर सकता है। नकली और असली हीरे की पहचान तो हथोड़ों की भयंकर चोटों को सह लेने पर ही होती है, लाखों चोटें सहने पर भी न टूटा तभी तो जौहरी को यह निश्चय हुआ कि यह असली वज्र हीरा है। कांच का टुकड़ा भला क्या चोट सहेगा, वह तो जरासे दबाव से ही टूट कर चकनाचूर हो जायगा।

किशोर-केसरी काशीराम जी ने भी अपने ऊपर निरन्तर १२ वर्ष तक अनेक असह्य चोटें सहलीं, तब जाकर सफलता देवी के

दर्शन किये। उन्होंने इस परीक्षण काल में अपने आपको संत-जीवन के लिये पूरा अधिकारी बना लिया था। वे प्रत्येक विघ्न बाधाओं पर पांव धरते हुए आगे ही बढ़ते गये। भयंकर से भयंकर विपत्ति, कठोर से कठोर यातना, या बड़े से बड़े प्रलोभन के सामने भी इस साधक के पांव अपने पथ से नही लड़खड़ाये। वह अविचल भाव से—

'एका नारी सुन्दरी वा दरी वा।'

के अनुसार विरक्ति रूपी वधू को वरने के लिये निरन्तर अग्रसर होते ही गये। घरवाले उन्हें विवाह-बन्धन में बान्धकर उनके पांवों को जमीन में गाड़ देना चाहते थे। उन्हें पंगु बना कर गतिहीन बना देना चाहते थे, पर वे तो विहग की भांति विश्व भर में आत्म-कल्याण के लिये विचरण करने का प्रण कर चुके थे। काम, क्रोध, मद, लोभ मोह आदि षड् रिपुओं पर जिसने विजय-प्राप्ति का निश्चय कर लिया हो, वह भला विरक्ति रूपी वधु को छोड़ कर किसी हाड़ मांस की पुतली से प्यार करने की बात सोच ही कैसे सकता है। इसीलिये तो कविकुल गुरु कालिदास ने कहा है कि—

असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः।
अनाक्रम्य जगत्कृत्स्नं नो संध्यां भजते रविः॥

बारह वर्ष के सतत संघर्ष के पश्चात् अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य युद्धों में सब विघ्न बाधाओं को पराजित कर यह वीरव्रती आज विजय-वधू से विवाह करने के लिये उद्यत हो रहा है। इस विजय लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये इसने कुछ कम कष्ट नहीं सहे हैं भयंकर से भयंकर प्राणान्तकारी पीड़ाओं तथा यम यातनाओं, अनेक प्रकार की ताडनाओं व भर्त्सनाओं को अविचल भाव से

सह लेने के पश्चात् ही वह आज अपनी मन चाही वस्तु को प्राप्त करने का अधिकारी हुआ है। आज इस अनुपम वैरागी की अविरत कृच्छ्र साधना से प्रसन्न होकर गुरुदेव ने गद्-गद् स्वर से कहा कि—

'बेटा, हम तुम्हारी अटल निष्ठा को देखकर बहुत प्रसन्न हैं। हम चाहते तो आज से वर्षों पूर्व तुम्हारी दीक्षा का प्रबन्ध कर सकते थे। तुम्हारे ये सम्बन्धी या श्री संघ का कोई सदस्य हमारी इच्छा के विरुद्ध नहीं चल सकता।

पर बिना कठोर परीक्षा के संसार को तुम्हारी अटल निष्ठा का पता कैसे लगता। अब तुमने कठोर अग्नि परीक्षा में पड़कर यह सिद्ध कर दिया है कि तुम संत-जीवन पालन करने के पूर्ण अधिकारी हो, तुमने अपने आपको इसके योग्य बना लिय है। तुम्हारे तप, त्याग और दृढ़ निश्चय ने सब संसारियों को तुम्हारे आगे झुकने के लिये बाध्य कर दिया है। यह तुम्हारे सच्चे वैराग्य का ही फल है कि जो सगे सम्बन्धी कल तक तुम्हें घर का काल कोठड़ियों में कैद कर रखने के लिये कटिबद्ध थे, तुम्हें पुलिस से पकड़वा देने के लिये पूरे-पूरे प्रयत्न कर रहे थे, वे ही आज तुम्हें दिव्य दीक्षा देवी का वरण करने के लिये सहर्ष सम्मति दे रहे हैं। कल वे तुम्हारे चरणों म श्रद्धावनत होकर झुक जायेंगे। सत्य की संसार में सदा विजय होती है। सत्पथ पर चलने वाले पथिक के लिये कभी कोई भय, संताप या पश्चात्ताप का अवसर नहीं उपस्थित होता। उस के मार्ग में जो लोग बाधा उपस्थित करते हैं, अन्त में उन्हें पछताना पड़ता है।

इसलिये तुम्हारे परिवार के जो लोग मोहपाश में बन्ध कर अब तक बाधक बने हुए थे, अब उन्हें अपने उन कार्यों पर पश्चात्ताप हो रहा होगा। और सोच रहे होंगे कि हम ने ऐसे

सरल साधु हृदय बालक को व्यर्थ में ही इतना क्यों सताया। पर इस से तुम्हारी तो कुछ हानि नहीं हुई; प्रत्युत अमित लाभ ही हुआ है। आज तुम्हारी परीक्षा पूरी हो गई है। उस परीक्षा में तुम सर्वथा सफल सिद्ध हुए हो, अतः मैं सहर्ष तुम्हें दीक्षा देने के लिये उद्यत हूँ। तुम्हारी दीक्षा का यथासम्भव शीघ्र प्रबन्ध हो जायगा। हृदय से तो तुम कभी के दीक्षित हो चुके हो, पर लोक-दृष्टि से भी तुम्हें यथा समय दीक्षा दे दी जायेगी। अब किसी प्रकार की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। निश्चिन्त होकर धर्म, ध्यान तथा तपस्या की कमाई करते जाओ।'

इस प्रकार नवयुवक वैरागी को सान्त्वना देकर पूज्य श्री ने श्रीसंघ से परामर्श कर दीक्षा का समय निर्धारित कर लिया। यह निर्णय कर लिया गया कि चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् दीक्षोत्सव सम्पन्न किया जाय। और इसके लिये अभी से तैयारियां आरम्भ कर दी जाय। तदनुसार कांधला के श्रीसंघ में अभी से इस दीक्षा की चर्चा आरम्भ हो गई।

पूज्य श्री के ऐसे आश्वासन भरे अमृतमय वचनों को सुनकर वैरागी जी का हृदय आनन्दोत्साह के कारण बल्लियों उछलने लगा। वे फूले नहीं समा रहे थे। अब उन्होंने भगवान् महावीर के—

"तवेण परिसुज्झइ"

अर्थात् मुमुक्षु साधक तप से कर्म मल रहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।

इस आदेश के अनुसार अपने आप को कठोर तप के मार्ग में प्रवर्तित होने के लिये कटिबद्ध कर लिया।

अणसण-मूणोयरिया, भिक्खायरिया रसपरिच्चाओ।
काय-किलेसो संलीणया य बज्झो तवो होई ॥ १ ॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तदेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो एसो अब्भिन्तरो तवो॥ २॥

भगवान् महावीर के उक्त आदेशानुसार अनशन, ऊनोदरी भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलेखना ये छः बाह्य तप करने आरम्भ कर दिये। साथ ही प्रायश्चित्त, विनय वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग इन छः आभ्यन्तर तपों की साधना में भी अपने मन को रमा लिया। क्योंकि पूर्वाभ्यास के बिना कोई भी व्यक्ति, एकदम साधुओं के मार्ग पर चल नहीं सकता। मुनियों की वृत्ति सचमुच असिधार व्रत है।

इस प्रकार युवक केशरी काशीराम जी पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के सांनिध्य में वैरागी के रूप में रहते हुए साधना के मार्ग में उत्तरोत्तर प्रगतिशील होने लगे। देखते ही देखते श्रावण की रिमझिम-रिमझिम भरी फुहारें व भादों की झड़ियाँ रस बरसाती हुई आईं और चली गईं। गर्मियों के संताप से सूखे नदि नाले, अब जल के प्रवाहों से भर कर उमड़ घुमड़ कर बहने लगे। प्रखर धूप की तेजी से झुलसे मुरझाये और सूखे हुए लता पादपवृन्द, हरे भरे होकर लहलहा उठे। चारों ओर प्रकृति ने रमणीय रूप धारण कर अनुपम सरसता का संचार कर दिया। बाह्य प्रकृति के समान नवयुवा वैरागी की आन्तरिक प्रकृति भी पल-पल में परिवर्तित रूप धारण कर रही थी। कुछ समय पूर्व जो मानस भूमि निराशा, शोक, सन्ताप और दुःखों का आगार बनी हुई थी, उसी में अब आशा, उत्साह और आनन्द के अंकुर फूटने लगे। पारिवारिक स्वजनों द्वारा प्रदत्त यमयातनाओं और भर्त्सनाओं का सब ताप शाप शान्त हो गया। अब हृदय स्थल में वैराग्य की प्रबल धारा अबाध रूप से, प्रबल वेग के साथ बहने लगी। उस धारा के मार्ग में जो भी विघ्न-

बाधा रूपी भयंकर पर्वतों की पंक्तियां खड़ी हो गई थीं, वे सब अब न जाने कहाँ विलीन हो गई थीं। अपने मार्ग पर निरन्तर बढ़ती रहने वाली साधना का स्रोत जब शान्ति और सहन शीलता की धारा के रूप में बहने लगता है तो उसके मार्ग के बाधक बड़े-बड़े अटल पर्वत भी उसे स्वयं मार्ग देने के लिए विवश हो जाते हैं। अब इस धारा के प्रचंड वेग को विश्व की कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती।

श्रावण भाद्रपद के झंझा के झोकों के साथ आने वाली झड़ियां देखते ही देखते काल के गाल में विलीन हो गईं। वे प्रचंड आंधी और तूफान जिन्होंने समस्त प्रकृति को त्रस्त कर डाला था, सहसा अन्तर्हित हो गए। समस्त जगत् को अपने आतङ्क और प्रभाव से चकित और भयभीत कर देने वाली, अन्धकार की चलती फिरती पर्वत-मालाओं के समान उड़ती हुई बादलों की घनघोर घाटयें, और दमकती और कड़कड़ाती हुई बिजली की चकाचौंध बात की बात में हवा हो गई। अब प्रकृति ने परम-रमणीय एक नवीन आकर्षक रूप धारण कर लिया। शरद् चन्द्र की चांदनी की अनुपम छटा दिग्-दिगन्तों में छा रही थी।

इधर हमारे चरित नायक की भाव भूमि भी शरद् की सुषमा के समान कमनीय कान्ति युक्त होकर निर्मलरूप धारण कर रही थी। उनके जीवन में अब तक जो प्रचंड आंधी और तूफान उठे थे वे सब शान्त हो गये थे। निराशा और दुःखों के अन्धकार की घटाएँ भी छिन्न-भिन्न हो चुकी थीं। अब तो उनका चित्त-चकोर नित्य ही पूज्य आचार्य चरणों की चारु चन्द्रिका के पान करने में मग्न दिखाई देता था। अब संशय भ्रम और संकटों के बवण्डर विलीन हो चुके थे। कार्तिक की कुहू की काली कलूटी

रात ज्योंही दीपावली के दिव्य प्रकाश से जगमगा उठी, त्योंही साधक का हृदय भी ज्ञान के अनुपम प्रकाश से आलोकित हो उठा।

इस प्रकार श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक, ये चारों मास क्रम-क्रम से आये और चले गये। समय को बीतते कुछ देर नहीं लगती। दीक्षा के लिए उत्सुक वैरागी जी को जो चार मास चार युगों के समान लम्बे दिखाई दे रहे थे, पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के चरण कमलों में रह कर ज्ञान, ध्यान और तप का उपार्जन करते हुए, वे चार मास कुछ पलों के समान बीत गए।

चातुर्मास की समाप्ति होते ही मार्गशीर्ष मास के आरम्भ में किशोर-केसरी की दीक्षा की तैयारियाँ जोरशोर से होने लगीं। दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिये चतुर्विध श्रीसंघ के पास स्थान-स्थान पर निमन्त्रण पत्र भेजे जाने लगे। समग्र जैन जगत् में उत्साह की अनुपम लहर छा गई। कान्धला नगर तो आनन्द और हर्षातिरेक के कारण, शरत् कमल की भांति विकसित हो उठा। दीक्षा देवी के दिव्य दर्शनों के लिये लालायित युवक केसरी काशीराम का घर-घर स्वागत और अभिनन्दन होने लगा। आज इसके तो कल उसके, प्रातः यहां तो सायँ वहां प्रीतिभोजों का तांता सा बंध गया। प्रत्येक परिवार अपनी शक्ति से भी बढ़-चढ़ कर दीक्षाव्रती इस नवयुवक का स्वागत करने में जी जान से जुट गया।

कांधला नगरी में महोत्सव

इस प्रकार परम आनन्द और उत्साहपूर्ण स्वागत सत्कारों के आयोजनों के साथ-साथ वह परम पुनीत घड़ी आ पहुँची, जिस के लिये हमारे चरित नायक ने निरन्तर बारह वर्ष तक अखंड साधना की थी। दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिये बाहर से नर-नारियों के झुण्डों के झुण्ड एकत्रित होने लगे। कांधला नगरी की चहल-पहल और रौनक का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। अतिथियों एवं साधु-संतों के आतिथ्य सत्कार के लिये यह नगरी आज नववधु की भांति सुसज्जित हो गई है। कल मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी (सं० १९६०) के शुभ दिन शुभ मुहूर्त में दीक्षा विधि सम्पन्न होने वाली है। इसलिये आज ही से नगर में स्थान स्थान पर तोरण द्वार व बन्दनवारों से सजावट होनी आरम्भ हो गई है। जिन-जिन मुख्य मार्गों और बाजारों से दीक्षा व्रती वीर-वरों का जुलूस निकलने वाला है, नागरिक गण उन पर अभी से हरे पत्तों और बहुमूल्य विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत द्वार आदि निर्माण करने में लगे हुए हैं। इस दीक्षोत्सव को देखने के लिये बालक वृद्ध स्त्री पुरुष सभी की आंखें ललचा रही हैं। सभी ने आनन्द और उत्साह के साथ नाना प्रकार की तैयारियाँ करते हुए जागते ही जागते रात बिता दी। आज कांधला का निखिल जैन जगत् प्रातःकाल ही सज-धज कर

स्थानक की ओर बढ़ा जा रहा है। सब नर नारियों बालक तथा बूढ़ों के मुखों पर यही चर्चा है कि आज दो वैरागी तथा एक वैरागिन तीनों बड़े भारी सांसारिक वैभव, विलास, सुख, सम्पत्ति एवं पारिवारिक संसारी सम्बन्धों का परित्याग कर जैन निर्ग्रन्थ साधु बनेगें। पूज्य श्री आचार्य श्री १००८ सोहन लालजी महाराज आज तीनों को दीक्षा देगें। श्री काशीराम तथा नरपति-राय नामक दोनों वैरागी पंजाब के पसरूर नगर के निवासी उच्च कुलोत्पन्न हैं। तीसरी वैरागिन मथुरा देवी भी एक सम्पन्न परिवार की सुशील कन्या रत्न है। इन तीनों वैरागियों का अत्यन्त भव्य जुलूस निकलने वाला है।

हर्षोत्फुल्ल नर-नारियों के इस प्रकार चर्चा करते ही करते उधर वाद्य-ध्वनि सुनाई देने लगी। नगारे, नफीरी, बैंड, आदि नानाविध वाद्यों ने एक साथ दिङ्मंडल को गुञ्जा दिया। वाद्य-यन्त्रों की गम्भीर निनाद ध्वनि और प्रतिध्वनि पृथ्वी और आकाश में व्याप्त हो गये। सुवर्णदण्ड हाथी, घोड़े, रथ, पताका-झंडे-झंडिया छत्र, चँवर, तथा सैकड़ों गणवेश-धारी स्वयंसेवकों के समूह शोभायात्रा के प्रारम्भ स्थान पर पहले ही से उपस्थित थे।

आज उन्नीस वर्ष की नवयौवन-पूर्ण वय में यह विशिष्ट वरागी विरक्ति-वधू को वरने के लिए प्रस्तुत हो रहा है। इसलिए वरयात्रा की सभी तैयारियें विधिवत् सम्पन्न हो रही हैं। यह देखो पर्वताकार मदोन्मत्त मतङ्गज पर रत्न-खचित सुवर्ण को अम्बारी सुशोभित हो रही है। उसमें साक्षात् कामदेव के समान अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न दिव्याम्बरधारी, सिंह के समान तेजस्वी, गौरवर्ण नवयुवक काशीराम जी विराजमान हो गये हैं। उनके साथ ही दूसरे सुसज्जित हाथी पर नरपति राय बैठे हुए हैं। पीछे दिव्य, मनोहर, चित्र-विचित्र सोने के बेल बूटे से

अंकित देवविमानोपम रथ में वैरागिन मथुरा देवी विराजमान है। अब शोभा-यात्रा ने प्रस्थान कर दिया · सबसे आगे एक श्वेत वर्ण अश्व पर स्वस्तिक चिन्हांकित जैनधर्म की शुभ्र पताका फहरा रही है। उसके पीछे ऊँचे-ऊँचे ऊँटों पर नगारे अपनी गड़-गड़ाहट से गगन मण्डल को गुंजा रहे हैं, उनके पश्चात् नाना प्रकार के बैंड बज रहे हैं। बीच-बीच में सैंकड़ों फर-फराती और सर-सराती हुई रंग-बिरंगी पताकाओं से युक्त बोसियों शकट बढ़े चले जा रहे हैं। सजीव से प्रतीत होने वाले काष्ठनिर्मित उच्चैश्रवा श्वेत घोड़ों की जोड़ी की तथा सात सूंडधारी सफेद ऐरावत हाथियों की अनुपम प्रतिमा अपनी निराली छटा से दर्शकों के नेत्रों को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। बीच-बीच में गायकों की मण्डलियां वीर प्रभु के गुण-गान एवं जयकारों से सारे नगर को प्रतिध्वनित करती जा रही हैं।

पंक्ति-बद्ध स्वयंसेवक तथा सेविकाओं के समूह सैनिकों की भाँति दृढ़, नियमित गति से आगे बढ़ते जा रहे हैं। इन सब के पीछे तीनों वैरागियों की सवारी आ रही है, इन सवा-रियों के आगे-आगे सुन्दर सुडौल घोड़ों पर शुभ्रछत्र चँवर आदि वैभव चिन्ह विलसित हो रहे हैं। वैरागिन मथुरा देवी जी के रथ के पीछे रंग-विरंगे चित्र-विचित्र आकर्षक मनोहर वेशों से सुस-ज्जित देवाङ्गनोपम सुन्दरियाँ मन्द मधुर मोहक ध्वनि से मंगलगान गाती चली जा रही हैं। साथ ही नगर के तथा बाहर से आये हुए सैकड़ों प्रतिष्ठित गण्य मान्य महानुभाव आनन्द में मग्न सवारी के आगे और पीछे चले जा रहे हैं।

घड़ी भर पश्चात् ही दीक्षा ग्रहण कर विरक्तवेषधारी साधु बन जाने वाले परम सुन्दर नवयुवा काशीराम के अनुपम रूप को निहार-निहार कर चकित और स्तब्ध हुए नर-नारियों के मुख से अनायास निकल पड़ता है, कि यह कैसा तेजस्वी रूपवान् नव-

युवक है, इसके मुख मंडल पर दिव्य दीप्ति दमक रही है। ऐसे कमनीय किशोर पर तो कोटि-कोटि कुल-कामिनियाँ अपने परमाकर्षक रूप लावण्य और स्वरूप सौंदर्य को न्यौछावर कर सकती हैं। यह तो इसके वैभवविलास और सुख भोग की अवस्था है। वरवेष में सुसज्जित में देखकर कौन विश्वास कर सकता है कि यह किसी कुलकन्या का पाणि-ग्रहण करने नहीं, प्रत्युत विरक्तिवधू से विवाह कर साधु बनने जा रहा है।

'नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च'

निश्चय ही इसके हृदय पर कोई बहुत बड़ी चोट पहुंची है, जिससे यह साधु बनने जा रहा है। कोई कहता, माँ-बाप ने महाराज को भेंट चढ़ा दिया होगा, कोई भी ऐसी जवानी में अपनी इच्छा से जैन साधु नहीं बन सकता। कोई कहता, महाराज ने बहका कर साधु बनने के लिए प्रेरित कर लिया होगा। कोई कहता वे माँ-बाप भी कैसे कठोर हृदय और निर्दय होंगे, जिन्होंने ऐसे सुकोमल, सुन्दर किशोर केसरी को साधु बनने की स्वीकृति दे दी। कहाँ तक कहें हजारों की इस भीड़-भाड़ में सभी लोग जितने मुँह उतनी बातें कर रहे थे। अधिकतर ऐसी बातें करने वाले जैन धर्म के महत्व और वैशिष्ट्य से अपरिचित थे। वे यह नहीं जानते थे कि वैराग्य के जिस कठोर असिधार व्रत पर चलना अन्य सम्प्रदायानुयायी नवयुवकों के लिए कठिन ही नहीं असम्भव सा प्रतीत होता है, जैन-धर्म के नवयुवक उसी त्यागमय साधु जीवन को सहर्ष अपना लेते हैं। इन भोले-भाले लोगों को क्या मालूम कि वास्तव में न तो माता-पिता ने इन्हें किसी साधु के भेंट ही चढ़ाया था। न किसी साधु ने कुछ बहकाया ही था, न कोई उन्हें सांसारिक आघात या ठेस ही पहुंची थी। वह तो पूर्व-जन्म के पुण्य संस्कारों के कारण इस युवावस्था में सांसारिक सुख-विलासों

को तृणवत् तुच्छ समझ कर त्याग देने के लिए तत्पर हो रहा है।

जाकी रही भावना जैसी,
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

के अनुसार सब लोग अपनी-अपनी भावनाओं के अनुरूप अनेक प्रकार विचार करते और भगवान् वीर प्रभु की जय-जयकार से नगर को गुंजाते हुए जुलूस के साथ आगे बढ़े जा रहे थे, तो कई अपनी हाट-बाटों और दुकानों पर या घर द्वारों पर खड़े इस अभूतपूर्व और अदृष्ट पूर्व शोभा यात्रा (जुलूस) को देखकर अपने नेत्रों को तृप्त कर रहे थे। कुल-कामिनियाँ छज्जों पर बैठकर पुष्प वर्षा कर रही थीं। सब सड़कें और राजमार्ग केवड़े और गुलाब जल के छिड़काव से तर हो रहे थे। स्थान-स्थान पर बने हुए तोरण और सुसज्जित दूकानों में से सुगन्धित धूप, अगरबत्ती आदि के सुरभित धूम से सारा नगर सुगन्धित हो उठा। कहीं मधुर जल पान करा कर, तो कहीं इत्रपान करा कर, कहीं पान, सुपारी, इलायची भेंट देकर तो कहीं फल-मेवे और मिष्टान्नों के द्वारा जुलूस का स्वागत-सत्कार किया जा रहा था। इस प्रकार निश्चित मार्गों से होता हुआ यह जुलूस सभा-स्थान पर आ पहुंचा। पलक झपकते ही सभा मंडप हजारों नर-नारियों से भर गया।

सब लोगों के शान्ति और सुव्यवस्था के साथ बैठ जाने पर सूचना दी गई, कि परम-प्रतापी अखंड बालब्रह्मचारी श्री १००८ आचार्य पूज्य सोहनलाल जी महाराज मंच पर पधारने वाले हैं। आप लोग सब शान्तिपूर्वक यथास्थान बैठे रहें। इसके कुछ क्षण पश्चात् ही तारक-वृन्द से सुशोभित, नक्षत्रेश सुधाकर के समान शान्त-स्निग्ध शुभ आभा से समन्वित पूज्य श्री ने मंच पर पदार्पण किया। उनके प्रवेश करते ही 'जैन धर्म की

जय' 'भगवान् महावीर स्वामी की जय' 'पूज्य श्री आचार्य सोहनलाल जी महाराज की जय' आदि जयघोषों से सारा सभा मंडप गूंज उठा। इसी समय काशीराम जी आदि तीनों वैरागी भी राजसिक वस्त्रों को छोड़ श्वेत साधुवस्त्र धारण कर केश कटवा कर मुँह पर मुखवस्त्रिका बान्धें और हाथ में रजोहरण लिये हुए सभा भवन में प्रवेश कर पूज्य श्री की वन्दना कर नत मस्तक हो खड़े होगये।

इन वैरागियों के आकार-प्रकार तथा–वेश भूषा में सहसा इस प्रकार महान् परिवर्तन देख कर सब लोग चकित हो दांतों तले अंगुली दबाने लगे। कुछ क्षणों पूर्व जो नवयुवक राजसी ठाठ-बाट से सुसज्जित हो हाथी पर बैठा हुआ राजकुमार सा लग रहा था, वही अब साधारण जैन भिक्षुक के रूप में सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार अलौकिक त्यागमय परिवर्तन को देखकर सभी के मुखों से अनायास ही धन्य-धन्य की ध्वनि निकल पड़ी। सब उपस्थित नर नारी युवक केसरी की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि त्याग और वैराग्य हो तो ऐसा हो। अब सब उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों को उपदेश सुनने के लिये लालायित देख पूज्य श्री ने इस प्रकार उपदेशामृत की वर्षा आरम्भ की।

दीक्षा के सम्बन्ध में पूज्य श्री का प्रवचन—

देवानुप्रियो! आज बड़े हर्ष और मंगल का अवसर है कि आप लोग इतनी बड़ी संख्या में इस दीक्षोत्सव में उपस्थित हुए हैं। मैं समझता हूं कि आप लोगों के हृदय यह जानने के लिए उत्सुक हो रहे हैं कि यह दीक्षा क्यों? और किस लिए इन नवयुवक और युवतियों ने ऐसी भरी जवानी में संसार त्याग का निश्चय किया है, और हम इन वैरागियों को दीक्षा देने के लिए

क्यों उद्यत हो रहे हैं आदि। कुछ गम्भीरता से विचार करने पर इन प्रश्नों का उत्तर आपको अपनी आत्मा से स्वयं मिल जायगा। आप जानते हैं कि—

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चले जीवितयौवने।
चलाचले ही संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥ १ ॥

अर्थात् यह धन सम्पत्ति सदा किसी के पास नहीं रहती। यह माया आनी-जानी है। एक दिन ये प्राण भी निकल जायेंगे। यह जीवन हमेशा रहने का नहीं और यौवन ता दो दिन का है। फिर बुढ़ापा आ घेरेगा। इस प्रकार इस संसार में सभी कुछ नष्ट हो जायगा। कुछ भी स्थिर न रहेगा। केवल एक धर्म ही ऐसी वस्तु ह जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। न केवल इस जन्म में ही, धर्म ता जन्म-जन्मान्तरों तक आप का साथ देगा।

इसलिए जा व्यक्ति धर्म की ओर से गाफिल, उदास रह कर भोग-विलासों में, सांसारिक काम-धन्धों में फंसा रहता है, उ ससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा।

पर दुःख तो इस बात का है कि जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के दुःखों को निरन्तर देखकर भी मनुष्य नहीं देख पाता। आप में से कौन ऐसा व्यक्ति है जिसको यह अनुभव न होता हो कि यह संसार दुःखों का भंडार है। एक न एक दिन मौत सब का गला आ दबोचेगी, पर फिर भी कभी किसी ने विचार किया है कि इन दुःख-द्वन्द्वों से मुक्ति पाने के लिये हमें कोई न कोई उपाय करना चाहिए। करोड़ों में से कोई एकाध ही ऐसा आत्मज्ञानी पुरुष निकलता है जो इन संसारिक क्षणभंगुर विषय-वासनाओं से मुख मोड़ विरक्ति-वधू के साथ अपना नाता जोड़ता है। जब आत्मबोध का उदय हो जाता है तो वैरागी को पुष्प कोमल शय्या कांटों के समान चुभने लगती है। ये सोने-चांदी और हीरे

जवाहरात आदि के रत्नाभूषण नागों की भाँति डसने वाले प्रतीत होते हैं। दुनिया के यह एशो-आराम,भोगविलास, मलमूत्र की भाँति घृणित और हेय प्रतीत प्रतीत होने लगते हैं। सारा संसार ही दहकते अंगारों से भरा हुआ आगार सा भासित होने लगता है। फिर वह प्रतिपल इसी प्रयत्न में रहता है कि शीघ्र काम, क्रोध, लोभ मोह की आग से जलते हुए इस घर से निकल भागूँ। पर यह अवस्था साधक को तभी प्राप्त होती है जब उसके हृदय में सच्चा वैराग्य जागृत हो जाय।

वक्तृता के क्रम को आगे बढ़ाते हुए महाराजश्री ने फर्माया कि:—धर्म प्रेमी उपस्थित सज्जनो, आप इन दीक्षा लेने वाले तीन वैरागियों को देख रहे हैं। इनके हृदय में वैराग्य की प्रबल लालसा लहरा रही है। यह वैराग्य भावना कोई एक दो दिनों में सहसा ही नहीं जागृत हो गई। वास्तव में तो वह पूर्व जन्म के पुण्य संस्कारों के कारण ही उद्‌बुद्ध हुई है। तदनुसार इस विरक्ति की प्रवृत्ति के अंकुर बचपन में ही फूट निकले थे।

यह काशीराम आज ६ वर्ष से दीक्षा ग्रहण करने के लिये छटपटा रहा था। घर वालों ने इसे साधु बनने से रोकने के लिए कोई कसर उठा नहीं रखी। बड़े से बड़ा प्रलोभन दिखाया गया, कठोर से कठोर दण्ड दिया गया, काल कोठरियों में कैद रखा गया, चारपाईयों के पावों के नीचे हाथ दबा दिये गये, भरपेट मार-पीट की गई और अन्त में कोई साधु दीक्षा न दे, इसके लिए सरकारी आज्ञा निकलवा दी गई, पर इस वीर प्रभु के सच्चे श्रावक को दीक्षा ग्रहण करने से कोई भी उपाय न रोक सका। क्योंकि इसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य की जो ज्योति एक बार जागृत हो चुकी थी, वह फिर लाख प्रयत्न करने पर भी बुझाए न बुझ सकी।

संसार में सुख कहां है। सच्चा सुख तो वीतरागता में ही है। जैसा कि शास्त्रकार कहते हैं:—

"रांगओ सुही साहु वीतरागी"

अर्थात् समस्त संसारी वस्तुएँ दुःख देने वाली हैं। एक वीतरागी साधु ही सच्चा सुखी और निर्भय है।

इन वैरागियों ने सच्चा सुख और वास्तविक निर्भयता को प्राप्त करने के लिए ही साधुवृत्ति ग्रहण की है। अपने आप धर्म का आचरण और दूसरों को धर्मपथ पर चलने के लिए प्रेरित करना ही अब इनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य है। क्योंकि धर्माचरण से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है:—

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं"

संसार की सभी भय-प्रद वस्तुओं में उत्कृष्ट मंगलकारी धर्म ही है और उस धर्म का वास्तविक स्वरूप वैराग्य से ही जागृत होता है।

इस संसार में ऐसा कौन होगा जो सुखी, संतुष्ट और निर्भय न होना चाहता हो। आप सब लोग रात-दिन जो दौड़-धूप करते रहते हैं, आकाश पाताल के कुलावे मिलाते रहते हैं, न जाने कितना झूठ-सच बोलते रहते हैं, यह सब किस लिये। इसीलिए न कि आपको सुख शान्ति प्राप्त हो जाय। आपको किसी प्रकार का कोई दुःख या भय न रहे, आप सब प्रकार से निर्भय हो जाएं, पर यहां निर्भयता है कहां? जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य को नाना प्रकार के शोक, चिन्ता आदि घेरे रहते हैं। भोगविलास में फंसे रहने पर मनुष्य की शक्ति क्षीण हो जाती है। शक्ति के क्षीण हो जाने पर उसे नाना प्रकार के रोग आ दबोचते हैं। इसलिए भोगविलासों के साथ रोगों का भय चिपटा रहता है। यदि मनुष्य धन संग्रह करता है तो उस धन के कारण

उसे राजा और चोरों का डर लगा रहता है। नाना प्रकार के टैक्सों का भय सदा उसको घेरे रहता है। सुन्दर रूप को बुढ़ापे का भय सताता रहता है, क्योंकि वृद्धावस्था में कभी किसी का रूप बना नहीं रहा। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवहार भय से भरा हुआ है। इसीलिये कहा है कि:—

भोगे रोगभयं, कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम्॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं कामे कृतान्ताद्भयम्।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

कहने का आशय यह है कि विरक्त या वीतराग पुरुष ही सब सांसारिक दुःख द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त कर सकता है। इन चंचल चित्तवृत्तियों को रोकने के लिये, वैराग्य ही अमोघ उपाय है।

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।'

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही चंचल चित्तवृत्ति का निरोध सम्भव है। इसीलिये वैराग्य के जागृत होने के कारण ही इन वैरागियों ने दीक्षा ग्रहण की है।

साधु के पांच महाव्रत—

जैन साधु का जीवन बिताना कोई सरल कार्य नहीं है। साधू को इन पांच महाव्रतों या (यमों) का जीवन भर सावधानी के साथ पालन करना पड़ता है:—

१. अहिंसा व्रत— इसे ही योगदर्शन तथा मनुस्मृति आदि में पूर्ण अहिंसा नामक प्रथम यम कहा गया है। किसी भी प्राणी, भूत, जीव या सत्व की मन, वचन, कर्म से हिंसा न करना न कराना, न अनुमोदन करना ही अहिंसा व्रत कहलाता है।

पृथ्वी काय जीवों की हिंसा से बचने के लिए कच्ची मिट्टी आदि पर चलना भी साधक के लिए मना है। जलकाय जीवों की हिंसा से बचने के लिए सचित्त पानी का ग्रहण भी हम नहीं कर सकते। अग्नि काय जीवों की हिंसा से बचने के लिए अग्नि सेवन भी वर्जित है। वायुकाय जीवों की हिंसा से बचने के लिए साधु वृत्ति में वायु का सेवन भी नहीं कर सकता, क्योंकि वायुकाय जीवों की हिंसा वायु से ही हो सकती है, इसलिए मुख से बोलते हुए श्वास वायु के द्वारा, वायुकाय जीवा की हिंसा न हो जाए, इस उद्देश्य से मुंह पर मुख पट्टी बाँधी जाती है।

२. सत्य व्रत—यह सत्य नामक दूसरा यम है। साधु को कभी असत्य भाषण नहीं करना होता।

३. अचौर्य व्रत—इसे ही अस्तेय व्रत कहा गया है। साधु को प्रत्येक प्रकार की चोरी से बचना चाहिए।

४. ब्रह्मचर्य व्रत—इस व्रत का पालन करने वाले साधु को ब्रह्मचर्य के पालन के साथ-साथ अपने शरीर का सब प्रकार का शृंगार भी छोड़ देना पड़ता है। क्योंकि शृंगार का और ब्रह्मचर्य का परस्पर छत्तीस ३६ का सा विरोध है। इस लिए शृंगार में सहायक होने के कारण स्नान तक साधु के लिए निषिद्ध ठहराया गया है। कहा है कि—

सुख शय्यासनं वस्त्रं, ताम्बूलं स्नानमर्दनम्।
दन्तकाष्ठं सुगंधञ्च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम्।

इसलिए उक्त सब वस्तुओं का सेवन साधु के लिए निषिद्ध है।

५. अपरिग्रह व्रत—कहा जाता है साधु कभी किसी अवस्था में अपने लिए कुछ भी संग्रह नहीं कर सकता। यहाँ तक कि वस्त्र और पात्र भी परिमित ही रखने पड़ते हैं। आहार और पानी

भी अपने एक समय भोजन करने के लिए जितना पर्याप्त हो उतना ही मांग कर लाना पड़ता है। सोना, चाँदी रुपया, पैसा आदि धातु या नोट आदि किसी भी रूप में धन का स्पर्श नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त रात्रि को भोजन, यात्रा आदि सभी वर्जित है।

इस प्रकार जैन साधु का जीवन अनेक प्रकार के परिषहों या कष्टों से भरा हुआ होता है। इन का मुख से वर्णन कर देना और बात है और इन सब व्रतों का जीवन भर पालन करना दूसरी बात।

आज से लोकैषणा, धनैषणा, पुत्रैषणा आदि सब प्रकार की एषणाओं या इच्छाओं का इन्होंने परित्याग कर दिया। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विकार अब इनके मन को विकृत नहीं कर सकते। इस प्रकार सब विषयों और सब इच्छाओं का सहसा परित्याग वे ही कर सकते हैं, जिन्होंने संसार की नश्वरता को भली-भांति पहचान लिया है। जिन लोगों ने इस तत्त्व को समझ लिया है कि—

कायः सन्निहितापायः, सम्पदः पदमापदाम्।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्॥

शरीर का एक न एक दिन अवश्य नाश होगा, और यह सम्पत्ति, यह धन दौलत तो अनेक प्रकार की विपत्तियों या दुःख बाधाओं का ही भण्डार है। आज जिन बन्धु बांधवों से मिलन हो रहा है, कल उनसे अवश्य बिछुड़ना पड़ेगा और इस संसार में सभी पदार्थों का एक दिन नाश हो जायगा, फिर भला वह माया मोह के जाल में क्यों कर फँसा रह सकता है। वह तो

तत्काल इस से छुटकारा पाने का प्रयत्न करेगा। संसार से विरक्त या उदासीन हुए बिना सांसारिक माया मोह के पाशों से छूट नहीं सकता। इसलिए सांसारिक भोग विलासों से उदासीन हो आत्म-कल्याण की ओर उन्मुख होने में ही मनुष्य का सच्चा कल्याण है।

दीक्षा के समय इतना बड़ा उत्सव क्यों ?

काशीराम आदि इन वैरागियों ने आत्म-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ही दीक्षा ग्रहण की है। मैं देख रहा हूं कि आप में से कइयों के हृदय में यह शंका उत्पन्न हो रही है कि दीक्षा ग्रहण करने या साधु बनने के लिये इतनी धूम-धाम, इतने बड़े उत्सव और ऐसे भव्य समारोह की क्या आवश्यकता थी। किसी को साधु बनना था तो चुप चाप आकर दीक्षा लेकर साधु बन जाता। इसके लिये भला इतना बड़ा मेला क्यों लगाया गया।

आपकी इस शंका का समाधान करना मैं आवश्यक समझता हूं। इस महान् आयोजन के अनेक प्रयोजन हैं। इस प्रकार के समारोहों से बहुत से उद्देश्य सिद्ध होते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि जैनधर्म में श्रावक श्राविका, साधु और साध्वी, इस चतुर्विध श्रीसंघ के चारों अंगो को समान स्थान प्राप्त है। ये चारों ही धर्म के अनुसार अपने कर्त्तव्य-पथ पर निरत रहते हुए एक-दूसरे की धर्म-वृद्धि में सहायता करते हैं। यदि इनमें से कोई धर्म पालन रूपी अपने कर्तव्य से विमुख होता है, तो दूसरे अंग का कर्तव्य है कि वह उसे धर्म-भ्रष्ट न होने दे। जैसे कि यदि कोई श्रावक श्राविका धर्माचरण में प्रमाद दिखाये तो साधु साध्वियों के लिये यह आवश्यक है कि वे उन्हें धर्म-मार्ग में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित करते रहें। इसके विपरीत यदि कोई साधु साध्वी अपने कर्तव्यों के पालन में शिथिलता दिखाये, ऐसी

अवस्था में श्रावक श्राविकाओं को उन्हें अपने कर्तव्य पालन के लिये सावधान करना चाहिये। इसलिये आप लोगों को इतनी बड़ी संख्या में एकत्रित कर श्रीसंघ के सम्मानित सदस्य होने के नाते आपके कन्धों पर यह गुरुतर उत्तरदायित्व डाला जा रहा है कि दीक्षा ग्रहण कर लेने के पश्चात् साधु-वृत्ति ग्रहण कर लेने के बाद, यदि ये अपने नियम पालन में कुछ प्रमाद दिखायें, जाने या अनजाने में यदि ये अपने सत्-पथ से विचलित होते या भटकते दीखें तो आप लोग इन्हें सावधान करते रहें।

साधुओं के प्रति श्रावकों का कर्तव्य—

साथ ही यद्यपि जैन शास्त्रों में गृहस्थी और साधु के साथ रहने के अवसर बिल्कुल नहीं दिये गये हैं, जिससे कि उनके मन में कोई विकार उत्पन्न हो। फिर भी वन्दना के लिये, उपदेश श्रवण के लिये, अथवा शिक्षा ग्रहण करने के लिये अथवा ऐसे ही धार्मिक अवसरों पर श्रावक श्राविकाओं को साधु साध्वियों के श्रीचरणों में कभी-कभी घन्टों तक बैठना पड़ता है और साधु साध्वियों को भी आहार पानी आदि के लिये आपके परिवारों में आना पड़ता है, ऐसे अवसरों पर आप ऐसा कोई व्यवहार, ऐसी कोई बात या चेष्टा न करें जिस से इनके नियम पालन में कोई विघ्न पड़ने की आशंका हो।

इसके अतिरिक्त दीक्षा ग्रहण करते ही ये वीतरागता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अब इन्हें सांसारिक सुख दुःखों या संकल्प-विकल्पों से कुछ नहीं लेना देना।

का अरई, के आणंदे ? इत्थपि चरे, सव्वं हासं परिच्चज्ज आल्मीन-गुत्तो परिव्वये।

अर्थात्—योगी मुनि के लिए क्या दुःख और क्या सुख हो सकता है, वह तो हर्ष शोकादि से परे रहता है, वह सब प्रसंगों में अनासक्त भाव से विचरण करता है। सब प्रकार के कौतुहलों

को त्यागकर मन, वचन, काया को वश में रखकर परिव्वए = परिव्रजेत-साधु बनता है या साधु के धर्म का पालन करता है।'

इसलिए इन्हें तो अपने लिए आप लोगों को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है, अपने लिए किसी आवश्यक वस्तु की मांग नहीं सकते। मांगना तो दूर रहा, पहले से कोई विशेष रूप से इनके निमित्त रक्खी हुई वस्तु को भी ग्रहण नहीं कर सकते। ये तो भूखे रहें तो, और पेट भर जाय तो, तन ढकने को वस्त्र मिल जाय तो और न मिले तो सभी अवस्थाओं में प्रसन्न रहते हुए आत्मलीन ही रहेंगे।

पर यह आप का श्रावक-श्राविकाओं का परम प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है कि आज से आप इनकी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक साधनों में कभी कोई कमी न आने दें। ये साधु-संत जिस प्रकार आप को आध्यात्मिक भोजन देने, आप का पारलौकिक कल्याण करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं वैसे ही आपको भी इनके संयममय जीवन-यापन में सहायता देने के लिए तत्पर रहना चाहिये।

इस महोत्सव के साथ दीक्षा देने का एक और भी उद्देश्य है। माना कि इन वैरागियों के हृदय में अब तक प्रबल वैराग्य की धारा बह रही है। पर जीवन में कोई क्षण ऐसा भी आ सकता है जब साधक को साधना मार्ग से भटकने का भय हो जाय, ऐसे समय में गुरु-जनों के उपदेश और शास्त्र-वचन के साथ-साथ साधक को यह लोक-लज्जा का भय भी रहता है कि मैंने जिन हजारों श्रावक-श्राविकाओं और साधु-साध्वियों के समक्ष दीक्षा ली है, वे मुझे इस प्रकार नियमों से भटकते देखकर क्या कहेंगे? उसे सदा इस बात का ध्यान रहता है कि मैंने सहस्रों की संख्या में उपस्थित चतुर्विध श्रीसङ्घ के समक्ष दीक्षा ग्रहण की है—यह श्वेत बाना पहना है, इस निर्मल निष्कलंक

रूप को धारण किया है, कहीं इस में कलंक न लग जाय, मुनि-व्रत के पालन में कोई त्रुटि न आ जाय। जिन के सम्मुख मैंने दीक्षा ली, वे मुझे नीची निगाह से न देखने लगें। इस प्रकार चतुर्विध श्रीसङ्घ में परस्पर सद्भाव और सहयोग उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, आप लोग इनकी धर्म वृद्धि में और ये आपकी धर्म वृद्धि में सहायक होते रहें, इसीलिए साक्षी रूप में आप लोगों को यहाँ एकत्रित किया गया है।

इस के अतिरिक्त आप लोगों को इतनी बड़ी संख्या में यहाँ एकत्रित करने का एक और भी बड़ा उद्देश्य है। मनुष्य जैसे सम्पर्क में रहता है, जैसे समारोहों में उपस्थित होता है, उस का जीवन, उस का आचरण और उस के विचार भी वैसे ही बन जाते हैं। यदि मनुष्य रात-दिन खेल. तमाशा, नाटक, नाच, गाना या राग-रंग देखता रहेगा, या ऐसी महफिलों में जायगा तो अवश्य उसमें विलासिता के भावों की वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि मनुष्य साधु-सन्तों के सम्पर्क में आएगा तो उसके सात्विक भाव बढ़ेंगे। खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग पकड़ता है। एक वैरागी को अपना सब कुछ त्याग कर इस प्रकार साधु बनते देखकर हो सकता है आप में से भी कइयों के शुभ संस्कार जागृत हो जाएं। आज नहीं तो कल, अथवा जीवन में कभी किसी क्षण ऐसा अवसर उपस्थित हो जाय कि आपके हृदय में सच्ची वैराग्य भावना जागृत हो उठे, और आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त हो जाएं। क्योंकि साधारणतया दुनिया के धन्धों को छोड़ कर साधु बनना बड़ा कठिन है। सूत्रकार कहते हैं कि—

तं पडिक्कमंतं पविदेवमाणा मा चयाहि इय ते वयन्ति।
छंदो वणीया,अज्झोववन्ना अक्कंदकारी जणगा यन्ति॥

अलादि से मुक्ती (ख्याय) ओहँ तरए जाखगा जेण विध जढ़ा सरयां तथ

नो समेइ कहँ नु नाम से तत्थ रमइ ? एयं नाणँ सया समणु वासिज्जा सित्ति बेमि ।

अर्थात्—जब वीर पराक्रमी पुरुष त्याग या संयम के मार्ग को स्वीकार करने के लिए उद्यत होते हैं तो उनके माता-पिता आदि स्वजन बड़े शोक से भरे स्वर से विलाप करते हुए कहते हैं कि हम तेरी इच्छानुसार चलने वाले हैं, और तुझ से इतना स्नेह रखते हैं। इसलिए तू हमें मत छोड़। जो माता-पिता को छोड़ देता है वह आदर्श मुनि नहीं हो सकता, और ऐसा मुनि संसार से पार नहीं हो सकता। ऐसे वचनों को सुनकर परिपक्व वैराग्य वाला साधक उनकी बात को स्वीकार नहीं करता, आत्मोन्नति का दृढ़ विश्वास होने के कारण वह मोह-जन्य संसार के बन्धन में बन्धा नहीं रहता। इस प्रकार आप अपनी आंखों से प्रत्यक्ष यह अद्भुत दृश्य देखें और शिक्षा ग्रहण करें कि सच्ची लगन वाला कोई साधक किस प्रकार अपने माता-पिता, सगे सम्बन्धियों के अछेद्य मोह-पाशों को तोड़ कर शिक्षा ग्रहण कर लेता है, संसार से पार होने के लिए साधु का बाना पहन लेता है। इसीलिए आपको यहाँ एकत्र किया गया है। इस बड़े भारी समारोह के आयोजन का यही उद्देश्य है। आशा है अब आप को इस बड़ी धूम-धाम के सम्बन्ध में कोई शंका न रही होगी ?

दीक्षोत्सव के सम्बन्ध में इस प्रकार के मार्मिक रहस्य को प्रकट करने वाले प्रवचन को सुनकर सब लोग गद्-गद् हो गये। वे महाराज श्री की मन ही मन प्रशंसा करते हुए व्याख्यान श्रवण में तल्लीन हो गए। पूज्य श्री ने अपने व्याख्यान के क्रम को चालू रखते हुए फिर कहना आरम्भ किया—

संसार के मायाजाल से निकले हुए, जगत के बन्धनों से मुक्त एवं प्रमादी लोगों के संसर्ग से विरक्त, इन श्वेताम्बरधारी

संत काशीराम को देखिए, यह आप के हृदयों को जागृत करने के लिए, धर्म पथ पर प्रेरित करने के लिए आप के सम्मुख खड़े हैं। इन्होंने विश्व-कल्याण की प्रतिज्ञा करली है, आज से ये चतुर्विध श्रीसंघ की भलाई को अपनी भलाई और उसकी उन्नति को अपनी उन्नति समझेंगे।

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।'

के अनुसार आज से मनुष्य-मात्र इनके अपने परिवार के समान है। यूँ इन का अपना कोई परिवार या कुटुम्ब नहीं रहा, इसीलिए सारा विश्व ही इनका कुटुम्ब बन गया है। इनका धर्म, कर्म, ज्ञान, वैराग्य, तप और स्वाध्याय सब कुछ लोकोपकार के लिए ही होगा। कहा गया है कि—

परोपकाराय सतां विभूतयः ।

संतों की सम्पत्तियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं। पर साधु संतों के पास रुपया, पैसा, धन, दौलत, जमीन, जायदाद या हाथी, घोड़ों की सम्पत्ति थोड़े ही होती है। और जो ऐसी सांसारिक सम्पत्तियाँ रखते हैं, वे तो कभी साधु नहीं हो सकते—

उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर ।
अधिक ही संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर ॥

के अनुसार सच्चा साधु तो वही है, जो सांसारिक सम्पत्ति का सदा के लिये परित्याग कर आध्यात्मिक सम्पत्ति के उपार्जन में तत्पर हो जाए। इसीलिए साधु-संत धन-दौलत रूपी सम्पत्ति से नहीं, बल्कि तप, धर्म और ज्ञान रूपी आध्यात्मिक सम्पत्ति से लोकोपकार करते हैं। तदनुसार संत काशीराम आज से आत्म-कल्याण के साथ-साथ विश्व-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। अब इन्हें दीक्षा दी जा रही है, ये विरक्ति-वधू का आलिंगन कर विधि-पूर्वक दीक्षा लेते हैं।

यह कह कर पूज्य श्री वैरागियों को पंच महाव्रत धारण करने का उपदेश करते हैं।

वैरागी (काशीराम जी और नरपति राय जी) मन, वचन, काया से सावद्य व्यापारों का त्याग कर शास्त्रोक्त विधि से महाव्रत धारण करते हैं और पाठ समाप्त होते ही पूज्य श्री के चरणों में अपना मस्तक झुका लेते हैं। पूज्य श्री उनके सिर पर हाथ रख कर उन्हें अपनी शिष्य मण्डली में बैठने का आदेश देते हैं। गुरुदेव की आज्ञानुसार काशीराम जी व नरपतिराय जी मुनि-मण्डली के मध्य में अपना आसन ग्रहण कर लेते हैं।

वैरागिन मथुरा देवी जी भी दीक्षा ग्रहण कर साध्वी बन श्री आर्ज्या जी के पास जा बैठती हैं।

इस समय 'जो बोले सो अभय, भगवान महावीर स्वामी की जय' 'जैन धर्म की जय' 'पूज्य श्री सोहनलाल जी की जय' आदि जय घोषों से गगन मण्डल गूँज उठा।

सभास्थल में एक अनुपम शान्ति और प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। और सभी नर-नारियों, श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों के मुख-मण्डल पर सत्य और प्रेम की एक दिव्य आभा झलकने लगती है उपस्थित श्रोताओं को मधुर उपदेशामृत पान करने के लिये अब भी लालायित देख पूज्य श्री ने फिर मधुर मन्द ध्वनि से इस प्रकार प्रवचन प्रारम्भ किया:—

धर्मप्रेमी सज्जनो ! आपकी प्रसन्न मुख-मुद्रा और उत्सुक नेत्रों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि इतनी देर उपदेश सुन कर भी आप के हृदय तृप्त नहीं हुए। आप और भी कुछ सुनना चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज आपने यह निश्चय कर लिया है कि महाराज जी से जितना अधिक से अधिक मिल जाय ले जायेंगे। पर हम तो साधु हैं हमारे पास देने को है ही क्या।

साधु तो सभी से कुछ न कुछ लेता है, सभी से कुछ न कुछ माँगता है। और आप लागों का भी यह कर्तव्य है कि साधु को कुछ न कुछ दें। साधु संतों को कुछ न कुछ भेंट अवश्य करना चाहिए। और ऐसे शुभ अवसर पर तो यह कैसे हा सकता है कि आप संतों के कुछ भेंट चढ़ाये बिना ही घर वापस लौट जाएँ। यदि दूसरे किन्हीं साधुओं या धर्म वालों का ऐसा उत्सव होता तो लोग उन साधुओं के चरणों में हारे-जवाहरात शाल-दुशाले, वस्त्र-अभूषण, सोने-चांदी और रुपये-पैसे का ढेर लगा देते। पर सच्चे साधु के लिये तो कहा है कि—

साधु गाँठ न बांधहि उदर समाता लेय।

तदनुसार जैन साधु सर्वथा अपरिग्रही होते है। धन-संग्रह तो दूर रहा, वे तो धातु-स्पर्श भी नहीं करते। इसलिए हम तो आप से कुछ और ही निराली भेंट चाहते हैं। उस भेंट के देने में आप का कुछ मोल नहीं लगेगा। हम तो आप से ऐसी वस्तु की भेंट चाहेंगे, जिस को दे कर आपका कुछ कल्याण हो सके। आप लोग चौबीसों घंटे संसारी धंधों में फँसे रहते हो, यह भी ठीक है कि संसार में रहते हुए, गृहस्थाश्रम के व्यवहारों या घर-बार के काम-धन्धों को छोड़ा नहीं जा सकता। पर इस लोक के साथ कुछ आगे का भी ध्यान रखना चाहिए, थोड़ी पूँजी भवान्तर या दूसरे लोक की यात्रा के लिए भी बान्ध लेनी चाहिए। क्योंकि उस यात्री को जो घर से संबल या राह-खर्च लेकर नहीं चलता, मार्ग में बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। आप संसार-पथ के पथिक हैं, इस लिए आप को भी किसी ऐसे द्रव्य का थोड़ा बहुत संचय अवश्य कर लेना चाहिए, जो परलोक में भी साथ दे। अतः मैं आप से कुछ ऐसी ही लोक और परलोक दोनों को बनाने वाली वस्तुओं की भेंट चाहता हूं। क्या आप ऐसी भेंट देने के लिए सहर्ष तैय्यार हैं?

'इस पर हाँ' पूज्य श्री आज्ञा कीजिए' की ध्वनि से सभा-मंडप गूँज उठता है।

तब पूज्य श्री ने अपने भाव को इस प्रकार प्रकट किया। मैं केवल तीन वस्तुएँ मांगता हूँ—

पहली भेंट—

१. सम्यकत्व की भेंट—सच्चे देव को देव मानना, पंच महाव्रत-धारी को गुरु मानना, और दयामय वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित, अहिंसा प्रधान धर्म को धर्म मानना।

दूसरी भेंट—

२. व्यापार धन्धों में अनीति युक्त बर्ताव नहीं करना, दूसरे का गला काट कर कभी अपनी उन्नति का विचार नहीं करना।

तीसरी भेंट—

३. नित्य प्रति सामायिक व भगवन् प्रार्थना करना। यथासमय यथाशक्ति दान स्वाध्याय व तपस्या करना।

पूज्य श्री के इन वचनों को सुन कर कईयों ने तीनों भेंट चढ़ाईं—तीनों बातों के पालन की प्रतिज्ञा की, तो बहुतों ने दो ही भेंटें चढ़ाईं, अनेक एक भेंट ही चढ़ा कर रह गये। पर बीच में कई ऐसे भी श्रोता थे जो कुछ न ले सके, न दे सके। कोरे के कोरे ही रह गये।

साधु के कर्तव्य—

सभा की समाप्ति से पूर्व महाराज श्री ने चतुर्विध श्री संघ को सम्बोधित करते हुए कहा कि श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियो, आप सब लोगों की उपस्थिति में यह दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई है। आप लोगों को यहाँ बैठे और उपदेश सुनते बहुत समय हो गया है। अतः अब मैं अधिक और कुछ न कहता हुआ

नव-दीक्षित साधु-साध्वियों (काशीराम, नरपतिराय और मथुरा देवी) को साधुओं के कर्तव्य के सम्बन्ध में भगवान् वीर प्रभु की दिव्य वाणी का स्मरण कराना चाहता हूँ:—

सद्दे फ़ासे अहिया समाणे, नव्विद नंदि इह जीवियस्स मुधी मोणं समायाय धुणे कम्मस रीरगं। पंत लूहं से वंति वीरा सम्मत्त दंसिणा, एस ओ हंतरे मुणो तिएणे, मुत्ते, विरए वि याहिए त्तिबे मि।

साधुत्व की दीक्षा लेने वाले, अथवा संत की पदवी को धारण करने वाले या मुनियों के मार्ग पर चलने का व्रत लेने वाले साधक को सम्बोधित करते हुए भगवान् वीर प्रभु आदेश देते हैं कि हे साधको ! तुम्हारे मार्ग में मन-मोहक शब्द और सुखद-स्पर्श आदि विषय उपस्थित होंगे, किन्तु ऐसे अवसरों पर उन को सहन करना, और इस असंयमित जीवन के आमोद प्रमोदों को घृणा की दृष्टि से देखकर उनसे अलग रहना। हे शिष्य ! मुनि-रत्न संयम की आराधना करके कर्म रूप शरीर को आत्मा से पृथक् करने का या देह के ममत्व को छोड़ने का प्रयत्न करते हैं। सच्चे पुरुषार्थी और साधु रूखा-सूखा आहार करते हैं। ऐसे मुनि लोग संसार रूपी समुद्र के प्रवाह को पार कर सकते हैं। और ऐसे ही साधु संसार सागर से पार हुए परिग्रह से मुक्त, विरक्त, त्यागी या जीवनमुक्त कहे जाते है।

फिर काशीराम जी को सम्बोधित करते हुए कहा कि काशीराम ! जिसके लिए तुमने निरंतर ६ वर्ष तक संघर्ष किया, दिन-रात एक कर भूख प्यास आदि अनेक कष्ट सहे, आज तुम्हारी वह इच्छा पूरी हो गई है। आज तुम्हें तुम्हारी मन चाही दीक्षा-देवी के दर्शन हो गये हैं। और तुम्हें साधु या संत की पवित्रपदवी प्राप्त हो गई है। आशा है तुम वीर प्रभु के उक्त आदेश का

पालन करोगे। और जो सफेद चादर आज तुमने धारण की है उसे दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक निर्मल और उज्ज्वल बनाते जाओगे। मुझे विश्वास है कि तुम शुभ आचरण के द्वारा एक दिन अपने और अपने गुरु के नाम को संसार भर में चमका दोगे।

काशीराम जी ने श्रद्धावनत होकर प्रतिज्ञा की कि चाहे कितने ही संकटों और कष्टों का सामना क्यों न करना पड़े, मैं मुनियों के कठोर व्रत के पालन में कभी शिथिलता न दिखाऊँगा। आज से मन, वचन, कर्म से आत्म-कल्याण तथा चतुर्विध श्री संघ की उन्नति ही मेरा एक मात्र जीवन का लक्ष्य होगा। पूज्य श्री के चरण कमलों में रहकर मैं अपने इस लक्ष्य में उत्तरोत्तर प्रगति करता जाऊँ, यही मुझे आशीर्वाद दीजिये।

यह कहकर काशीराम जी ने ज्यों ही आसन ग्रहण किया कि सारी सभा हर्षोल्लासपूर्ण जयकारों की ध्वनि से गूँज उठी। तुमुल जयघोष और मांगलिक प्रवचनों के साथ सभा समाप्ति की सूचना दी गई, पर लोग अब भी जहाँ के तहाँ डटे बैठे रहे। जनता तो इस समय ऐसी मन्त्र-मुग्ध हो गई थी कि वहाँ से हिलना ही न चाहती थी। धीरे-धीरे कुछ लोग उठकर महाराज श्री और नव-दीक्षित सन्त की वन्दना के लिए आगे बढ़ने लगे। इधर पूज्य श्री ने मुनि-मंडली के साथ स्थानक की ओर प्रस्थान किया, तो जय जयकार करते हुए हजारों लोग उन के पीछे हो लिए। इस प्रकार यह अपने आप एक बहुत बड़ा जुलूस बन गया। पर दीक्षा के पश्चात् के इस जुलूस में और दीक्षा के पूर्व उस जुलूस में रात-दिन का अन्तर था। अब न वह राजसी ठाठ-बाट था न बैंड बाजे थे. अब तो एक सात्विक सादगी का सर्वत्र अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ था। पर बार-बार उठती

हुई जय-जयकार की ध्वनियों ने बैंड की ध्वनि को भी नीचा दिखाते हुए सारे नगर को गुँजा दिया।

इस प्रकार सन्त-शिरोमणि काशीराम जी की दीक्षा का यह महोत्सव बड़े समारोह के साथ सानन्द सम्पन्न हो गया। आज कांधला के घर-घर में प्रत्येक नर-नारी के मुख पर इसी दीक्षा की चर्चा थी। प्रत्येक के हृदय पर एक अलौकिक सात्विकता की छाप लगी हुई थी।

सच है, सन्तों का समागम हृदय के सब कालुष्य को दूर कर मानस भूमि में पवित्र, निर्मल भावनाओं का प्रवाह बहा देता है।

बाल्य काल से लेकर दीक्षा ग्रहण करने तक के पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के जीवनवृत्त का सिंहावलोकन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि पूज्य श्री के पूर्वजन्मोपार्जित वैराग्य के संस्कार बड़े ही प्रबल थे। घर वालों की ओर से उपस्थित की जाने वाली लाख विघ्न बाधाएं भी इस जन्मजात महान् साधक को साधना पथ से विरत न कर सकीं। भय या प्रलोभन, साम, दाम, दण्ड आदि सभी संसारी उपाय इन्हें अपने लक्ष्य से विचलित करने में सर्वथा असफल रहे।

बालदीक्षा—

यहाँ कभी-कभी यह भी शंका उपस्थित होती है कि जैन धर्म में प्रचलित बालदीक्षा की क्या उपयोगिता है?

इस सम्बन्ध में तत्वज्ञ जनों का यह निश्चित मत है कि कच्चे घड़े पर जो संस्कार पड़ जाते हैं वे अमिट हो जाते हैं और पक्के घड़े पर दूसरा प्रभाव क्या पड़ेगा। यदि बालक की प्रकृति शैशव में ही वैराग्य की ओर लग जाय तो वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इसी विचार से बालदीक्षा का औचित्य सिद्ध होता है। साथ ही सभी शास्त्र यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य को जिस

दिन संसार से विरक्ति हो जाय उसी दिन ससार को छोड़कर साधु बन जाना चाहिये। वैराग्य के परम पावन मार्ग पर अवस्था आदि का कोई प्रतिबंध नहीं है। यह अपने हृदय की उत्कटतम विरक्ति की ओर प्रवृत्ति का ही परिणाम है।

इस लिये हम कह सकते हैं कि जो युवक सच्चे वैराग्य और समाज सेवा की भावना से प्रेरित होकर पंच महाव्रत को धारण कर साधुवृत्ति ग्रहण करते हैं वे वास्तव में समाज के लिये एक आदर्श और अनुकरणीय कार्य करते हैं, इसमे कुछ सन्देह नहीं। तदनुसार पूज्य श्री साधु-जीवन का ग्रहण कर देश, जाति, राष्ट्र व धर्म के उद्धार के लिये कटिबद्ध हो गये और जैसा कि हम आगामी अध्यायों में देखेंगे वे अपने इस सदुद्देश्य में सर्वथा सफल हो समाज का महान् उपकार कर गये।



संत श्री काशीराम जी

यदहरेव वा विरजेत् तदहरेव वा प्रव्रजेत्

—मनुष्य के हृदय में जिस समय सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाय उसी समय साधु बन जाय।

संत श्री काशीरामजी का साधु जीवन

संवत् १९६० में मार्गशीर्ष मास में कांधला नगरी में संत काशीराम जी की दीक्षा-विधि बड़े धूमधाम से सम्पन्न हो गई। सब संसारी संगी-साथियों का साथ सदा के लिये छोड़कर वे अब परमार्थ-मार्ग के पथिक बन गये। अब वे—

'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि
संसारमाया परिवर्जितोऽसि।'

आदि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित आत्मा के शुद्ध-बुद्ध, नित्य और सांसारिक माया-मोह से अतीत चिन्मय स्वरूप के साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नशील हो गये। अब उन्हें न किसी से किसी प्रकार का भय है न कोई चिन्ता। अब तो वे—

'विगतेच्छाभयक्रोधः सर्वत्र विगतज्वरः।'

के अनुसार इच्छा क्रोध, भय, तथा कामविकारादि ज्वरों से रहित होकर अहिंसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह रूप पंच महाव्रतों या यमों के पालन करने में तत्पर सच्चे 'संयमी' बन गये। सूत्र तथा आगम ग्रन्थों के अभ्यास एवं 'मनन' में लीन रहने के कारण वे 'मुनि' की संज्ञा का सार्थक करने लगे। प्रातः सायं नित्य नियम से प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रिया कलापों से निवृत्त हो, वे नियमित रूप से शास्त्राभ्यास में प्रवृत्त हो जाते। आहार

पानी लाने तथा पूज्य श्री या अस्वस्थ साधु-संतों की सेवा में तो वे दिन-रात एक कर देते। अध्ययन और ज्ञान की लालसा आप के हृदय में बड़ी तीव्र थी। सौभाग्य से गुरु भी आपको ऐसे प्राप्त हुए जो अपने समय के जैन-जगत् में प्रचण्ड सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे थे। संत काशीराम जी ने विद्या और ज्ञान के महान् भण्डार पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज से दीक्षा लेकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ ली, प्रत्युत वे निरन्तर पूज्य श्री के सम्पर्क में रहकर अपनी बलवती ज्ञान-पिपासा को भी तृप्त करने का प्रयत्न करते रहे।

पूज्य श्री भी ऐसे होनहार विवेक-सम्पन्न सुशील शिष्य को पा कर परम प्रसन्नता के साथ शास्त्राभ्यास एवं ज्ञान, ध्यान की वृद्धि में सब प्रकार से सहायता करने लगे।

सब प्रकार के कर्म-बन्धनों की ग्रन्थियों को काटने वाले 'निर्ग्रन्थ', घर आगार या घर-बार से रहित 'अणागारी' संत काशीराम जी षट् कायों की हिंसा को त्याग कर षट्काय प्रति-पालक बन गये। शास्त्राध्ययन के लिए आवश्यक संस्कृत और प्राकृत-अर्द्ध मागधी के अध्ययन का क्रम भी चालू हो गया। क्योंकि शास्त्रकार कहते हैं कि बिना ज्ञान के सब क्रियाएँ व्यर्थ हैं—

'पढमं नाणं तओदया।'

अर्थात् ज्ञान पहले है और क्रिया उसके पीछे आती है। इस प्रकार ज्ञान ध्यान वैराग्य और सेवा की सम्पत्ति का संग्रह करने में निपुण संत काशीराम जी को पूज्य श्री के साथ रहने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, उस का उन्होंने पूरा पूरा लाभ उठाने का निश्चय कर लिया। यहाँ उनके लिए एक पंथ दो काज अथवा आम के आम और गुठलियों के दाम वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। क्योंकि न केवल उन्हें उनकी चिर अभिलषित मन

चाही दीक्षा ही प्राप्त हुई। प्रत्युत दिव्य ज्ञान और पूज्य श्री की सेवा का सौभाग्य भी अनायास ही प्राप्त हो गया।

दीक्षा-विधि की समाप्ति के कुछ समय पश्चात् पूज्य श्री ने कांधला से विहार कर दिया। आप भी उनके साथ साथ दिल्ली, रोहतक, मलेर कोटला, लुधियाना होते हुए फगवाड़ा और कपूरथला रियासत के गावों में पधारे। फगवाड़ा में जालन्धर के मजिस्ट्रेट रलाराम जी आदि भाइयों ने दर्शन कर चातुर्मास के लिए विनति की, उनकी यह विनति स्वीकार करली गई। अतः पूज्य श्री के साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुए चातुर्मास के निकट समय में जालन्धर पधारे।

संवत् १९६१ का सर्वप्रथम चातुर्मास जालन्धर में—

पूज्य श्री के साथ सबसे पहला चातुर्मास जालन्धर नगर में हुआ। इस समय आप विद्यार्थी-जीवन में थे, इसलिए आपको निरन्तर चार मास तक विद्याभ्यास और ज्ञानार्जन के लिए अच्छा अवसर मिल गया। पूज्य श्री के साथ रहते रहते शास्त्राभ्यास में प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इन चार महीनों में आप ने यथा-शक्ति बालक-बालिकाओं में धर्म-शिक्षा का प्रचार भी खूब किया। इस प्रकार यह प्रथम चातुर्मास संत जीवन के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् होशियारपुर, कपूरथला, जंडियाला, आदि नगरों को परसते हुए आप पूज्य श्री के साथ अमृतसर पधारे। अमृतसर के श्रीसंघ की ओर से आपका भव्य स्वागत हुआ।

अमृतसर में चौदह चातुर्मास—

किसी-किसी सौभाग्य-शाली नगर को यह सुयोग प्राप्त होता है कि वहां बारहों महीने साधु-साध्वियों का समागम बना

रहता है। अमृतसर ऐसा ही सौभाग्य शाली नगर है। यह यहाँ की जनता की श्रद्धा और धर्म-परायणता का ही परिणाम था कि पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज ने संवत् १९६२ से लेकर १९८२ तक के २१ चौमासे इसी नगर में किये। फलतः शास्त्राभ्यास और विद्यार्जन के लिए संत काशीराम जी को भी निरन्तर चौदह चातुर्मास अमृतसर में ही करने पड़े।

बात यूं हुई कि संवत् १९६२ में पूज्य श्री अमृतसर से विहार कर जंडियाला की ओर पधार रहे थे तो मार्ग में हाथों और पैरों में एक दम कमजोरी या शून्यता सी आ गई। इस शारीरिक शिथिलता को देखकर अमृतसरवासी मुखियों ने पूज्य श्री से वापिस लौट चलने की विनति की। तदनुसार पूज्य श्री अमृतसर लौट आये और अन्त समय तक वहीं विराजमान रहे।

संत काशीराम जी ने भी गुरु महाराज के आदेशानुसार गुरु जी के श्रीचरणों में बैठ कर विद्याध्ययन एवं सेवा का लाभ प्राप्त करने के लिए वर्ष भर में चार मास तक अमृतसर में ही रहने का निश्चय किया। इस प्रकार चौदह वर्ष तक वे प्रति वर्ष चातुर्मास अमृतसर में व्यतीत करते, और शेष समय ग्रामानुग्राम विचरते हुए धर्म प्रचार के कार्य में लगे रहते।

संत काशीराम जी के प्रथम शिष्य—

संवत् १९६२ के चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् अमृतसर के रईस लाला ईश्वरदास जी ने आप से दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार लाला ईश्वरदास जी को संत काशीराम जी का सर्व प्रथम शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लाला ईश्वरदास जी अत्यन्त उच्च कुलीन सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने पुत्रादि परिवार

को छोड़कर धन धान्य एवं वैभव विलास को ठुकरा कर दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा ग्रहण कर वे निरन्तर संत काशीराम जी के साथ रहते हुए आत्म-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होने लगे। संत ईश्वरदास जी वास्तव में बड़े त्यागी वैरागी और तपस्वी थे। आप वर्षों तक तेले पारणा करते रहे। और बेले, चोले पंचोले अढ़ाई आदि अनेक तप करते रहे। वास्तव में संत शिरोमणि के यह प्रथम शिष्य बड़े ही विरक्त और तपस्वी थे।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आप पट्टी, कुसूर फिरोजपुर, फरीदकोट, भटिन्डा तथा जंगल देश या पंजाब मालवा के अनेक नगरों में विचरते हुऐ समयानुसार व्याख्यानादि के द्वारा धर्म-प्रचार करते रहे। क्रमशः आपके ज्ञान और क्रिया दोनों का प्रभाव जनता पर बढ़ने लगा। अपनी सुमधुर वाणी को सुनकर श्रोतागण झूम उठते थे। आपकी रस भरी ओजस्विनी पदावली जनता के हृदयों को हर लेती थी। आठ मास तक इस प्रकार एक नगर से दूसरे नगर में विचरते हुए १९६३ के आषाढ़ में आप फिर अमृतसर में पूज्य श्री के चरणों में आ पहुँचे।

संवत् १९६४ के चातुर्मास में चुन्नीलाल जी नामक वैरागी की दीक्षा हुई। ये भी बड़े योग्य और क्रिया-पात्र निकले।

चातुर्मास की समाप्ति पर कपूर-थला, जालन्धर आदि नगरों को परसते हुए आप होशियारपुर पधारे। वहां पर आपके बड़े ही प्रभावशाली व्याख्यान हुए। यद्यपि आपकी गणना अभी तक नवीन व्याख्यान दाताओं में ही थी फिर भी आपकी अभिनव आकर्षक व्याख्यान-शैली से सारी जनता इतनी प्रभावित हुई कि आप से कुछ काल तक वहीं विराजने की प्रार्थना की जाने लगी। किन्तु संत और सरिता के जीवन की सार्थकता तो बहते रहने ही में है, अतः संत काशीराम जी ने होशियारपुर-

निवासियों को उक्त प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए आगे विहार करने का निश्चय कर लिया।

होशियारपुर से जेजों नवा शहर, बला चोर, रोपड़, नालागढ़, अम्बाला, पटियाला, मलेर कोटला, लुधियाना, वंगा और फगवाड़ा आदि-ग्रामों में प्रचार करते हुए विचरते रहे। फगवाड़ा से जालन्धर पधारे वहां पर 'संसार असार' है इस विषय पर बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान से जनता के हृदयों में वैराग्य की भावना हिलोरे लेने लगी। कई श्रोताओं के हृदय में त्यागमय जीवन बिताने की लालसा प्रबल हो उठी। अनेकों ने तो तत्काल दीक्षा ग्रहण कर साधु बनने का निश्चय प्रकट किया। ऐसे लोगों में से शाह कोट निवासी लाला केशोराम जी के पुत्र श्री चन्दलाल जी ने तो उसी समय दीक्षा लेने का भाव प्रकट किया। वे वहीं से वैरागी बन संत काशीराम जी के साथ-साथ विचरने लगे। जालन्धर में आपने ७-८ व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानों में त्याग और प्रत्याख्यान तो कईयां ने किये। जालन्धर से आप कपूरथला होते हुए अमृतसर पधारे।

संवत् १९६५ का चातुर्मास—

पूज्य श्री की सेवा में अमृतसर में ही हुआ। इस चातुर्मास में धर्म ध्यान का खूब ठाठ लगा रहा। दूर दूर से आने वाले श्रावक-श्राविकाएँ पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के दर्शन कर कृतकृत्य होते और नवयुवक संत काशीराम जी की धर्म चर्चा में बड़े प्रेम से भाग लेते थे।

दीपावली के पश्चात् पसरूर के कई भाई दर्शनार्थ आये। उनमें लाला गंडेशाह जी म्युनिसिपल कमिश्नर (संत काशीराम जी के संसारी ताया) तथा लाला विशनदास जी व

मोती शाह जी (संत श्री के बड़े भाई) आदि प्रमुख थे। दर्शनार्थ आये हुए इन २५-३० भाई और बहिनों ने पूज्यश्री तथा काशीराम जी के दर्शन कर हार्दिक प्रसन्नता और आन्तरिक श्रद्धा-भावना प्रकट की। लाला गेन्डाराय जी तथा मोतीशाह ने बड़ी अनुनय और भक्ति के साथ काशीराम जी से अपने पूर्व-कृत्यों के लिए क्षमायाचना की। और उनके अचल वैराग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। संत काशीराम जी ने तो उन्हें पहले ही हृदय से क्षमा कर दिया था, क्योंकि साधु वेष ग्रहण कर लेने के पश्चात् संसार में उनका कोई भी शत्रु न रह गया था।

पूज्य श्री के सम्मुख भी लाला गेंडाराय जी तथा श्री विशनदास जी व मोतीशाह जी ने अपने किये सभी प्रपचों और प्रहारों की कथाएँ कह सुनाईं। मोतीशाह ने कहा कि 'मैंने तो इन्हें कई बार बहुत बुरी तरह कोड़ों तक से पीटा था। पर धन्य हैं यह सच्चे माई के लाल जिनका वैराग्य ऐसे कठोर प्रहारों को सहते हुए भी अविचल रहा। आज हमें अपने उन सब कृत्यों का स्मरण कर हार्दिक पश्चात्ताप होता है' आदि।

यह सुनकर पूज्य श्री ने फरमाया कि मोहवश ऐसा हो ही जाता है। किन्तु भविष्य में किसी भी वैरागी के साथ ऐसा कठोर व्यवहार कभी मत करना।

पसरूर निवासी सभी भाईयों ने मिल कर पूज्य श्री के समक्ष संत काशीराम जी से पसरूर की ओर विहार करने की विनति की। पूज्य श्री ने इसे संत काशीराम जी की इच्छा पर ही छोड़ दिया। इस पर सभी दर्शनार्थी श्री काशीराम जी महाराज के पास आ कर एकत्रित हो गये। लाला गेंडाराय जी, श्री विशनदास जी आदि ने बड़ी अनुनय-विनय के साथ पसरूर पधारने की प्रार्थना की और निवेदन किया कि एक बार हमारे नगर को भी अपने चरणों की

रज से पवित्र करने की कृपा कीजिए। और अपने उपदेशामृत से हमारे हृदयों को भी तृप्त कीजिए। भाई श्री चंदलाल शाह की दीक्षा भी वहीं होगी। वहीं पर दीक्षोत्सव का आयोजन कर लिया गया है। अन्त में संत श्री को उठकर पूज्य श्री के चरणारविन्दों में उपस्थित होना पड़ा। सब भाइयों के विशेष आग्रह को देखते हुए श्री पूज्य श्री ने काशीरामजी को सुखे समाधे पसरूर परसने का आदेश दिया। इस प्रकार अपनी प्रार्थना के स्वीकृत हो जाने पर सब लोगों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ पसरूर की ओर प्रस्थान किया।



मातृभूमि की ओर

चातुर्मास के समाप्त होने पर संत काशीराम जी अपनी मुनि-मण्डली और वैरागी-वृन्द के साथ मजीठा, नारोवाल आदि क्षेत्रों में होते हुए पसरूर पधारे। वहां के सभी नर-नारियों ने मीलों तक आगे आकर बड़ी धूम-धाम के साथ आपका स्वागत किया और जय जय कारों के साथ आपका नगर में प्रवेश करवाया।

संत काशीराम जी ने भी आज अपनी चिर-वियुक्त मातृ-भूमि में इस स्वागत और समारोह के साथ पदार्पण कर परम प्रसन्नता प्रकट की। आप यहीं जन्मे, पले-पोसे और बड़े हुए थे। आरम्भिक शिक्षा भी आपकी यहीं हुई थी। इस नगर की गली-गली, घर-घर, और ईंट-ईंट से आपका बचपन का नाता था। नगर में प्रविष्ट होते ही उस स्वाभाविक-स्नेह सम्बन्ध की सैंकड़ों सुमधुर स्मृतियाँ आपके हृदय में सहसा कौंध गईं। आपके अन्त-र्तम में भूरि-भूरि भव्य भावनाओं का ज्वार-भाटा सा उमड़ आया। जनता तथा अपने परिवार के लोगों व माता-पिता आदि गुरु-जनों को इस अपार हर्ष के साथ अपने स्वागत सत्कार में तत्पर देख इस विरक्त संत का हृदय भी क्षण भर के लिए भावो-द्रेक से भर आया। जब सब लोगों ने मिल कर इस संत प्रवर

से प्रार्थना की कि 'महाराज अपने मुखारविन्द से उपदेशामृत की वर्षा कर हम अभागों को भी कृतार्थ कीजिए, तो कुछ देर के लिए स्नेह विकल हो महाराज का कंठावरोध हो गया। आँखों में प्रेमाश्रु छलक पड़े। क्या यह वही पसरूर नगरी है, जहाँ मैंने अपने जीवन का प्रभात हँसते खेलते बिताया था। क्या ये वे ही लोग है, जो अब से कुछ वर्ष पूर्व तक मुझे एक अबोध, बहका हुआ और हठी नौजवान छोकरा समझ कर मेरा तिरस्कार करते हुए हँसी उड़ाया करते थे, पर आज जिनके मस्तक बड़े आदर के साथ श्रद्धावनत होकर झुक रहे हैं। क्या वे यही मेरे स्वजन सगे सम्बन्धी, भाई बन्धु और माता-पिता आदि गुरुजन हैं, जो कुछ वर्ष पूर्व दीक्षा का नाम सुनकर बिदक पड़ते थे और बिना आगा-पीछा सोचे असह्य यातनाएँ दिया करते थे, किन्तु जो आज लज्जावनत होकर मन ही मन तथा प्रत्यक्ष रूप से भी अपने उन कृत्यों के लिए प्रायश्चित्त करते हुए क्षमा-याचना करते हुए भी हर्षित हो रहे है। आज इन के हृदय मुझे इस संत-वेष में देखकर उत्साह, आनन्द और हर्ष के मारे फूल नहीं समा रहे हैं। इस प्रकार सोचते-सोचते वे नवयुवक संतप्रवर कुछ क्षणों के लिए तन्मय से हो गये। आपकी इस तन्मयता को देख कर सभी उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं के हृदय में दिव्य-भावना का संचार हो उठा। कुछ क्षणों के पश्चात् संत काशीराम जी ने अपना संक्षिप्त प्रवचन इस प्रकार प्रारम्भ किया—

धर्मप्रेमी सज्जनो!

आज आपने यहाँ पर मेरा जो हार्दिक स्वागत सत्कार किया है, उसे देख कर मेरा हृदय गद्-गद् हो आया। आज मैं कई वर्षों के अनन्तर साधु-वृत्ति ग्रहण करने के पश्चात् प्रथम बार अपने जन्म-स्थान में आया हूं। ६ वर्ष पूर्व मैं इसी नगरी में एक

साधारण युवा नागरिक के रूप में आप ही लोगों के बीच में रहता था। पर उन दिनों में और आज में कितना अन्तर है। जब तक मनुष्य संसारी धन्धों में फंसा रहता है तब तक उसका कोई मूल्य नहीं, पर जब दुनिया के धन्धों को छोड़कर वीतराग प्रभु अरिहंतदेव की शरण में चला जाता है—वैराग्य धारण कर दीक्षा ग्रहण कर लेता है—साधु बन कर तप स्वाध्याय और ज्ञान की सम्पत्ति अर्जित कर वीतरागता की ओर अग्रसर होता है, तो सारा संसार उसके सम्मुख अपने आप श्रद्धावनत हो जाता है। फिर संसार में कोई उसका शत्रु, निन्दक, या अहितकारी नहीं रहता। सभी मित्र, सभी हितैषी और सभी श्रद्धालु बन जाते हैं। जब साधु अपने एक छोटे से परिवार का परित्याग कर देता है, तो सारा विश्व ही उसका अपना परिवार बन जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैं आप के सम्मुख उपस्थित हूं। आपने जो आज मेरा आदर किया है, वह इस लिए नहीं कि मैं आप के नगर का निवासी एक नागरिक हूं, प्रत्युत इस लिए कि मैं एक सद्धर्म का प्रचारक अहिंसा. सत्य और दया का सँदेश-वाहक, वीर प्रभु का तुच्छ सेवक एक जैन मुनि हूँ। आप ने देख लिया कि धर्म मार्ग पर चलने वाले के लिए कहीं कोई भय नहीं रहता।

धर्मे नास्ति भयं क्वचित्

मैं निर्भय-भाव से अपने स्वीकृत धर्म-पथ पर अग्रसर होता गया, उसी का यह फल है कि आज क्या जैन, क्या अजैन, क्या अपने, क्या पराये सभी का श्रद्धापात्र बना हूं। अब आप को विश्वास हो गया होगा कि धर्म पर चलने वाले को आरम्भ में चाहे कितनी कठिनाईयाँ क्यों न सहनी पड़ें, पर अन्त में उसी की विजय होती है।

यतो धर्मस्ततो जयः

अब आप लोगों को मेरे जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि भविष्य में कोई कभी किसी धर्म मार्ग पर चलने वाले वैरागी या साधु संत के कार्य में बाधा नहीं पहुंचाएगा। पंच महाव्रतों को धारण करने वाले जो कोई साधु संत यहाँ आएँ उनका भी आप इसी प्रकार सम्मान सत्कार किया करें।

इस प्रवचन को सुन कर सभी श्रोताओं के हृदय में भक्ति-भाव की पवित्र स्रोतस्विनी बह निकली। सभी के अंतरतम में सात्विक श्रद्धा के भाव भर आये। विजय-घोषों के साथ बड़े उत्साहपूर्ण वातावरण में आज की सभा समाप्त हुई।

पसरूर से आप स्यालकोट और जम्मू परस कर वापस वहीं आ विराजे। क्योंकि पसरूर में ही चंदलाल जी की दीक्षा होने वाली थी, अतः सभी नागरिकों ने यथाशक्ति सहयोग देकर दीक्षोत्सव को भव्य बनाया। आस पास निमन्त्रण भेजे गये। अनेक गांवों के धर्मानुरागी सज्जन इस उत्सव में सम्मिलित हुए।

संवत् (१९६६) चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को बड़ी धूम-धाम से दीक्षा दी गई। चंदलाल शाह ने बड़े उत्साहपूर्वक दीक्षा लेकर साधुत्व को स्वीकार किया। इस अवसर पर संत काशीराम जी का दीक्षा के सम्बन्ध में एक प्रभावशाली प्रवचन भी हुआ। दीक्षा लेने के बाद चंदलाल जी हर्षचन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप के यहाँ अनेक व्याख्यान हुए जिनसे सर्व सामान्य तथा आपके परिवार के लोग बड़े ही प्रभावित हुए। परिवार के सब लोगों ने शुद्ध श्रद्धा लेकर कभी किसी वैरागी को कष्ट न देने की प्रतिज्ञा की। सब लोगों के मुख पर यही बात और हृदय में

यही भाव थे कि इस एक संस्कारी प्राणी ने इस परिवार में जन्म लेकर सारे कुटुम्ब और नगर का उद्धार कर दिया।

पसरूर से विहार कर आप इस प्रकार शिष्य सम्पत्ति की वृद्धि कर पुनः पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हो गये। १६६६ के चतुर्मास में भी आगमों का अध्ययन बड़ी निष्ठा के साथ चला। आप धुन के तो पक्के थे ही, जिस काम को करने की सोच लेते, हाथ धोकर उसी के पीछे पड़ जाते। थोड़े ही समय में आप पूज्य श्री की सहायता के द्वारा शास्त्रों की अनेक उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में तत्पर हो गये। पूज्य जी सोहनलाल जी महाराज का अगाध पाण्डित्य, तर्क-युक्त विवेचना शक्ति आदि का इस नवयुवा संत पर एक दिव्य प्रभाव पड़ा था। इस समय तक इस संत-प्रवर की गणना कुशल वक्ताओं में होने लगी थी, फिर भी पूज्य श्री के व्याख्यानों को बड़े ध्यान से सुनकर उनकी विषय-प्रतिपादन शैली को ग्रहण करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। पूज्य श्री भी समय समय पर आप से व्याख्यान दिलवाते और आप की भाषण शैली की आकर्षकता, वाणी की मधुरता को सुन कर मन ही मन प्रसन्न होते। तथा दूसरे साधु साध्वियों व श्रावक श्राविकाओं के समक्ष अपनी प्रसन्नता को प्रकट करते हुए इस संत-प्रवर की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते। वास्तव में युवक संत ने अपनी मधुर वाणी, अपने नम्र शिष्ट व्यवहार, कर्तव्य-परायणता, गुरु-भक्ति, सेवाभाव, आदि गुणों के द्वारा साथ में रहने वाले सभी साधु-साध्वियों तथा श्रावक-श्राविकाओं के हृदयों पर अधिकार जमा लिया था।

जंगल देश में धर्म-प्रचार तथा समाज सुधार

चातुर्मास के समाप्त होने पर आप पट्टी, कसूर. आदि नगरों में विचरते हुए जंगल देश की ओर बढ़ गये। इस प्रान्त का कुछ भाग उर्वर और कुछ रेतीला है। यहाँ के ग्रामों के बहु-संख्यक लोग अपढ़, निरक्षर अनेक प्रकार के व्यसनों से घिरे हुए थे। प्राय: साधु संत या धर्म-प्रचारक, उपदेशक, अथवा नेता-गण ऐसे ही नगरों या कस्बों में प्रचारार्थ आते-जाते हैं, जहाँ उनका स्वागत सत्कार खूब होता रहे। किन्तु उन गावों की ओर कोई ध्यान नहीं देता जहाँ प्रचारकों के लिए न यातायात की सुविधा हो, न खान-पान की ही उचित व्यवस्था हो सकती हो। आज तो फिर भी कुछ प्रचारकों का ध्यान गावों की ओर गया है। कांग्रेस और सर्वोदय समाज आदि संस्थाओं ने ग्रामीण-जनों की उन्नति के लिये कुछ प्रयत्न प्रारम्भ किये हैं, पर आज से ४५-५० वर्ष पूर्व तो कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ग्रामवासियों के सुधार और उद्धार के लिये भी हमें उनके बीच में रह कर कुछ कार्य करना है। ऐसे ही समय में संत-प्रवर काशीराम जी महाराज ने जंगल देश के गाँव गाँव में घूम कर वहाँ की जनता के उद्धार का बीड़ा उठाया। प्रति दिन एक गाँव से

दूसरे गाँव पैदल घूम-घूम कर ग्रामीण लोगों को कुरीतियों, दुर्व्यसनों और अंधप्रथाओं से बचाने का आपने भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। यूँ तो सभी प्रान्तों के ग्रामीण लोग शराब, मुकदमेबाजी, पारस्परिक संघर्ष आदि दुर्व्यसनों से आक्रान्त रहते हैं, पर पंजाब के उक्त जङ्गल प्रदेश के ग्रामीण लोग तो इन बुराइयों के मानो आगार ही बने हुए थे। परुष-प्रकृति के ये लोग नम्रता के भावों से तो कोसों दूर थे। ये देहाती लोग सभा या व्याख्यान किसे कहते हैं यह भी न जानते थे। फिर भी यह नव-युवक संत जहाँ भी जाता वहीं अपने प्रेम भरे मधुर उपदेशों से सारी जनता पर जादू सा कर देता। आपके व्याख्यानों में लोग अपने आप खिंचे से आते और घंटों तक शान्त चित्त से व्याख्यान सुनते रहते। आप अपने प्रत्येक व्याख्यान में शराब, पशुहिंसा या शिकार आदि दुर्व्यसनों को छोड़ने की प्रबल प्रेरणा देते। इन व्याख्यानों का ऐसा तात्कालिक प्रभाव होता कि अनेक व्यक्ति उसी समय शराब मांस आदि छोड़ देने की प्रतिज्ञा कर लेते। ग्रामीण जैनेतर जनता में इस प्रकार के प्रचार के साथ-साथ वहाँ के कस्बों में जा कर जैन-समाज में भी प्रचार करते रहे। जैन श्रावक-श्राविकाओं को तो आपको अपने मध्य पा कर इतनी प्रसन्नता होती कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। वे लोग आपके आदेशानुसार कठिन से कठिन त्याग और प्रत्याख्यान करने के लिए प्रस्तुत हो जाते जैसे कि रामां-मंडी नामक कस्बे में अट्ठारह व्यक्तियों से यावज्जीव के कराये।

अर्थात् अट्ठारह दम्पति (पति-पत्नियों) ने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य रखना, हरी शाक सब्जी या फल आदि न खाना, अप्रासुक अर्थात् अचित्त पानी पीना, और जिमिकन्द का त्याग करना इस प्रकार के कठिन व्रत धारण किये। इस प्रकार कई अन्य व्यक्तियों ने भी छोटे-मोटे कई त्याग किये।

इसी क्रम से ग्रामानुग्राम विचरते और धर्म प्रचार करते हुए आपने जंगल प्रान्त के सैंकड़ों गावों का दौरा कर डाला। वास्तव में इस वर्ष के विहार में भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा, आतप आदि नानाविध परीषहों या कष्टों को सहन करना पड़ा था। जिस किसी भी गाँव में आप व्याख्यान या प्रवचन प्रारम्भ करते, वहाँ पहले तो लोग बहुत देर बाद इकट्ठे होते, पर जब आपकी मधुर अमृत-रस भरी वाणी का रसास्वादन करलेते तो अपने आप खिंचे चले आते। फिर तो ऐसा रंग चढ़ता कि लोग दूर-दूर के दूसरे गाँवों से भी इस संतप्रवर के व्याख्यान सुनने लिये एकत्रित हो जाया करते। जब तक वे लोग व्याख्यान न सुनते तब तक तो वे यह कह कर उपेक्षा कर देते, कि होगा कोई मुंह पट्टी-बन्धा साधु, पर जब एक बार आप के मधुर वचनों को सुन लेते तो वे सदा के लिए आपके भक्त बन जाते। बात तो यह है कि ग्रामीण लोग अपढ़ निरक्षर और अक्खड़ भले ही हों, पर वे होते बड़े भोले-भाले और सरल-प्रकृति के हैं। वे तभी तक दूसरे की उपेक्षा करते हैं, जब तक उन्हें कोई बात समझाई नहीं जाती। और जब उन्हें यह विश्वास हो जाय कि यह व्यक्ति हमारे हित की बात कहता है, तो वे सदा के लिए उसके बे-मोल के दास बन जाते हैं। तदनुसार जंगल देशवासी भी महाराज श्री के हृदयग्राही व्याख्यानों को सुन-सुन कर आपके अनन्य भक्त बन गये। इस प्रकार संतश्री ने अनेक कष्ट सहकर भी महीनों तक ग्रामीण जनता के बीच में रहकर उनके उद्धार का जो राष्ट्रीय कार्य किया, वह वास्तव में अत्यन्त महत्त्व पूर्ण था। आठ मास तक धर्म प्रचारार्थ सैंकड़ों मीलों की यात्रा करते हुए संवत १६६७ के चातुर्मास के आरम्भ में आप फिर अमृतसर आ पहुँचे।

चातुर्मास में यथा-नियम गुरु-चरणों में रह कर ज्ञानार्जन तथा अनुभव-वृद्धि में सतत प्रयत्नशील रहे। पूज्य श्री के चरणों में

बैठकर अनेक शंकाओं का समाधान तथा विविध शास्त्रों का पठन-पाठन भी खूब चला। चातुर्मास की समाप्ति के अनन्तर आपने फिर अमृतसर से विहार कर दिया।

इस बार भी हाँसी, हिसार, आदि जंगल प्रदेश के अवशिष्ट नगरों तथा ग्रामों में धर्म प्रचार का निश्चय कर कठिन यात्रा के पथ पर अग्रसर होगये। जड़ियाला, शंखतरा, सुलतानपुर, जीरा, आदि नगरों और कस्बों को परसते हुए आप हाँसी, हिसार तक जा पहुँचे। वहां की जनता ने आपका बड़े उत्साह के साथ भव्य स्वागत किया। यहाँ पर आपके प्रतिदिन बड़े ही हृदय-स्पर्शी व्याख्यान होते, हाँसी में 'धर्म' विषय पर आपका एक अत्यन्त विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान हुआ। उस व्याख्यान से आपका प्रगाढ़ पाण्डित्य स्पष्टतया प्रकट होता है। इसी प्रकार अन्यान्य नगरों में जनता को धर्म पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हुए आप १९६८ के चातुर्मास के प्रारम्भ में पुनः अमृतसर आ विराजे। चातुर्मास से पूर्व यहां पर परम वैरागी अमीचन्द जी की दीक्षा बड़ी धूम-धाम से हुई।

चातुर्मास के पश्चात् आप लाहौर पधारे। लाहौर पंजाब की राजधानी थी। यहाँ का चतुर्विध श्रीसंघ पर्याप्त प्रभावशाली था। यहाँ के श्रीसंघ की ओर से स-समारोह आपका स्वागत किया गया। यहाँ कुछ दिन विराज कर आपने आगे बढ़ने का निश्चय कर लिया। अब तक आप पूर्वी पंजाब के प्रायः सभी प्रमुख जिलों की जनता में धर्म प्रचार का महत्व पूर्ण कार्य कर चुके थे। अब आपने पश्चिमी पंजाब के प्रदेशों को परसने का विचार किया। तदनुसार आप लाहौर से प्रस्थान कर आस-पास के ग्रामों में विचरते हुए गुजराँवाला पधारे। गुजराँवाला में मंदिर मार्गी भाईयों का अच्छा थोक था। पर हमारे चरित-नायक तो सभी के लिए समान श्रद्धेय एवं दर्शनीय थे। क्योंकि आप

अपने व्याख्यानो में संकीर्ण साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र के हृदय में सदाचार-मूलक सच्चे धर्म के प्रचार का ही सर्वोच्च उपदेश दिया करते थे। इसलिये आप जहाँ भी जाते, वहीं क्या जैन क्या अजैन, क्या मंदिर मार्गी, क्या स्थानक वासी सभी भेद भावनाओं को छोड़ कर आपका उपदेश सुनने के लिए बड़ी भारी संख्या में उपस्थित होते थे। गुजरांवाला में भी प्रतिदिन हजारों नर-नारी आपके उपदेशामृत का पान करने के लिए उपस्थित होते रहे।

गुजराँवाला से चल कर आप स्यालकोट होते हुए अपनी जन्मभूमि पसरूर पधारे। पसरूर-वासी जनता तो अपने इस अनुपम रत्न को खूब परख और पहचान चुकी थी। वह यह खूब समझ चुकी थी कि इसी धर्म-वीर महापुरुष के कारण हमारी नगरी का नाम जैन जगत् में सदा के लिए अमर हो गया है। इसलिए वे तो इस संतप्रवर के स्वागत सत्कार के लिए सर्वदा समुद्यत रहते थे। इस बार भी आपका पहले से भी कहीं बढ़कर सत्कार हुआ। पसरूर से प्रस्थान कर आप नारोवाल, मजीठा, आदि ग्रामों व नगरों में विचरते हुए वापिस अमृतसर आ पहुंचे।

इस प्रकार आपने साधु वृत्ति ग्रहण करने के अनन्तर आठ वर्ष की संक्षिप्त सी अवधि में अपनी अध्यवसाय-कुशलता एवं सेवा-वृत्ति से पूज्य श्री के हृदय पर तो पूरा प्रभाव जमा ही लिया था। साथ ही पंजाब के प्रायः सभी प्रमुख नगरों की जनता के हृदयों को जीत कर धर्म विजय प्राप्त करली थी।

युवाचार्य पदवी प्रदानोत्सव

इस विश्व-प्रपंच के समग्र कार्य-कलापों एवं व्यापारों को भौतिक एवं आध्यात्मिक भेद से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। भौतिक व्यापारों को ही लौकिक या सांसारिक अथवा ऐहिक व्यवहार भी कहते हैं। भौतिक और आध्यात्मिक इन दोनों प्रकार की गति-विधियों के सम्यक् संचालन के लिए किसी न किसी नियामक की सदा आवश्यकता रहती है। क्योंकि बिना नियामक के सारी व्यवस्था के अस्त व्यस्त और विशृङ्खलित हो जाने का भय बना रहता है। लौकिक व्यवहारों के संचालन के लिए किसी प्रमुख शासक का वरण किया जाता है। उस शासक को चाहे राजा कहलें, चाहे राष्ट्रपति, चाहे राष्ट्राध्यक्ष, अथवा अधिनायक, या डिक्टेटर, किंवा प्रेजीडेंट कुछ भी कह लीजिए।

संसार के सम्यक् संचालन के लिए, जैसे किसी न किसी शासक की सत्ता अनिवार्य है, वैसे ही आध्यात्मिक व धार्मिक कार्यों के विधिवत् सम्पादन के लिए भी किसी आध्यात्मिक शासक धर्म-गुरु या धर्माचार्य की उपस्थिति परमावश्यक है। जिस प्रकार राज-कार्य को भली भाँति चलाने के लिए राजा की सहायतार्थ युवराज, मन्त्रि-परिषद् तथा विविध विभागों के अध्यक्षों की समिति का निर्माण किया जाता है, वैसे ही धर्म-शासन के संचालन के लिए

प्रमुख आचार्य की सहायतार्थ अन्यान्य विविध सहयोगियों की नितान्त आवश्यकता रहती है। उन सहयागियों की योग्यता व शक्ति के अनुसार उन्हें विविध कार्यों का उत्तरदायित्व भी सौंपा जाता है। जिसके कंधों पर जितने बड़े दायित्व का भार होता है उसका पद भी उतना ही महत्व पूर्ण माना जाता है। इसी विविध कार्यों की जिम्मेवारी या उत्तरदायित्व के तारतम्य के आधार पर ही धर्म-प्रवर्त्तकों और साधु-संतों के पदों का विभाजन किया जाता है।

अब तक पंजाब के श्रीसंघ या गच्छ के संचालन का समग्र भार आचार्य प्रवर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के दृढ़ कंधों पर था। वे अकेले ही बड़ी निष्ठा और तत्परता के साथ जैन समाज की समस्त धार्मिक गति-विधियों का संचालन कर रहे थे। किन्तु अब वार्धक्य जन्य-शैथिल्य के कारण इतने गुरुतर भार को एकाकी वहन करने में आपमें वैसी क्षमता न रह पाई थी। अंगों की दुर्बलता के कारण आप कहीं बाहर आने जाने में भी असमर्थ थे। ऐसी अवस्था में पूज्य श्री ने अपना उत्तराधिकारी नियत करने के लिए चतुर्विध श्रीसंघ से परामर्श करना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि धार्मिक जगत् में धार्मिक जगत् का शासक वंश परम्परा या किसी एक व्यक्ति की इच्छा से नियुक्त नहीं किया जा सकता। यहां तो सर्वगुणोपेत सबसे योग्य प्रबन्ध पटु, प्रभावशाली, विद्वान्, नेतृत्वगुणसम्पन्न, अप्रमादी, सेवाव्रती, जितेन्द्रिय, निष्पक्ष, दृढ़ निश्चयी, स्थिर, शान्त गम्भीर, विरक्त सन्त को ही नेतृत्व पद के लिए सर्व सम्मति से निर्वाचित किया जाता है। इसके लिए किसी एक व्यक्ति की एकाध दिन में नियुक्ति नहीं हो जाती, वर्षों तक निरन्तर अग्नि परीक्षा के पश्चात् जिस व्यक्ति को उक्त सर्वगुणोपेत समझा

जाता है, उसे ही आचार्य-उत्तराधिकारी के पद पर निर्वाचित करने की प्रथा है।

तदनुसार हम देखते हैं कि पूज्य श्री नौ वर्ष के निरन्तर सम्पर्क के पश्चात् इस निश्चय पर पहुंचे कि काशीराम एक ऐसा विद्वान्, सुशील, नम्र, अध्यवसायी, अप्रमादी, सर्वजन-प्रिय, नेतृत्वगण, सम्पन्न संत है, जिसे समस्त श्रीसंघ युवाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहता है। इस युवक संत ने अपने सर्वजन-मोहक अद्भुत गुणों के द्वारा चतुर्विध श्रीसंघ के हृदयों में अपना स्थान बना लिया है। इसलिए पूज्य श्री ने सर्व श्री ला० नत्थूशाह जी, ला० जगन्नाथ जी, लाला वसंती लाल जी, (मंत्री जैन सभा अमृतसर) लाला छज्जूमल जी (अम्बाला वाले), श्री लाला वंशीलाल मंशाराम (होशियार पुर वाले), ला० नत्थूमल जी, ला० संतराम जी, रायसाहब टेकचन्द जी, ला० गंडामल जी (जंडियाले वाले), ला० सोहनलाल जी (गुजरां वाले निवासी), बा० परमानन्द जी कसूर निवासी और लाहौर के लाला कन्हैया लाल आदि श्रावकों के समक्ष इस सम्बन्ध में अपना विचार उपस्थित किया। और बताया कि इस समय संत काशीराम जी को युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर देना श्रीसंघ के लिए अत्यन्त हितावह होगा। उक्त सभी श्रावकों ने आचार्य श्री के इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन किया। फलतः युवाचार्य पदवी-प्रदानोत्सव पर उपस्थित होने के लिए पंजाब भर के श्रीसंघ के पास निमन्त्रण पत्र भेजे जाने लगे।

निमन्त्रण पत्र प्राप्त करने की देर थी कि देखते ही देखते अमृतसर के पवित्र प्रांगण में अनेक स्वनाम धन्य संत और सतियां, श्रावक और श्राविकाओं के समूह एकत्रित होने लगे।

इस उत्सव पर निम्न संत-सतियाँ उपस्थित थे—

१ श्री जवाहर मल जी महाराज २ श्री केशरीसिंह जी महाराज
३ श्री गेंडेराय जी ,, ४ श्री खुशीराम जी ,,
५ श्री उदयचन्द जी ,, ६ ,, बिहारीलाल जी ,,
७ ,, छोटुलाल जी ,, ८ ,, विनयचन्द्र जी ,,
९ ,, कर्मचन्द्र जी ,, १० ,, जड़ावचन्द जी ,,
११ ,, आत्माराम जी ,, १२ ,, मोहर सिंह जी ,,
१३ ,, गणेशीलाल जी ,, १४ ,, बनवारीलाल जी ,,
१५ ,, रामनाथ जी ,, १६ ,, हरदुलाल जी ,,
१७ ,, नत्थूराम जी ,, १८ ,, वृद्धिचन्द जी ,,
१९ ,, रूपचन्द जी ,, २० ,, यशचन्द्र जी ,,
२१ ,, रत्नचन्द जी ,, २२ ,, मेलाराम जी ,,
२३ ,, सुखीराम जी ,, २४ ,, काशीराम जी ,,
२५ ,, नरपति राय जी ,, २६ ,, कुँवर जी ,,
२७ ,, प्यारेलाल जी ,, २८ ,, नत्थूराम जी ,,
२९ ,, राधाकृष्ण जी ,, ३० ,, ईश्वरदास जी ,,
३१ ,, रतनलाल जी ,, ३२ ,, अमीलाल जी ,,
३३ ,, हर्षचन्द जी ,, ३४ ,, अमीचन्द्र जी ,,
३५ ,, लक्ष्मीचन्द जी ,, ३६ ,, मामचन्द जी ,,
३७ ,, कल्याणमल जी ,, ३८ ,, मोहनलाल जी ,,
३९ ,, लक्ष्मणदास जी ,, ४० ,, नानकचन्द्र जी ,,

आर्याएँ

१. श्रीमती प्रवर्तिनी जी श्री पार्वती जी
२, श्रीमती हीरादेवी जी ४. श्री राजमती जी
३. श्रीमती मथुरादेवी जी ५. श्री पन्नादेवी जी
६. श्रीमती चन्दा जी इत्यादि ठा० १७ आर्याएँ

७. श्रीमती लक्ष्मी जी इत्यादि ठा० ३ ,,

८. श्रीमती जीवी जी इत्यादि ठा० ३ ,,

जो संत-सतियाँ कारण विशेष से उपस्थित नहीं हो सके थे, उनके नाम इस प्रकार हैं :—

१. तपस्वी श्री गोविन्दराम जी महाराज ठा० ४ (वृद्धावस्था के कारण नहीं पधार सके)

२. श्री शिवलाल जी महाराज ठा० ३ (वृद्धावस्था के कारण नहीं पधार सके)

३. श्री गणावच्छेदक गणपति राय जी महाराज व जयराम जी महाराज कुल ठा० ६

(गणपतराय जी म. सा० के श्वास का रोग होने से अधिक मात्रा में रोग की प्रबलता के कारण पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने स्वयं न आने को कह दिय। अतएव श्री उदयचन्द जी की प्रेरणा से श्री आत्माराम जी महाराज को भेज दिया। ये उत्सव में उनके प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे।)

४. श्री तपस्वी हीरालाल जी महाराज ठा० ३ मुनि के पैर में कष्ट होने के कारण न आ सके।

५. श्री तपस्वी श्री ऋषिरामजी महाराज ठा० ३ इनके भी साथी मुनि रुग्ण अवस्था में थे, अतः नहीं आ सके।

आर्या जी

१. श्री अमृता जी प्रेमा जी ठा०७

२. ,, नन्दकौर जी सोमा जी ठा० ८

३. ,, गंगी जी ठा० ३

४. द्रौपदी जी ठा० ४

ये सभी संत-सतियाँ जो न आ सके थे, इन्हों ने भी अपनी संमति भेज दी थी कि पूज्य श्री का निर्णय हमें सर्वथा स्वीकार्य और मान्य होगा।

इस प्रकार ६४ संत-सतियों की उपस्थिति में तथा ४४ संत-सतियों की सम्मति से अर्थात माला के १०८ दानों के समान पूरे १०८ संत-सतियों के परामर्श सम्मति व स्वीकृति के पश्चात् युवाचार्य-पदवी-प्रदानोत्सव के लिए, शुभ मुहूर्त और शुभतिथि का निर्णय किया गया। इससे पूर्व इस सम्बन्ध में मुनिवृन्द की स्वतन्त्र सम्मति जानने के लिए १५ साधुओं की एक समिति का निर्माण किया गया। इस उपसमिति में सम्मिलित सभी संत, वृद्ध, विद्वान् प्रतिनिधि थे। इस उपसमिति की बैठक मंगलवार को जमादार की बड़ी हवेली में हुई। पूज्य श्री स्वयं प्रमुख पद को सुशोभित कर रहे थे। सभी संतों ने अपने-अपने विचार और अभिमत पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ व्यक्त किये। इस समिति में उपस्थित सभी संतों ने सर्वसम्मति से अपने अधिकार पूज्य श्री को सौंपते हुए यह मत व्यक्त किया कि पूज्य श्री जो करेंगे वही सब संतों को सहर्ष स्वीकृत होगा। क्योंकि पूज्य श्री परम विचारवान् वयो-वृद्ध, संघ के परम हितैषी हैं, अतः आपकी सम्मति में ही समस्त संतों की सम्मति है।

इस पर पूज्य श्री ने फिर फरमाया कि आप लोग अपने-अपने विचारों को निस्संकोच-भाव से प्रकट कर दीजिए। यदि मौखिक रूप में यहाँ प्रकट करने में कुछ संकोच हो तो लिखित रूप में अपने मन्तव्य से सूचित कर दीजिए। इस आदेश का तत्काल पालन किया गया, और वीर निर्वाण संवत् २४३६ विक्रमाब्द संवत् १६६६ फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को उपसमिति में

सम्मिलित सभी संतों ने सर्वसमिति से अपना पत्र के रूप में निम्नलिखित निर्णय दिया —

प्रतिलिपि (नकल)

सम्मति इस विषय में ली जाती है कि बाद पूज्य पदवी किसे दी जावे। इस पर हमारी यही सम्मति है कि जो पूज्य श्री गुरुदेव जी फरमायेंगे, वह हमें सहर्ष स्वीकार है।

हस्ताक्षर

१ द० जवाहर लाल जी — २ गैंडेराय जी

३ द० उदय चन्द जी

७ द० कर्मचन्द जी — ८ जड़ाव चन्द जी

६ आत्माराम जी — ६ विनय चन्द जी

५ द० छोटे लाल जी — १० बनवारी लाल जी

११ द० रामनाथ जी — १२ वृद्धि चन्द्र जी

१३ गुरु महाराज श्री उदयचन्द जी के स्वीकार करने से ही मुझे स्वीकार है द: रतनचन्द जी।

१४ द० काशीराम जी — १५ द: श्री कुंवर जी

इस प्रकार सब की सम्मति प्राप्त हो जाने पर पूज्य श्री ने शुभ-दिन पदवी प्रदान का मुहूर्त निर्धारित करते हुए फरमाया कि वीर निर्वाण संवत २४३६ तदनुसार विक्रमी १६६६ फाल्गुन शुक्ल षष्ठी प्रातःकाल ६॥ बजे पदवी प्रदानोत्सव सम्पन्न करना अत्युत्तम रहेगा।

साध्वी-दीक्षा और पदवी प्रदान समारोह

आज फाल्गुन शुक्ल पंचमी का शुभदिन है। कल होने वाले पदवी प्रदानोत्सव में भाग लेने के लिए अनेक नगर नगरान्तरों मे साधु-साध्वियां तथा श्रावक-श्राविकाओं के समूह एकत्रित हो

गये हैं। प्रत्येक जैन सद्गृहस्थ समागत अतिथियों से भरा पड़ा है। धर्मशाला तथा दूसरे सार्वजनिक स्थानों में भी बाहर से आये हुए दर्शनार्थियों के कारण इतनी भीड़ हो गई है कि तिल धरने को भी स्थान नहीं। पदवी-प्रदान सम्बन्धी भव्य समारोह से पूर्व आज बुद्धा बाई नामक एक वैरागिन की दीक्षा होने वाली है। बुद्धा बाई जेता निवासी ला० सुन्दर दास जी ओसवाल की सुपुत्री थी और चटियावाल वाले श्री ला० धर्मचन्द जी की सुयोग्य पुत्रवधू थी। अपने पति श्री खेताराम जी के स्वर्ग सिधार जाने पर वैराग्य धारण कर आर्या श्री लक्ष्मी बाई जी के समीप दीक्षित होने के लिए सम्बन्धियों से आज्ञा प्राप्त कर अमृतसर आई हुई थी। संघ के अग्रणी सर्व श्री लाला नत्थू शाह जी, हरनाम दास जी, ला० संतराम जी, वैष्णव दास जी, माधोराम जी, दूनीचंद जी (जैन सभा के प्रधान), जवाहरमल जी, मन्त्री श्री नत्थूराम जी, ला० ज्वालामल जी, जगन्नाथ जी, ला० भगवान दास जी, व वसन्तमल जी आदि श्रावकों ने परम प्रसन्नता पूर्वक पूज्य श्री से प्रार्थना की कि उपस्थित बाई दीक्षा के योग्य हैं, इन्हें आर्या पद प्रदान कर पवित्र पंच महाव्रत धारण करा के चरित्र वृत्ति प्रदान करें इस पर पूज्य श्री ने प्रार्थना स्वीकार करते हुए फाल्गुन शुक्ला पंचमी बुधवार विक्रमी संवत १९६९ को बुद्धा बाई को सर्व विरति धर्म समझाया और इसकी दुरूहता पर पर्याप्त प्रकाश डाला।

बुद्धा बाई एक अत्यन्त रूपवती युवति थी। उनके अंग-अंग से यौवन और सौन्दर्य फूट रहा था, काली घुंघराली केशराशि से उनका शारीरिक सौन्दर्य द्विगुणित होकर दमक रहा था। उनकी दीक्षा को देखने के लिए दर्शक गण जमादार की हवेली में उमड़ते चले आ रहे थे। कुछ ही क्षणों के पश्चात वैरागिनी

ने मंच पर प्रवेश कर फिर आचार्य चरणों में दीक्षा के लिए प्रार्थना की. तो सब लोग स्तब्ध रह गये और सोचने लगे कि कहाँ तो यह अपूर्व रूप-योवन और कहाँ साधुओं का असिधार कठोर व्रत। देखते ही देखते वह देवी जन समूह से ओझल हो कर एक तरफ चली गई। थोड़ी देर के पश्चात् अपने उन विमोहक केश-कलापों को कटवा कर साध्वियों के श्वेत वस्त्र धारण कर ज्यों ही सभा में प्रविष्ट हुई कि सारी सभा आश्चर्य चकित हो उठी। जो देवी एक क्षण पूर्व सौन्दर्य की साक्षात् सजीव प्रतिमा के समान प्रतीत हो रही थी, वही अब केशहीन हो श्वेत वस्त्र धारण किये मुख पर मुँह पट्टी बान्धे सात्विकता एवं पवित्रता की प्रत्यक्ष प्रतिमा सी प्रतीत होने लगी। इस अद्भुत परिवर्तन को देख सभी के मुख से अनायास ही 'वीतराग अरिहंत देव की जय', 'जैन धर्म की जय' आदि जयघोष निकल पड़े।

पूज्य श्री ने इस अवसर पर दीक्षा के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रवचन किया और कहा कि परम वैराग्य के कारण ही यह देवी दीक्षा धारण कर साध्वी बन रही है। इसने संसार को रूप और यौवन की नश्वरता को भली भाँति जान कर ही अपनी भड़कीली पोशाक व बहुमूल्य अलंकारों को उतार फेंका है। और सात्विक वेष धारण कर दीक्षा-व्रत धारण करने के लिए यहाँ खड़ी है। इसकी वैराग्य वृत्ति को दृढ़ बनाने के लिए आज मैं इसे दीक्षा दे रहा हूँ ताकि यह वीतरागता की ओर अग्रसर होती हुई अपना आत्मकल्याण कर सके। यह कह कर पूज्य श्री ने दीक्षा मन्त्र का उच्चारण कर सुनाया। दीक्षा की आज्ञा संतराम जी ने दी थी। दीक्षा विधि समाप्त होने के अनन्तर बुद्धा आर्या श्री लक्ष्मी आर्या जी को शिष्याणी रूप में सौंप दी गई। सकल श्री संघ के समक्ष लक्ष्मी देवी जी ने उन्हें अपना शिष्य बना

लिया। इस प्रकार जयघोषों के साथ दीक्षा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया।

इस महान् त्याग और वैराग्य के दृश्य को देख कर सभागत लोगों के मस्तक अनायास ही उस नवदीक्षिता सती साध्वी के प्रति श्रद्धा और भक्ति के साथ झुक गये। साथ ही जैन धर्म के त्याग और वैराग्य के प्रति बड़े आदर के भाव जागृत हो गये। अब चतुर्विध श्री संघ के सभी सदस्यों के हृदय में आगामी दिवस होने वाले पदवी-प्रदानोत्सव के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विचार धाराएँ तरंगित होने लगी। इस महोत्सव के भव्य समारोह को देखने के लिए सब के नेत्र अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे। कुछ घण्टों की प्रतीक्षा भी बड़ी लम्बी प्रतीत होने लगी थी।



पदवी प्रदान दिवस

(फाल्गुन शुक्ला षष्ठी सं-१६६६ का स्मरणीय दिवस)

इस दिवस का पंजाब के श्रीसंघ के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय स्थान है। क्योंकि इसी दिन पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज ने गच्छ के अनेक साधु-संतों को यथा-योग्य पदवी प्रदान कर श्रीसंघ को अत्यन्त सुसंगठित करने का ऐतिहासिक कार्य किया था। श्रीसंघ ने अपने उत्तराधिकारी तथा अन्यान्य पदों पर उपयुक्त संतों के निर्वाचन का सारा भार पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज पर ही डाल दिया था। आज पूज्य श्री को बड़ी ही सूझ-बूझ, बड़ी ही सावधानी और अत्यधिक तत्परता से कार्य करना पड़ रहा था। क्योंकि संघ में एक से एक बढ़कर योग्य, विद्वान, तपस्वी संत विद्यमान थे, उनमें से किसे किस पद पर अभिषिक्त किया जाय इसका निर्णय करना कोई सहज कार्य नहीं था। आज अपने एक ऐसे उतराधिकारी की घोषणा करनी थी, जो साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका रूपी चारों तीर्थों को अपने प्रभाव और प्रेम से सत्-पथ पर चलाने में सक्षम हो, जिस का आदेश समस्त श्रीसंघ के लिए अनुल्लंघनीय हो, जो अपने त्याग और तेज से समग्र जैन जगत् को आल्हादित और विकसित कर दे और जो उनकी ढलती हुई अवस्था में तथा उनके पश्चात् संघ

की समग्रगति-विधियों का विधिवत संचालन कर सके।

आज अमृतसर पंजाब के समग्र जैन समाज के लिए सचमुच अमृत के सरोवर के समान बना हुआ है। उसमें चारों ओर आनन्द और उत्साह की अलौकिक लहरें उठ रही हैं। यद्यपि पदवी प्रदान का शुभ मुहूर्त साढ़े ६ बजे है, तो भी सभी नर-नारी प्रातःकाल ही नित्य-कृत्य से निवृत्त हो जमादार की हवेली के विशाल प्रांगण में जहाँ पर पदवी प्रदान समारोह सम्पन्न होने वाला है, एकत्रित होने लगे हैं। प्रतिक्षण भीड़-भाड़ इतनी बढ़ती जा रही है कि स्वयं सेवकों को व्यवस्था बनाये रखने में बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ रहा है। नीचे तिलमात्र भी स्थान न रहने के कारण महिलाओं के बैठने का प्रबन्ध चारों ओर की लम्बी-चौड़ी छतों पर किया जा रहा है। फाल्गुन का सुखद सुहावना समय है, न शीत ही सताता है न गरमी ही असह्य है। बातों ही बातों में दो घण्टे का समय बीत गया और सहसा जन समूह ने "जैन धर्म की जय "पूज्य श्री सोहनलाल-जी महाराज की जय" "संत सतों की जय" आदि गगनभेदी जय घोषों से सभास्थल को गुंजा दिया।

इन जय कारों को सुनकर बड़ी भारी भीड़ में जो लोग अब तक मुनिमण्डली के दर्शन न कर पाये थे, वे भी समझ गये कि पूज्य श्री पधार रहे हैं।

इस प्रकार पूज्य श्री यथासमय सभा मंच पर प्रवेश कर अपना उच्च आसन ग्रहण कर विराजमान हो गये। उनके पीछे-पीछे शुभ्र वस्त्र धारी ६४ साधु-साध्वियों के समूह ने भी सभा भवन में पदार्पण कर यथा योग्य आसन ग्रहण कर लिए। सभा के मध्य में स्थित शुभ्र वेश धारी यह संत-समूह ऐसे सुशोभित हो रहा था, मानो संसार के शुभाशुभ कृत्य रूप नीर-क्षीर का विवेक

करने वाले हंसों की पंक्तियाँ मानसरोवर को छोड़कर इस सुधा सरोवर (अमृतसर) पर आकर पंक्तिबद्ध हो बैठ गई हों। अथवा कलियुग के मलों का नाश करने के लिए अहिंसा धर्म स्वयं साधुओं के रूप में अनेक वेश धारण कर वहाँ आ विराजा हो। प्रत्येक मुनि के मुख मंडल पर एक दिव्य शान्त तेज की आभा झलक रही थी। अब पूज्य श्री ने अपना प्रारम्भिक वक्तव्य मंगलाचरण इस प्रकार आरम्भ किया।

ॐ णमो अरिहंताणं... ...हवै मंगलम्' आदि नवकार मन्त्र का उच्चारण करते ही समस्त उपस्थित सज्जन खड़े हो गये और पूर्ण पाठ सुनकर यथास्थान बैठ गये। मंगलाचरण के समाप्त होते ही सब लोगों के शान्त और उत्सुक कानों में इस प्रकार के मधुर शब्द व्याप्त होने लगे—

साधु-साध्वियो तथा श्रावक-श्राविकाओ! आपका आज का यह सम्मेलन प्रभु वीर के शासन का सम्मेलन है। पंजाब प्रान्त का धार्मिक महोत्सव है, शासन के सुचारु एवं स्थिर-रूप से संचालन कार्य की पूर्ति के लिए हम सब यहाँ एकत्रित हुए हैं। वीर का पट्टधर योग्य व्यक्ति बने और वह सारे संघ को समुन्नत बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे, इसी लिए यह इतना बड़ा समुदाय यहाँ उपस्थित हुआ है। यह एक प्रकार का शासनोत्सव है। समस्त संघ की सत्ता इसमें सन्निहित और केन्द्रित है।

इस समय यहाँ पर साधु-साध्वियां और श्रावक-श्राविकाएँ श्रीसंघ के ये चारों अंग विद्यमान है। हमारे यहाँ धर्मसंघ के संचालक के पथ पर राज्यतन्त्र की भांति राजा के पुत्र को या साधु के सब से बड़े चेले को ही प्रतिष्ठित करने का नियम नहीं है। जैन धर्म में प्रत्येक कार्य लोक-मत के अनुसार किया जाता है। चतुर्विध श्रीसंघ जिस बात को स्वीकृत करे तदनुसार आचरण करने

का नियम है। सब की पसन्दगी का कार्य करने का आदेश दिया गया है। अतः आप लोगों के समक्ष युवाचार्य पद-प्रदान किया जा रहा है—आचार्य की चादर ओढ़ाई जा रही है। तथा अन्यान्य कार्यवाहकों की भी नियुक्ति की जा रही है।

आप जानते हैं कि मेरा जंघा बल क्षीण हो चुका है, निर्बलता के कारण शासन भार को सम्हालने में, मैं दिन प्रति दिन असमर्थ होता जा रहा हूं। इसलिए मुझे अपना सहयोगी उत्तराधिकारी चुनना है,—अपने संत-सतियों का एक नेता निर्वाचित करना है। इस सम्बन्ध में मैंने संत-सतियों की सम्मति प्राप्त करली है और अपना भी विचार स्थिर कर लिया है, किन्तु जब तक आप लोगों का उसमें सहयोग न हो तब तक साधु-साध्वियों के परस्पर विचार कर लेने से ही कोई बात पूरी नहीं बनती। इस लिए यह कार्य पूरे संघ की उपस्थिति में किया जा रहा है।

इस समय इस सभा में चालीस के लगभग सन्त २८ सतियां तथा ५ हजार के लगभग श्रावक श्राविकाएँ उपस्थित हैं। उन सब की साक्षी से मैं अपना उत्तरदायित्व दूसरे सन्तों के कंधों पर रखने वाला हूं। संघ को चाहिए कि वह चादर का सदा सम्मान करे, और उसको प्रतिष्ठा का वीर प्रभु को प्रतिष्ठा समझे। वीर का शासन ही वीर का प्रतीक है। आप सब लोग उसके अनुयायी हैं, पंजाब प्रान्त के शासन कार्य का उत्तराधिकारी सारे संघ के द्वारा चुना जा रहा है। सब की साक्षी से इस पद की पूर्ती की जा रही है। अब साढ़े नौ बजे का समय होगया है। इस शुभ मुहूर्त में मैं चादर ओढ़ाने का कार्य आरम्भ करता हूँ। यह कह कर पूज्य श्री ने एक कुंकुम रचित स्वस्तिक चिह्नांकित चादर को हाथ में लेते हुए कहा कि यह चादर आचार्य की है। और आचार्य पद की चादर मैं काशीराम जी को प्रदान करता

हूँ। अर्थात् मेरे पश्चात् काशीराम जी भगवान् के पाट का सुशोभित करेंगें। सब संघ के अग्रणियों ने उस चादर को अपने हाथों स्पर्श किया, और सबको स्वीकृति संत काशीराम जी को ही आचार्य बनाने की मिली।

इसके पश्चात् आचाय श्री ने स्वयं तथा श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्री उदयचन्द्र जी महाराज, श्री आत्माराम जी महाराज, आदि संतां ने वह चादर ज्यों ही काशीराम जी को ओढ़ाई कि जय-जय कार की ध्वनि से गगन मंडल गूँज उठा। 'पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की जय' 'युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज की जय', 'सब संतों की जय', आदि जय घोषों की ध्वनि से सारी सभा प्रतिध्वनित हो उठी। समस्त उपस्थित सज्जनों के मुख मंडलों पर हर्षोल्लास की आभा दमक उठी। सब लोगों की अपलक नेत्रों से दृष्टियाँ काशीराम जी महाराज के तेजस्वी मुखमंडल पर पड़ गईं। उस शुभ चादर पर 'आचार्य काशीराम जी' यह शब्द' अङ्कित थे, । इस प्रकार आचार्य पद की सूचक चादर ओढ़ाने की विधि के सम्पन्न हो जाने के साथ ही साथ मुनि काशीराम जी महाराज 'युवाचार्य' बन गये। आचार्यत्व के लिए उपयुक्त छत्तीस गुण सम्पन्न उनकी अनुपम योग्यता तथा स्वस्थ सबल सुन्दर शरीराकृति आदि गुणों को देख कर ही श्री संघ ने उन्हें संघनायक के पद पर अभिषिक्त किया है। जिस प्रकार राष्ट्र की सर्वविध, उन्नति का उत्तरदायित्व राष्ट्र नायक पर होता है, उसी प्रकार मुनियों की देख-रेख पठन-पाठ आदि सर्व-विध उन्नति का ध्यान मुनि नायक को रखना पड़ता है। ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भार को अपने ऊपर आ पड़ा देख युवाचार्य श्री अपने आप को उस भार वहन के लिए कटिबद्ध करते हुए अपना हार्दिक अभिप्राय श्री संघ के समक्ष इस प्रकार प्रकट करना प्रारम्भ किया :—

पूज्य आचार्य प्रवर, साधु-साध्वियों, तथा भाईयो और बाईयो !

मुनि-मंडली में मुझसे कहीं योग्य विद्यावयोवृद्ध अनेक संतों के रहते हुए भी आज आप लोगों ने मेरे दुर्बल कंधों पर इस बड़े भारी उत्तरदायित्वपूर्ण पद की प्रतिष्ठा का भार डाल दिया है। मेरे जैसे साधारण संत के लिए इस भार का भली-भाँति वहन एक गुरुतर कार्य है। पर संघनायक गुरुवर पूज्य श्री ने संघ की सर्वसम्मत स्वीकृति से यह उत्तरदायित्व मुझ पर डाला है और गुरुदेव की आज्ञा सर्वथा अनुल्लंघनीय है, इस लिए मैं इस भार को सहर्ष शिरोधार्य करता हूँ। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सब लोग मुझे इस भार के वहन करने में सदा अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते रहेंगे। वास्तव में तो आप के बल-बूते पर ही इस महान् दायित्व को अपने कंधों पर लेने का साहस कर रहा हूँ। यदि संघ ने मुझे सर्वसम्मति से सत्ता सौंपी, या प्रतिष्ठा प्रदान की है, तो उस प्रतिष्ठा की रक्षा करना भी संघ का परम प्रमुख कर्तव्य है। इस पद का सम्मान तो भगवान् के शासन का सम्मान है। इस अवसर पर मैं अपने सतीर्थ्य साधु और साध्वियों से आशा करता हूँ कि मेरे इस उत्तर-दायित्व को अपना उत्तरदायित्व समझते हुए मुझे प्रत्येक कार्य में मनसा वाचा, कर्मणा, सहयोग प्रदान करते रहेंगे। क्योंकि मैं आप का दिया हुआ कार्य-भार ही तो उठा रहा हूँ। अन्त में मैं गुरुदेव की कृपा को सविनय स्वीकार करते हुए सर्व सज्जनों से प्रार्थना व आशा करता हूँ कि आप अपने कार्य के संचालन में मुझे पूरी सहायता देते रहें। क्योंकि जो प्रतिष्ठित पद आपने मुझे प्रदान किया है, उसकी मर्यादा की रक्षा आप ही के हाथों में है। यह पद मेरा नहीं अपितु भगवान् वीर प्रभु के शासन का है. अतः इसकी उन्नति और प्रतिष्ठा में ही शासन की उन्नति

और प्रतिष्ठा होगी। आपने जो यह पद मुझे प्रदान किया इसके लिए मैं आप सब का और पूज्य गुरुदेव का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मैं आप को अपनी ओर से पूर्ण विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इस पद की मर्यादा को बढ़ाने और श्रीसंघ को समुन्नत बनाने में कोई कसर उठा न रखूंगा। मैं शासन देव से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे इस भार को वहन करने में सदा सहायक बनें, और वीर प्रभु के पवित्र शासन संचालन करने में अपनी व संघ की शोभा बढ़ा सकने की शक्ति प्रदान करें।

इस प्रकार विनय भरे वक्तव्य के अनन्तर श्री युवाचार्य जी ने ज्यूं ही अपना आसन ग्रहण किया कि सभा करतल ध्वनि से निनादित हो उठी।

तत्पश्चात् उपाध्याय श्री आत्माराम जी के नाम से अंकित एक चादर पूज्य श्री ने अपने हाथों से श्री मुनि आत्माराम जी महाराज को प्रदान की।

तृतीय चादर जिस पर गणी श्री उदयचन्द जी महाराज लिखा था, श्री मुनि उदयचन्द जी महाराज को प्रदान की गई। गणावच्छेदक की पदवी से अंकित चतुर्थ चादर श्री मुनि जवाहर-लाल जी महाराज को ओढ़ाई गई।

इस प्रकार पूज्य श्री ने चार चादरें प्रदान कर चारो पदों पर सुयोग्य संतों का निर्वाचन कर दिया। इस समय समस्त श्री-संघ हर्ष-विभोर हो उठा, उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा, तालियाँ बजा-बजाकर तथा जय-जय-कार के गगन भेदी नारों से पृथ्वी और आकाश को गुञ्जा दिया। इस अपूर्व आनन्द के अव-सर पर पूज्य श्री ने आर्या पार्वती देवी जी को अपने शासन में विशेष स्वतन्त्रता प्रदान की। आर्याओं का शासन महासती पार्वती देवी जी के हाथों में था, अतः विशेष स्वतन्त्रताएँ देकर भली-भाँति कार्य संभालने का आदेश दिया।

पूज्य श्री ने एक निबन्ध इसी अवसर पर सुनाने के लिए तय्यार किया था जिसे उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज ने पढ़ सुनाया। इस निबन्ध में आचार्य, उपाध्याय, आदि के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए श्रीसंघ की उन्नति के लिए अनेक नियम एवं योजनादि का निर्धारण किया गया था। इस निबन्ध को पढ़ते हुए श्री उपाध्याय जी ने कहा कि अब मैं पूज्य श्री द्वारा प्रदत्त सभी पद और उनकी सूचनाएँ आपको सुना देता हूँ:—

१. श्रीमान् मुनि काशीराम जी को युवा-आचार्य का पद प्रदान किया गया है।
२. श्रीमान् मुनि आत्माराम जी को उपाध्याय का पद प्रदान किया है।
३. श्रीमान् मुनि उदयचन्द जी महाराज को गणी पद प्रदान किया है।
४. श्रीमान् मुनि जवाहरलाल जी महाराज को गणावच्छेदक का पद प्रदान किया है।
५. श्रीमान् गैंडेराय जी को भी गणावच्छेदक का पद प्रदान किया गया है।
६. श्री छोटुलाल जी को गणावच्छेदक पद प्रदान किया।
७. श्री जडावचन्द जी को गणावच्छेदक का पद प्रदान किया।
८. श्रीमान् गोविन्दराम जी महाराज को स्थविर का पद दिया।
९. ,, शिवदयाल जी महाराज को भी स्थविर का पद दिया।
१०. ,, गणपतिराय जी म-सा० को भी स्थविर पद दिया।
११. ,, नारायणदास जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद दिया।
१२. श्री बिहारीलाल जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद प्रदान किया।
१३. श्री शालिग्राम जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद दिया।

१४. श्री विनयचन्द्र जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद दिया ।
१५. श्री कर्मचन्द जी महाराज को बहु सूत्री का पद प्रदान किया ।
१६. ,, मोहरसिंह जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद दिया ।
१७. ,, बनवारीलाल जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद दिया ।
१८. ,, वृद्धिचन्द्र जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद प्रदान किया ।
१९. ,, खजानचन्द्र जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद (तपस्वी पद)
२०. ,, रामनाथ जी महाराज को प्रवर्त्तक का पद ।
२१. ,, केशरीसिंह जी को प्रवर्त्तक का पद ।
२२. ,, हीरालाल जी महाराज को तपस्वी पद ।
२३. रत्नचन्द्र जी महाराज को कवीश्वर पद व तार्किक अर्थात् चर्चावादी पद
२४. मुनि ज्ञानचन्द जी महाराज को पंडित का पद प्रदान किया है ।

इसके अतिरिक्त एक मुनि मंडल का निर्माण भी किया गया है, इसके सदस्यो के नाम इस प्रकार है:—

१. श्रीमान् नारायण दास जी महाराज २. श्री बिहारी लाल जी म० ३. शालिग्राम जी महाराज ४. कर्मचन्द जी महाराज, ५. बनवारी लाल जी महाराज ६. रामानाथ जी महाराज, ७. मोहरसिंह जी महाराज, ८. वृद्धिचन्द्र जी महाराज, ९. रत्नचन्द्र जी महाराज, १०. अमीचन्द जी महाराज ११. नरपति राय जी १२. खजानचन्द जी महाराज ।

यह मुनि मंडल यदि कोई कार्य करना चाहे तो आचार्य आदि के समक्ष अपनी सम्मति रख सकता है ।

तत्पश्चात् आचार्य आदि के कर्तव्यों पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया—

आचार्य के कर्तव्य—

आचार्य के सम्यक् प्रकार से गच्छ की सारणा (रक्षा), वारणा (शिथिलाचारी होने वाले को सावधान करना), साधुओं को हित-शिक्षा देना तथा उनके वस्त्र पात्रादि की व्यवस्था आदि कर्तव्य हैं। वह परम्परा के अनुसार शुद्ध शास्त्र के अर्थ का अध्ययन कराएँ और दुर्बल तथा जंघाबल-क्षीण रोगादि युक्त संतों को योग्य सहायता देवें।

उपाध्याय का कर्तव्य—

उपाध्याय गच्छ निवासी साधुओं को विधि पूर्वक शास्त्राध्ययन करायें तथा पठन-पाठन की प्रेरणा कर साधुओं में विद्या-प्रेम जागृत करें।

गणी—

आचार्य व उपाध्याय के यथोक्त कार्यों को दृष्टिगत रक्खें। तप यथोक्त होते हैं या नहीं इसका ख्याल रक्खें। यदि उनमें कोई त्रुटि हो तो उनको शिक्षित करें।

गणावच्छेदक—

देश देशान्तर में विचार कर गच्छ के योग्य वस्त्र पात्रादि लाकर आचार्यों को देवें। क्योंकि आचार्य के पास वस्तु होगी तभी वे मुनिगण की रक्षा कर सकेंगे।

स्थविर—

यदि कोई आत्मा धर्म से पतित होता हो तो उसको धर्म में दृढ़ करें। तथा स्थविर एक क्षेत्र में स्थिर रहना चाहे तो रह सकता है। क्योंकि कल्प का नियम स्थविर के वास्ते नहीं है।

प्रवर्तक—

प्रवर्तक के साथ जो साधु हो उन्हें आचार प्रवृत्त करें।

चतुर्विध संघ के कर्तव्य—

(१) आचार्य, उपाध्याय, गणावच्छेदक, गणी, व मुनि-मंडली के आदेशों की ओर ध्यान दें।

(२) यदि कोई विकट न्याय हो, या आचार्य अकेला निपटा न सकता हो तो आचार्य तीनों की सम्मति को लेकर उसका निर्णय करें। अर्थात् गणी, उपाध्याय, गणावच्छेदक आदि सर्व की सम्मति से न हो तो अधिक सम्मत्यनुकूल किया जाए। यदि फिर भी ठीक न बैठे तो दो-चार निष्पक्ष भाईयों की सम्मति के अनुसार कार्य किया जाय। इस प्रकार बहु सम्मति से किया हुआ निर्णय न्याय्य, निष्पक्ष समझा जायगा। संयम की वृद्धि और पूज्य अमर सिंह जी महाराज का नाम अधिक से अधिक प्रकाश में आये, व गच्छ में प्रेम की वृद्धि हो, ऐसे ही कार्य करने चाहियें। आचार्य की दो सम्मतियाँ गिनी जायगी।

(३) आचार्य, उपाध्याय, गणी, गणावच्छेदक इन चारों की धारणा, श्रद्धा, व प्ररूपणा एक होनी चाहिए। जिससे गच्छ के मुनियों की धारणा एक ही रहे।

(४) सब साधु आर्यों को चाहिए कि चौमासे की आज्ञा जैसे पहले मंगाते रहे हैं, वैसे आगे को भी मंगावें। यही नियम शिष्य-शिष्याणी बनाने के पूर्व भी लागु होगा।

(५) मुख्य-मुख्य साधुओं का कर्तव्य है कि वे अपने साथ में रहने वाले सभी साधुओं को योग्य शिक्षाएँ दें, जिससे प्रेम और आचार की वृद्धि हो। किसी की निन्दा न करें और न गृहस्थियों से निन्दा सुनें। यदि कोई गृहस्थ किसी साधु की निन्दा करे, तो उसे कहना चाहिए कि यदि कोई त्रुटि हो तो उन्हीं को कहिए। उनके गुरु को अथवा आचार्य

को कह दीजिए। ऐसी बातें हम नहीं सुनना चाहते, क्योंकि इससे हमारी साधुचर्या निर्बल बनती है।

(६) साधुओं को चाहिये कि अपनी दिनचर्या के अनुकूल सभी कार्य करें। व्यर्थ बातें न करें, अपितु स्वाध्याय में लगे रहें।

(७) प्रवर्त्तक या साधु किसी साधु या आर्या को अथवा आर्या किसी साधु को कुछ शिक्षा देना चाहें तो मधुर शब्दों में दें। कठोर शब्दों का प्रयोग कदापि न करें। क्योंकि मिठास ही प्रेम है, और यदि आपस में किसी का वन्दना-व्यवहार या सुख-साता का सम्बन्ध तोड़ना चाहें तो वह कोमल वचनों से आचार्य को निवेदन करे। आचार्य की आज्ञा के बिना किसी का व्यवहार न तोड़ें।

(८) मुख्य-मुख्य साधु दूसरे साधुओं को व्याकरण, साहित्य, सूत्र आदि की तथा आधुनिक ज्ञान की शिक्षा दें। पठन करावें, तप भी करावें, अधिक न हो सके तो पाक्षिक उपवास तो सभी करें। तप शरीर और आत्मा दोनों के लिए लाभप्रद है।

(९) सब साधुओं को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे पक्षपात भावना झलके।

(१०) विद्वान् साधुओं को योग्य है कि वे सदा तप संयम और विद्या की उन्नति के उपाय सोचते रहें। शास्त्रों के शुद्ध हिन्दी भाषा में अनुवाद तथा नवीन ग्रन्थों का निर्माण करते रहें। हिन्दी भाषा आजकल के जन-साधारण की प्राकृत भाषा है।

(११) यदि कोई दीक्षा लेना चाहे तो कम से कम दो मास तक अवश्य उसे आचार-विचार सिखाया जाए।

(११) जो साधु या आर्या संयम छोड़कर दुबारा दीक्षा लेना चाहें

उसे बिना आचार्य की आज्ञा के दीक्षा न दी जाए। प्रतीत वाला हो फिर दीक्षित हो सकता है।

(१३) यदि कोई साधु या आर्या अपने गुरु या गुरुआणी के पास से दूसरे गुरु या आचार्य के पास जाना चाहें तो अपने गुरु या गुरुआणी की आज्ञा के बिना न जायें। और दूसरे साधु या आर्या उसको अपने पास रक्खें भी नहीं।

आर्याओं के कृत्य—

(१४) प्रवर्तिनी जी को चाहिए कि वह अपने निश्राय की आर्याओं को संयम में प्रवर्तायें, निर्वाह करायें और हित शिक्षा दें।

गृहस्थों के कर्तव्य—

बुद्धिमान् गृहस्थों को चाहिए कि गच्छ की धारणा से आचार्य को सहमत करने के लिए सदैव पुरुषार्थ करें। गच्छवासी साधुओं का आदर सम्मान करें। श्रावक साधु का आचार शिथिल होता देखें तो वे उसके गुरु के समीप कह दें। यदि वह गुरु की शिक्षा न माने तो ५-७ गृहस्थ मिलकर समझायें। किसी साधु की आचारहीनता का अनुभव किये बिना गड़बड़ न करें। और सब काम पक्षपात रहित होकर करें। साधुओं को उच्च शास्त्रीय ज्ञान तथा स्वमत एवं अन्य मतों की जानकारी में प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए सदा स्वाध्याय की प्रेरणा करते रहें। इसमें धर्म की उन्नति होती है। श्रावकों को चाहिए कि वे अपने हित के लिये श्रावक कांफ्रेंस के प्रस्तावों को मान्य करें। श्राविकाओं को चाहिए कि वे साधु और साध्वियों के प्रति आदर भाव से व्यवहार करें तथा धार्मिक पठन और क्रिया की ओर विशेष रुचि रक्खें। सुश्राविकाएँ अपने वर्ग की उन्नति

करने में सदैव तत्पर रहें। क्योंकि वीर प्रभु के लिए और उनके शासन के लिए चारों तीर्थ समान हैं। चतुर्विध सङ्घ ही पूर्ण सङ्घ है।

इस प्रकार पूज्य श्री के करकमलों के द्वारा यह पदवी प्रदानोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। श्री काशीराम जी महाराज चतुर्विध श्रीसङ्घ के हृदय सम्राट् तो पहले ही बन चुके थे, पर युवाचार्य या युवराज के पद पर वैधानिक दृष्टि से भी आपको अभिषिक्त कर श्रीसङ्घ ने अपने मनोरथों को साकार रूप प्रदान कर दिया।

जैन-जगत में इस पदवी-प्रदानोत्सव का विशेष महत्व है। क्योंकि इस अवसर पर जैन जगत् के जिन तीन प्रमुख धुरन्धरों के कन्धों पर सङ्घ-शासन-संचालन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का भार डाला गया, आगे चलकर उन तीनों ने अपने तप, त्याग संयम, ज्ञान व पुरुषार्थ के द्वारा यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि पूज्य श्री ने इस त्रिमूर्ति का निर्वाचन बड़ी सूझ-बूझ एवं भविष्य-दर्शिनी प्रतिभा के बल पर ही किया था। युवाचार्य श्री काशीराम जी ने सारे भारत भर में पंजाब प्रान्त का नाम चमका दिया। गणी श्री उदयचंद जी महाराज की विद्वत्ता एवं कार्यकुशलता का समग्र जैन-जगत् पर ऐसा अनुपम प्रभाव पड़ा कि अजमेर मुनि सम्मेलन के अवसर पर सम्पूर्ण भारत भर के समग्र मुनि राजों ने समवेत स्वर से आप ही को अपना कार्यवाहक सभापति चुना। उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज ने शास्त्रों का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित कर तथा अन्य अनेक ग्रन्थों का निर्माण कर पंजाब श्रीसङ्घ की यशःपताका को दिग्-दिगन्तरों में फहरा दिया। पूज्य काशीराम जी महाराज के पश्चात् आप ही ने आचार्य पद को सुशोभित किया है। इस प्रकार वास्तव में यह पदवी-प्रदान महोत्सव जैन जगत के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा।

अमृतसर में सम्पन्न १६६६ के चतुर्मास के पश्चात् मृगशिर शुक्ल में त्यागी, वैरागी कल्याणचन्द जी की दीक्षा हुई। वे अग्रवाल वैश्य और बड़े तपस्वी थे। केवल गरम पानी के आधार पर एक-एक मास तक खमण करते थे। आत्म-शुद्धि के लिए आपने कठोर मार्ग को अपनाया और कठिन तपस्या में रत हो गये। इसीलिए आप सर्वत्र 'तपस्वी जी' के नाम से प्रसिद्ध थे। युवाचार्य श्री इस बार दुआबा की ओर विहार कर धर्मप्रचार करते हुए आप फिर संवत् १६७० में चातुर्मास के लिए पूज्य श्री की सेवा में अमृतसर आ पहुचे। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् हरियाणा, बांगर देश परसते हुए आप दिल्ली पधारे।

संत जीवन की कठोर परीक्षा

मुनिवृत्ति का आचरण करते हुए तथा नियमों का पालन करते हुए साधु संतों को पदे-पदे कैसे-कैसे कठिन से कठिन परीषहों को सहना पड़ता है, साधारण संसारी लोगों के हृदय में तो इस की कल्पना ही नहीं आ सकती। जैन साधुओं के कठोर व्रतों को धारण करने वाले साधुओं को पैदल एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार करते हुए नित्य नये कष्टों का सामना करना पड़ता है। तदनुसार युवाचार्य श्री को भी अनेक बार ऐसी भयंकर विपत्तियों में से निकलना पड़ा था। उनमें से एक का उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

इस वर्ष दिल्ली से वापिस आते हुए सोनीपत पानीपत, सेवड़ा, होते हुए करनाल आ पहुंचे। करनाल से थानेसर की ओर जाते हुए युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज तथा तपस्वी कल्याणचन्द्र जी अपने संतों से बिछुड़ कर मार्ग भूल गये।

ज्येष्ठ की भयंकर गरमी पड़ रही थी, चारों ओर चलती हुई लूओं की लहरें प्राणिमात्र को झुलस रही थीं।

'तवा समान थी तपती वसुन्धरा'

के अनुसार सारी पृथ्वी तवे के समान तप रही थी। प्रचंड मार्तण्ड मण्डल अखंड ब्रह्माण्ड को अपने प्रचण्ड करों से इस प्रकार

संतापित कर रहा था कि मनुष्य तो क्या कोई पशु-पक्षी भी ऐसी भयंकर दुपहरी में अपने आवास को छोड़कर बाहर निकलने का साहस नहीं कर पाता था।

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की छाहौं, चाहति छाँह॥

ऐसा प्रतीत होता था कि मानो कवि की उक्त उक्ति इस समय अक्षरशः चरितार्थ हो रही है। और तो और पशु-पक्षी, कीट पतङ्ग या अन्यान्य छोटे-मोटे जीव जन्तुओं की तो बात ही क्या? जेठ की भयंकर दुपहरी के संताप से तप्त होकर तो बेचारी स्वयं छाया भी छाया चाहती थी, क्योंकि इसी लिए तो वह इस समय और सब स्थानों से भागकर या तो घने जंगलों में जा छिपी है, या घरों में जा घुसी है, अथवा शरीर के नीचे आकर सिमिट गई है। जब छाया की यह दशा हो तो भला कौन मानव इस जेठ की दुपहरी में बाहर निकलने का साहस करेगा। पर हमारे चरित नायक पूज्य श्री काशीराम जी महाराज ने तो शीतोष्ण क्षुत्पिपासा आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए आत्मा को तपा कर निखारने के लिए संत-वृत्ति स्वीकार की थी। इसलिए वे तो तवे के समान तपे हुई धरती की तो बात ही क्या संयम का पालन करने के लिए सचमुच दहकते हुए अंगारों पर भी चलना पड़े तो चलने के लिए तैयार थे। और कल्याणचन्द जी तो थे ही तपस्वी।

ऐसी भयंकर दुपहरी में भी मार्ग से भटके हुए या यूं कहें कि अपने मार्ग पर चलते हुए ये दोनों संत नंगे सिर और नंगे पाँव आगे बढ़ते ही जा रहे हैं। कहने को तो यह जंगल प्रदेश है, पर यहाँ कहीं कोसों तक किसी वृक्ष का चिन्ह भी तब दिखाई न देता था। जिधर देखें उधर ही आग की लपटें उठती हुई दिखाई दे रही थीं। पर इन दोनों साधकों को इसकी कुछ भी

परवाह नहीं। प्रातःकाल से अब तक कुछ खाया है न पिया है। न कहीं क्षण भर छाया में विश्राम ही किया है। अविरत गति से कृच्छ्र साधना के पथ पर अग्रसर होते जाना ही इनका लक्ष्य है। कई मील चलने के पश्चात् एक वृक्ष की ठण्डी छाया को पाकर आप सुस्ताने के लिए वहाँ बैठ गये। प्यास के कारण गला और होठ सूख गये थे, पाँव झुलस कर छालों से भर गये थे। फिर भी सूर्य के कुछ ढलते ही अपनी यात्रा के मार्ग पर आगे बढ़ गये। थोड़ी देर चलने के पश्चात् संयोग से एक गाँव दिखाई दिया।

साधक-द्वय ने सोचा कि चलो गाँव में आहार नहीं तो पानी लस्सी, छाछ आदि कुछ न कुछ तो प्राप्त हो ही जायगा। इसी प्रकार की आशा और उमंगों से भरे हुए इन दोनों सन्तों के पाँव त्वरित गति से गाँव की ओर बढ़ने लगे। गाँव में पहुंचने पर एक घर में जा उस घर की मालिकन बुढ़िया से कहा कि—

'माई जी थोड़ी छाछ हो तो दे दो।'

माई ने कहा—'अभी लाई महाराज।'

यह कह कर वह अन्दर छा लेने चली गई।

इधर दोनों सन्त सोचने लगे कि चलो अब तो छाछ पीकर कुछ जान में जान आ जायगी। अब तो दिन भर के संकटों का अन्त हो गया है, रात्रि में विश्राम भी यहाँ कहीं आराम से कर सकेंगे। इधर यह दोनों इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उधर बुढ़िया ने घर में जाकर देखा तो छाछ थोड़ी है और पीने वाले दो हैं। इसलिए वह छाछ में पानी मिला लाई, और आकर बोली—

'लीजिए महाराज।'

पर महाराज ने छाछ के बर्तन पर पानी के छींटे देख कर पूछा कि—

'माई छाछ में पानी ताजा डालकर लाई हो या बासी ?'

यह सुनकर बुढ़िया ने बड़ी नम्रता के साथ निवेदन किया' कि—

'महाराज बासी का क्या काम, अभी-अभी मेरी बहू कुएँ से ताजा ठंडा पानी लेकर आई है सो थोड़ा सा मिला लाई हूँ। ताकि छाछ की खटास कुछ कम हा जाय।'

उस बेचारी को क्या पता था कि जैन साधु कच्चा पानी नहीं पीते। इसलिए उसने तो बड़े भक्तिभाव से ही उक्त निवेदन कर दिया था, भले ही वह पानी बासी क्यों न रहा हो। इस पर युवाचार्य श्री ने फरमाया कि—

'माई जी अब यह छाछ हम लोगों के काम की नहीं है। अब हम इसे नहीं ले सकते।

यह सुनकर वह भौचक्की सी रह गई और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी कि 'महाराज छाछ बहुत अच्छी है, इसमें मैं नमक जीरा मिला लाई हूं, बिल्कुल पवित्र है. किसी बच्चे ने झूठा-जाठा हाथ नहीं लगाया, आप जरूर ले लीजिए।'

तब महाराज श्री ने समझाया कि—

'माई जी, तुम्हारी यह छाछ तो बड़ी अच्छी है और हम प्यासे भी दिन भर के हैं, पर हम जैन साधु हैं, हम प्रासुक पानी या छाछ ही पीते हैं, कच्चा पानी नहीं पीते। हम लोगों को कच्चे पानी का त्याग है।

यह सुनकर वह बुढ़िया बहुत दुःखी हुई पर कर क्या सकती थी। घर में अब और छाछ तो थी नहीं जो ला देती।

तब वे दूसरे घर गये, वहाँ संयोग से कोयले बुझाया हुआ पानी मिल गया। उसे ही पीकर सूखे गले और होठों को गीला कर परम संतोष का अनुभव किया। सन्ध्या का समय हो गया

था, अतः आज इसी गांव में रात काटने का निश्चय कर किसी छत वाले एकान्त स्थान को देखने लगे। पर ऐसी किसी जगह के न मिलने के कारण सारी रात एक दरवाजे वाली एक छोटी सी कोठड़ी में काटनी पड़ी। उमस और गर्मी के मारे प्राण निकले जा रहे थे, पसीने से शरीर तरबतर हो रहा था मानो शरीर के पांचों तत्व भी उस भयंकर गर्मी से पिघल कर पानी-पानी होकर बह जाना चाह रहे थे। ऐसी अवस्था में वहां भला नींद का क्या काम। एक तो यूं ही दिन भर के हारे, थके, भूखे, प्यासे थे। शरीर चाहता था कि घड़ी दो घड़ी कुछ आँख लग जाय और कुछ विश्राम मिल जाय, पर कोठड़ी की असह्य उमस के कारण नींद भी मानो अपनी चिर-संगिनी आँखों का साथ छोड़ कर कहीं दूर निकल भागी थी। इस प्रकार जागते-जागते ज्यों-त्यों करके रात बीती और उषा की लालिमा ने झाँक कर सारे संसार को प्रभु-प्रेम के रंग में रङ्ग दिया। दोनों संत भी प्रतिलेखन प्रतिक्रमण आदि नित्य-क्रम कर उस गाँव से चल पड़े। थोड़ी छाछ मिल गई थी उसे पीकर गाँव से कुछ दूर आगे बढ़े थे कि महाराज श्री को ढूंढने निकले हुए थानेश्वर के भाई आ मिले। उनके साथ आप जिस किसी प्रकार थानेश्वर तक पहुंच गये, पर पिछले दिन की भूख-प्यास और लू लग जाने के कारण वहाँ जाते ही अस्वस्थ हो गये। संयम नियम का पालन करते हुए ५ दिन के पश्चात् स्वास्थ्य लाभ कर आप वहाँ से चल पड़े। त्रावड़ी, शाहबान होते हुए अम्बाला पधारे। वहां से खरड़ रोपड़ कलाचोर, बंगा, फगवाड़ा, जालन्धर और करतारपुर परसते हुए संवत् १६०१ के चातुर्मास के निमित्त पूज्य श्री की सेवा में अमृतसर आ पहुंचे।

चतुर्मास की समाप्ति के बाद जालंधर, टाड़ा, उर्मर ककेरियाँ

आदि दोनों में धर्म प्रचार करते हुए वापिस अमृतसर आकर वहीं पर संवत् १९९२ का चातुर्मास किया। इस बार चातुर्मास के बाद विहार यू० पी० की ओर हुआ। तीतरवाड़ा, कांधला, एलम, बामनोली, बड़ौत, आदि में धर्म प्रचार करते हुए आप दिल्ली पधारे। वहाँ से चलकर आषाढ़ शुक्ल तृतीया को फिर अमृतसर जा पहुँचे।

वर्तमान युवाचार्य पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज की दीक्षा—

श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज इस समय जैन-जगत् के एक देदीप्यमान प्रकाश स्तम्भ हैं। गणी उदयचन्द्र जी महाराज के समान आपका भी ब्राह्मण शरीर है, आपके पिता श्री पंडित बलदेव जी शर्म्मा गौड़ एक अत्यन्त दयालु प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। यूँ तो आपकी इस प्रवृत्ति के अनेक उदाहरणों से सारा जीवन ही भरा पड़ा था। पर उनमें से केवल एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जाता है। आपकी रेवाड़ी, तहसील दगौली, फतेपुरी, में खेती-बाड़ी-जमीन-जायदाद थी। एक बार आपके दादा पं० आनन्द जी ने बलदेव जी को खेत पर भेजा और कहा कि हालियों और मजदूरों से दिन भर काम लेना। पर पंडित जी तो बड़े दयालु प्रकृति के थे, उन्होंने जब देखा कि हाली और मजदूर लोग दुपहर की गर्मी में पसीने से लथपथ होकर भी काम कर रहे हैं तो उन्हें अपने पास बुलाया और कहा कि छाया में बैठकर आराम कर लो। जब गर्मी कम हो जाए फिर काम में लग जाना। सायंकाल जब पिता जी ने आकर देखा तो काम कुछ भी न हुआ था। उन्होंने सब बात सच-सच कह दी कि मैं इन्हें इस प्रकार कष्ट पाते नहीं देख सकता था, इसलिये मैंने ही इन्हें विश्राम करने के लिए कह दिया था। फिर क्या था; उन्हें बहुत

बुरी तरह से डांट पड़ी। फलतः वे सपत्नीक घर छोड़ कर अहमदाबाद चले गये। और वहां कपड़े का व्यापार करने लग पड़े। यहीं पर श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज का जन्म संवत् १६५२ भाद्रपद शु० द्वादशी शनिवार को हुआ।

बड़े होकर, पढ़-लिख कर आप अपने चाचा जी के साथ अबोहर मण्डी में दूकान पर काम करने लगे। इसी समय आप का सम्बन्ध (सगाई) कर दिया गया और विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई। पर इतने में आपके एक मित्र की माता ने आपको घर पर बुलाकर कहा कि 'जिस लड़की से तुम्हारा सम्बन्ध हुआ है, पहले उससे मेरे लड़के की सगाई हुई थी। पर क्योंकि इसके पिता मर गये, इसलिए हम से सगाई तोड़कर तुम्हारे साथ कर दी गई।' यह सुनकर आपको हार्दिक दुःख हुआ। दयालुता तो आपको पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। आप तत्काल दयार्द्र हो द्रवित हो उठे और ससुर जी को जाकर स्पष्ट कह दिया कि मैं विवाह नहीं करवाऊंगा। माता जी व चाचा जी के विशेष आग्रह करने पर आप विरक्त होकर घर से निकल पड़े।

आपके सुन्दर गौरवर्ण स्वस्थ शरीराकृति, शान्त सरल स्वभाव एवं सुमधुर वाणी के कारण जो भी आपके सम्पर्क में आता वही तत्काल प्रभावित हो जाता। इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर सरगोधा की एक सम्पन्न, संभ्रात, विधवा महिला ने आपको अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति समर्पित कर अपनी कन्या-रत्न का आप से विवाह कर देना चाहा, और महीनों तक आपके पीछे-पीछे भटकती रही। पर आप तो कंचन और कामिनी को त्याग कर सद्गुरु की खोज में घर से निकले थे, फिर भला इन जंजालों में कैसे फँस सकते थे। जैसा कि पहले कहा गया है दयालुता,

अहिंसा, सत्य और प्रेम आदि सात्विक चित्तवृत्तियों की ओर आपकी आरम्भ ही से प्रवृत्ति थी। इस समय तक पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की विद्वत्ता तथा श्री युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज की व्याख्यान-शैली की धाक क्या जैन, क्या जैनेतर सभी लोगों पर जमी हुई थी। फलतः आप भी अमृतसर में अपने एक मित्र रामजीलाल के साथ पूज्य श्री के व्याख्यान सुनने जाने लगे। कुछ ही दिन व्याख्यान सुनने के पश्चात् ऐसा गहरा रंग चढ़ा कि तत्काल दीक्षा लेने के लिए प्रस्तुत हो गये। इधर वह सरगोधे की माई भी ढूंढती हुई अमृसर आ पहुंची और अपनी सारी चल सम्पत्ति इन्हें सौंप कर तथा अपने एक सम्बन्धी के यहाँ ठहरा कर चली गई कि मैं दो-तीन दिन में अपनी लड़की को लेकर वापस आती हूँ। पर आप तो उस से पिंड छुड़ाकर दीक्षा लेने की उधेड़बुन में लगे हुए थे। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वह फिर आ पहुंची, पर उसी दिन उसकी थाली में मांस की कटोरी देखकर (यद्यपि उसने इन्हें देखते ही उसे छिपा दिया था) आपने स्पष्ट कह दिया कि अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता, क्योंकि मैं जिस उद्देश्य से घर से निकला हूं, वह पूरा हो गया है।

यह कहते हुए आपने उसकी सारी सम्पत्ति उसे सम्भाल दी। बात तो यह है कि—

'मा कुरु धनजनयौवन गर्वं
हरति निमेषात् कालः सर्वम्।'

तथा

'भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।'

आदि पद आपके कानों में चौबीसों घण्टे गूंजते रहते थे।

आत्मा के शुद्ध-बुद्ध चैतन्य स्वरूप के साक्षात्कार की तीव्र लालसा आपके अन्तर्तम में दिन-प्रतिदिन तीव्रतर होती जा रही थी। साम्प्रदायिक आग्रह आप में आरम्भ से ही नहीं था। इधर जब जैन साधुओं के त्यागमय जीवन के सम्पर्क में आए और पूज्यश्री के व्याख्यान सुने तो बहुत कुछ सोच-समझ कर, अन्त में इसी निर्णय पर पहुंचे कि सच्चा साधु बनना हो ता जैन साधु ही बनना चाहिए। घरबार को तो पहले छोड़ ही आए थे। उसकी ओर से निश्चिन्त हो पूज्य श्री की सेवा में दीक्षा के लिए निवेदन कर दिया। पूज्य श्री ने उत्कट वैराग्य भावना को देखकर प्रतिक्रमण सूत्र याद करने को कहा, सो तत्काल याद करके सुना दिया गया। अवस्था भी २० वर्ष के लगभग थी, बालिग या वयस्क हो जाने के कारण घर वालों या अन्य किसी की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता था, अतः पूज्य श्री ने सं० १९७२ आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के शुभ दिन मध्याह्नोत्तर शुभ मुहूर्त में आपको दीक्षा दे दी। इस प्रकार आपका संसारत्याग का चिर अभिलषित मनोरथ पूर्ण हो गया। आपके छोटे दादा पं० भागीरथ जी भी अपने समय के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। आपने भी तदनुसार खूब विद्याध्ययन कर अपने, श्रीसंघ के तथा कुल के नाम को सर्वत्र आलोकित कर दिया। वास्तव में श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज अपनी निर्मल ज्ञान-प्रभा से श्री संघ को शुक्लचन्द्र के समान ही आल्हादित एवं प्रकाशित करने वाले सिद्ध हुए। इस दीक्षा से जहां श्री पं० मुनि शुक्लचन्द्र जी को एक परम तपस्वी सद्गुरु की प्राप्ति हो गई, वहां पूज्य श्री को भी एक ऐसा सुयोग्य कर्मठ शिष्य मिल गया जो छाया के समान सदा उनका अनुचर रहकर जन्म भर मनसा, वाचा, कर्मणा अपने गुरु की सेवा में निरत रहा। गुरुदेव भी उनकी प्रखर प्रतिभा को तत्काल पहचान गए और प्रत्येक कार्य में अपने मंत्री के समान

पूर्ण परामर्श लेते रहे। यद्यपि दीक्षा का पाठ आपने पूज्य श्री १००८ सोहनलाल जी महाराज से ग्रहण किया था, तथापि आप पूज्य श्री काशीराम जी महारज के शिष्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस दीक्षा के लिए भी बड़ी धूम-धाम का आयोजन करने का निश्चय किया गया था, पर पूज्य श्री ने कहा कि इस दीक्षा में किसी प्रकार का आडम्बर या बाह्य दिखावा न किया जाए। यह लोग-दिखावे के लिए या जनता की वाह-वाही लूटने केलिए नहीं, प्रत्युत आत्म कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही साधु वृत्ति ग्रहण कर रहा है। तदनुसार बड़ी सादगी से आपकी दीक्षा विधि सम्पन्न हो गई। उधर घर वालों ने आपको ढूंढ निकालने के लिए कोई कसर उठा नहीं रखी थी, पुलिस में भी सूचना दे दी थी, पर आपने तो इन सब की परवाह किए बिना मुनि-वृत्ति ग्रहण कर ही ली।

१६७२ के चातुर्मास के पश्चात् श्रीयुवाचार्य का विहार लाहौर हुआ। वहां से आप गुजरांवाला पधारे। वहां संवेगियों का जोर था ही, सो आपने देशकाल का विचार करते हुए 'गुणपूजा' विषय पर एक अत्यन्त मार्मिक व्याख्यान के द्वारा यह भली भाँति सिद्ध कर दिया कि किसी भी प्रस्तर की प्रतिमा या मूर्ति को भगवान या तीर्थंकर का रूप मानकर उसकी पूजा करना, भोग लगाना, आरती करना आदि सर्वथा अशास्त्रीय है। क्योंकि जैन शास्त्र ने प्रत्येक पदार्थ को जानने के लिए (१) नाम (२) स्थापना (३) द्रव्य (४) भाव नामक चार निक्षेप मानी है-

(१) नाम निक्षेप—

नाम निक्षेप से प्रयोजन यह है कि किसी भी तदाकार वस्तु का वही नाम रख सकते हैं। उसी नाम से उसका व्यवहार

कर सकते हैं। जैसा कि अपने घर का चित्र या नक्शा बनवाया, उस नक्शे में बैठक, रसोई घर, स्नानागार; शौचालय आदि के सब अलग-अलग कमरे बने हुए हैं। उस नक्शे को देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह हमारा घर है। इस प्रकार नाम निक्षेप का व्यवहार किया जा सकता है।

(२) स्थापना निक्षेप—

इस निक्षेप से प्रयोजन यह है कि तदाकार वस्तु का आकार-प्रकार भी वैसा ही हो सकता है। जैसे कि मकान के उस नक्शे से मकान के कमरों की लम्बाई, चौड़ाई, आकार-प्रकार का ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार स्थापना निक्षेप का भी प्रयोग सम्यक्त्व दृष्टि से उचित है।

(२) द्रव्य निक्षेप—

प्रत्येक पदार्थ या वस्तु किन्ही न किन्हीं द्रव्यों से निर्मित होती है। इसे ही द्रव्य निक्षेप कहते हैं। जैसे मकान ईंट गारा, चूना, पत्थर आदि द्रव्यों से निर्मित होता है, पर उस मकान का वह चित्र या नक्शा इन द्रव्यों से निर्मित नहीं हुआ है। अतः उसमें द्रव्य निक्षेप नहीं है।

(४) भाव निक्षेप—

प्रत्येक वस्तु के अपने कार्य व्यापार अथवा गुण होते हैं। जैसे मकान में लोगों को धारण करना आदि गुणों के कारण लोग इसमें रहते हैं, रोटी बनाते हैं। तदाकार चित्र या प्रतिमा में यह भाव निक्षेप भी नहीं हो सकता।

जैसे घर के किसी चित्र या नक्शे को घर मान कर कोई उसमें रहना या रोटी पकाना चाहे तो यह असम्भव है।

इसी प्रकार भगवान् वीर प्रभु या अन्य किसी देवी देवता

की जब हम प्रतिमा बनाते हैं तो उसमें नाम और स्थापना, ये दो निक्षेप तो हो सकते हैं। क्योंकि हम उस प्रतिमा को देखकर यही कहेंगे कि यह महावीर स्वामी या पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा है। वैसा ही आकार प्रकार हाथ, पाँव, नाक, मुंह सिर आदि होने के कारण स्थापना निक्षेप भी वहाँ सम्भव है। पर द्रव्य और भाव निक्षेप उस प्रतिमा मे कदापि नहीं हो सकते। क्योंकि अस्थि, मांस, मज्जा, मेदा तथा आत्मा नामक जिन जड़ चेतन द्रव्यों से भगवान् वीर प्रभु के भौतिक देह का निर्माण हुआ था, वे द्रव्य प्रतिमा मे कदापि सम्भव नहीं हैं। प्रतिमा का निर्माण उन द्रव्यों से नहीं हुआ है। वह तो पत्थर आदि द्रव्यों से निर्मित हुई है। जब मूर्ति या चित्रो मे द्रव्य निक्षेप ही नहीं हो सकती तो भाव निक्षेप तो सम्भव ही कैसे है। जिस प्रकार चेतन पुरुष चलता-फिरता खाता-पीता और उपदेश देना या सुनता है, यह सब क्रियाएँ मूर्ति में कदापि नहीं हो सकती। पदार्थ की वास्तविकता की भावना हो ही नहीं सकती। मूर्ति न तो कुछ खा सकती है न सूंघ सकती है, न उपदेश दे सकती है, फिर उसके आगे भोग लगाना, धूप जलाना और उसे साक्षात् वीर प्रभु का स्वरूप मान कर उसकी पूजा करना या उससे यह आशा रखना कि यह मूर्ति हमे कुछ सुमार्ग दिखा सकेगी, या कुछ उपदेश दे सकेगी, इसकी पूजा से हमारा उद्धार हो जायगा, यह सर्वथा व्यर्थ नहीं तो और क्या है। क्या कभी कोई मूर्ति भी खा, पी, पहन सकती है, कभी नहीं। इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध होता है, कि मूर्ति में द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप की अशक्यता के कारण मूर्ति व चित्र को तदाकार मानकर उसकी उपासना करना नितान्त अव्यवहारिक है।

इसके अतिरिक्त जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह

है कि वह मनुष्य के गुणों की पूजा करना सीखता है। सत्य, प्रेम, दया, अहिंसा, ज्ञान आदि जिन गुणों के कारण किसी का आदर सम्मान, स्वागत, सत्कार आदि हो सकता है वे चेतन पुरुष में ही हो सकते हैं, जड़ प्रतिमा में नहीं। मनुष्य को दूसरे के गुणों का आदर करना सीखना चाहिये। पर जिसमें गुण हो ही नहीं, जो बिल्कुल जड़ भरत पत्थर हो उसकी भला कैसे पूजा की जा सकती है। वीतराग अरिहन्त देव के उपासक सच्चे साधु-सन्त श्रमण ही गुणों के निधान होते हैं। वे अपने आचरण और उपदेशों के द्वारा मनुष्य को कल्याण मार्ग में प्रवृत्त कर सकते हैं।

इसलिए हे विज्ञ जनो, अब आप भली-भांति समझ गये होंगे कि वास्तव में सच्चे जैन धर्म का उपासक और वीर प्रभु का अनुयायी वही है, जो जड़ प्रतिमाओं का पूजन छोड़ कर गुणों की पूजा करता है। अतः आप लोग जड़ की उपासना छोड़कर चेतन आत्म-तत्त्व की उपासना में प्रवृत्त हो जाइये। क्योंकि जड़ की उपासना से मनुष्य जड़ हो जाता है, यदि आप जड़त्व की ओर जाना चाहें तो आपको कोई रोक नहीं सकता, आपकी जिधर इच्छा है जाइये, पर विवेकी पुरुष तो बार-बार यही कहेगा कि चैतन्य स्वरूप आत्मा को चैतन्य गुणों का ही उपासक होना चाहिये, इसी से आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त होगा।

इसलिये कहा है कि:—

पाषाणहेममृण्मय विग्रहेषु,
पूजा पुनर्जननमार्गकरी मुमुक्षो।
तस्माद्यती स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात्,
बाह्यार्चनां परिहरेदपुनर्भवाय ॥

अर्थात् हे मुमुक्षु साधक पत्थर सोने या मिट्टी की मूर्ति की

पूजा से मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता। वह तो उसे पुनर्जन्म के दारुण दुःखदायक बन्धनों में बाँधने वाली है। इसलिए मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाले साधक को चाहिये कि वह मूर्ति आदि बाह्य पदार्थों की पूजा को छोड़ कर आन्तरिक गुणों की पूजा करने लग पड़े।

साधु का कर्तव्य श्रावक-श्राविकाओं को उपदेश देकर सन्मार्ग दिखाना है। उस पर आचरण करना आप का काम है, जो शास्त्र की वास्तविक बात थी वह हमने आपको समझा दी है। यदि आप उस पर विचार पूर्वक प्रवृत्त होगें तो उसमें आपका कल्याण होगा। आप वीर प्रभु के सच्चे उपासक बनने के अधिकारी बन जायेंगे।

युवाचार्य श्री के इस प्रकार के प्रभावशाली प्रवचनों का स्थानीय श्रावक-श्राविकाओं के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। सब लोग आपकी दिव्य वक्तव्य-कला से प्रभावित हो मन्त्र-मुग्ध हो गये। अनेक व्यक्तियों में आपके उपदेशानुसार आचरण करने का प्रण किया। गुजरां वाला से विहार कर आप जामके, सियाल कोट शहर होते हुए जम्मू स्टेट पधारे। उसके बाद वापस पसरूर होकर अमृतसर पधारे।

संवत १९७४ का चातुर्मास भी अमृसर में ही हुआ।

चतुर्मास के बाद आप विहार कर लाहौर, शाहदरा चूड़खाण मन्डी, शेखुपुरा, खान गाडोगरा, (दुल्लकी बार) पधारे। खांनगा डोगरा में लाला नत्थूशाह व चिरञ्जीलाल जी ने महाराज से लायलपुर परसने की प्रार्थना की, पर लाहौर में उसी समय पंजाब कान्फ्रेंस हो रही थी, जिसमें आपका उपस्थित होना आवश्यक था। अतः आप लाहौर की ओर चल पड़े। लाहौर कान्फ्रेंस में आपके बड़े मार्मिक भाषण हुए। लाहौर से आप

ग्राम ग्राम विचरते व सदाचार के प्रचार के द्वारा क्षेत्र शुद्धि करते हुए १९७५ के चातुर्मास के निमित्त आप फिर अमृतसर पधारे।

जङ्गल दश में रूढ़िवाद का खण्डन—

चातुर्मास समाप्त होने पर युवाचार्य श्री का विहार जंगल देश की ओर हुआ। जंगल देश में मोसर या मृत-भोज का बहुत अधिक प्रचार था। इसके लिये कई लोग कर्जदार तक हो जाते थे। महाराज श्री ने अपने प्रभाव-पूर्ण प्रवचनों के द्वारा जैन समाज में स मोसर की इस प्रथा का अन्त करने का बड़ा भारी प्रयत्न किया। आपके व्याख्यानों का प्रभाव भी खूब हुआ। कईयों ने मोसर न करने और उसमें भाग न लेने की प्रतिज्ञा की। अग्रवाल लोगों ने सारे प्रान्त के अग्रवालों की सभा बुलाकर जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी रीति-रिवाजों में खर्च बिल्कुल कम कर दिये, और मृतक-भोज की प्रथा को सर्वथा समाप्त कर दिया। इस प्रकार वहां अग्रवाल जाति का एक दृढ़ संगठन भी अनायास हो गया। बात तो यह है कि युवा-चार्य श्री रूढ़िवाद के बड़े विरोधी थे। आगे चलकर मेवाड़ और मालवे की यात्राओं में जब आपने वहां पर मृतक-भाज आदि की प्रथाओं को सर्वत्र व्याप्त देखा, तो आपके हृदय को बड़ी भारी ठेस पहुँची। आपने यथाशक्ति उसके निवारण का प्रयत्न भी किया।

जंगल देश से आप दिल्ली परसते हुए रोहतक मोणक और फिर पटियाला पधारे। यहाँ अम्बाले के भाईयों ने चातुर्मास के लिए विनति की। अत्यधिक आग्रह से अम्बाला परसना स्वीकार कर लिया गया। और भाईयों के प्रबल प्रयत्न से पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज की आज्ञा प्राप्त कर १९७६ का चातुर्मास अम्बाले में निश्चित हो गया। अम्बाले का यह चातुर्मास्य धर्म

ध्यान तप त्याग और प्रत्याख्यानों की दृष्टि से बड़ा भव्य रहा। यहाँ के स्थानक वासी जैनियों पर आपके प्रवचनों का इतना अधिक प्रभाव हुआ कि आपकी प्रेरणा व उपदेशों से विद्यादान के लिए ११०००) रुपये एकत्रित हो गये।

चातुर्मास समाप्त होने पर बनूड़, खरड़, रोपड़, होते हुए आप नालागढ़ पधारे। नालागढ़ महान् तपस्वी श्री गणपतराय जी महाराज और श्री भागचन्द जी विराजमान थे। यहां पर श्री त्रिलोकचन्द जी वैरागी की दीक्षा हुई। यह सच्चे क्रिया-शील संत सिद्ध हुए। त्रिलोकचन्द जो महाराज जैन-शास्त्रों व दर्शनों का क्रियात्मक उद्योत करते रहे। आपकी दीक्षा मे नालागढ़ के राजा साहब व मन्त्री आदि सभी कर्मचारी उपस्थित हुए थे। यह दीक्षोत्सव बड़ी धूम-धाम और समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था। सरकारी लवाजमा, बैंड, घोड़े आदि से सुसज्जित हजारों लोगों ने एक भव्य जुलूस निकाला था।

नालागाढ़ के राजा साहब को अहिंसा व्रती बनाना—

नालागढ़ के राजा साहब शिकार के बड़े शौकीन थे। किन्तु उनके तात्कालिक प्रधान मन्त्री श्री रघुवीरसिंह जी हिसार के एक प्रसिद्ध जैन रईस हैं, आपके प्रभाव से राजा साहब युवाचार्य श्री के व्याख्यानों में उपस्थित होने लगे। महाराज ने भी देश काल का विचार करते हुए—

'अहिंसा परमोधर्मः'

इस विषय पर ऐसा हृदय स्पर्शी व्याख्यान दिया कि राजा साहब युवाचार्य श्री के अनन्य भक्त बन गये। उन्होंने शिकार का परित्याग कर दिया। और सारे राज्य में साल भर में २१ दिन जीवहिंसा का प्रतिबन्ध लगा दिया। उन २१ दिनों में मुसलमानों का ईद का दिन भी आता था, अतः

मुसलमानों ने इस आज्ञा के विरुद्ध वायसराय के पास भी दरखास्तें भेजी, फरियादें की, पर वायसराय ने स्पष्ट कह दिया कि रियासतों के आन्तरिक मामलों में हम हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस प्रकार ईद के दिन भी सारी रियासत में किसी प्रकार किसी पशु की हिंसा न हो सकी।

इस घटना से पूज्य श्री के प्रकाण्ड-पांडित्य अपूर्व प्रवचन-पटुता अप्रतिम प्रतिभा एवं अलौकिक अपरिमित त्याग के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त होता है। जिस राजा के यहाँ विविध जीवों के मुरब्बे और आचारों के बरतन भरे रहते हों और वे आफिसरों को भेट के रूप में भेजे जाते हों! जो शिकार और मांस का अनन्य शौकीन हो, वह एक जैन साधु का इस प्रकार आदर सत्कार करे, इतना ही नहीं उनसे प्रभावित हो कर अपने राज्य में जीव हिंसा का निषेध भी कर दे यह वास्तव में संतो के पवित्र-चरित्र और अलौकिक तेज का ही प्रभाव है। पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज को सतत साधना तथा तप त्याग वैराग्य का तेज युवाचार्य में श्री उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था, इसका यह स्पष्ट प्रमाण है। आपका यहाँ पर गोशाला में ही गौ रक्षा पर भी एक प्रभाव पूर्ण व्याख्यान हुआ। नालागढ़ में इस प्रकार धर्म विजय प्राप्त कर और राजा साहब को धर्म मार्ग में लगा कर आपने वहाँ से विहार कर दिया। मार्ग में अनेक नगरों को परसते हुए अमृतसर पधार कर संवत् १९७७ का चातुर्मास वहीं पर पूज्य श्री की सेवा में किया।

अमृतसर कांग्रेस और विश्ववंद्य बापू से साक्षात्कार—

सन् १९१९ में अमृतसर में जलयान वाला बाग में जनरल ओडायर के द्वारा लोम हर्षक हत्याकांड के पश्चात् इस वर्ष सन् १९२० में अमृतसर में कांग्रेस हुई थी। इस अवसर पर एक दिन

युवाचार्य श्री को मार्ग में आते देख महात्मा गांधी जी ने अपनी मोटर रुकवा कर नीचे उतर कर युवाचार्य श्री को वन्दना की। अहिंसा के महान् प्रचार के विश्वबंधवा ५ ने युवाचार्य श्री के रूप में मूर्तिमन्त अहिंसा धर्म का दर्शन कर परम प्रसन्नता प्रकट की।

चातुर्मास के पश्चात् जंगल देश को विनति स्वीकार करते हुए पट्टी, कसूर फिरोजपुर, फरीदकोट, कोट कपूरा मंडी. गोनाणा मंडी और भटिण्डा होते हुए रामा मंडी पधारे। वहां आपने ओसवाल जैनों में संगठन की भावना उत्पन्न कर उन्हें एकता के दृढ़ सूत्रों में सुगठित कर दिया। उन्हीं दिनों अमृतसर से लाला जगन्नाथ रतनचन्द जी का तार मिला कि होशियारपुर में साधु सम्मेलन होने वाला है। इसके सम्बन्ध में सब निश्चय हो चुका है, गणी जी श्री उदयचन्द जी महाराज और उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज आदि सभी बड़े-बड़े संत एकत्रित हो रहे हैं। पूज्य श्री का आदेश है कि आप शीघ्र पधारें।

तदनुसार युवाचार्यश्री वहाँ से बिहार कर ग्रामानुग्राम विचरते कपूरथला पधारे। वहाँ यह पता चलने पर कि अभी साधु सम्मेलन स्थगित हो गया है, आप होशियारपुर न जाकर अमृतसर लौट आये। सन १६७८ का चातुर्मास भी अमृतसर में किया। इसके पश्चात् प्रायः सभी चातुर्मास अमृतसर से बाहर ही हुए। अमृतसर नगर अब दूर होने लगा था, क्योंकि पूज्य श्री के आदेशानुसार दूसरे क्षेत्रों को भी लाभ पहुंचाना आवश्यक था।

अमृतसर से बाहर चातुर्मास
जीवन-यात्रा

अब तक युवाचार्य श्री ८ मास तक इधर-उधर विचर कर चातुर्मास में फिर अपने तप स्वाध्याय ज्ञान और शास्त्राभ्यास को बढ़ाने के लिए अमृतसर में पूज्य श्री के चरण कमलों में आ पहुँचते रहे। पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज भी आपको अत्यन्त योग्य अनुभवी और सर्व-शास्त्र पारंगत बनाने के उद्देश्य से अपने पास बुला लिया करते थे। १८ वर्ष तक लगभग यही क्रम चलता रहा। जैसे कि पक्षी अपने चेटुओं को उड़ना सिखाने के लिए पहले उन्हें थोड़ी दूर उड़ने की छुट्टी देकर फिर अपने पास बुला लेते हैं, पर जब वे स्वतन्त्र रूप से उड़ने में सर्वथा समर्थ हो जाते हैं तो उन्हें पूर्णरूप से स्वतन्त्रता दे दी जाती है कि जहाँ चाहे उड़ें, वैसे ही युवाचार्य श्री को जब पूज्य श्री ने सब प्रकार से भली-भांति परख लिया, अनेक कसौटियों पर कस कर तप संयम और शील की पूरी परीक्षा कर ली, तो स्वतन्त्र रूप से उन्मुक्त विहार का आदेश दे दिया। और आशीर्वाद देते हुए कहा कि—'प्रिय शिष्य अब तुम श्रीसंघ का जितना भी कल्याण कर सकते हो करो। परोपकार करते हुए आत्म-

कल्याण के पथ पर अग्रसर होते जाओ। इस मार्ग में जितनी भी विघ्न-बाधाएँ या रुकावटें आएँ, उन्हें सहर्ष सहते हुए देश देशान्तरों में जिन-शासन की विजय वैजयन्ती फहराते हुए धर्म प्रचार यात्रा में आगे-से-आगे कदम बढ़ाते जाओ। जो पग एक बार आगे बढ़ गया है, उससे फिर पीछे कभी न हटना, अब तुम सब प्रकार से सर्वथा योग्य हो गये हो। श्रीसंघ के हृदय सिंहासनों पर अपना अधिकार तुमने भली-भाँति जमा लिया है। इसलिए अब तुम जहाँ इच्छा हो, वहीं स्वेच्छापूर्वक विचरो, और भगवान् वीर प्रभु के दिव्य-सन्देश को घर-घर पहुँचा दो यही मेरी इच्छा और अभिलाषा है। आवश्यकता पड़ने पर मैं स्मरण कर लूँगा।'

इस प्रकार आशीर्वाद देकर इस अठत्तीस वर्षीय युवाचार्य सन्त प्रवर को धर्म प्रचार आचार और संयम की अनन्त यात्रा के लिए निरन्तर बढ़ते जाने की आज्ञा दे दी।

यह परम गुरु-भक्त आदर्श शिष्य सन्त प्रवर भी नत-मस्तक हो गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य कर आत्मोद्धार और लोक-कल्याण के लिए अनन्त यात्रा के पथ पर निकल पड़ा। अमृतसर से लाहौर गुजराँ वाला, और स्यालकोट होते हुए आप पसरूर पधारे। संवत् १९७६ का चातुर्मास पसरूर में ही किया।

आत्म तेज का दिव्य प्रभाव और अनुपम क्षमा दान—

पसरूर से आप स्यालकोट छावनी पधारे। यहाँ आपके ऐसे प्रभावशाली सार्वजनिक व्याख्यान होते कि प्रतिदिन हजारों की संख्या में श्रोतागण उपस्थित होने लगे। दूर-दूर के ग्रामों से क्या जैन क्या अजैन सभी लोग बड़ी श्रद्धाभक्ति से व्याख्यान सुनने के लिए आते। सड़कों पर दूर-दूर से आने वाले भक्तों के तांगों और मोटर गाड़ियों का तांता-सा लगा रहता। प्रातः सायं

दर्शनार्थियों की भीड़-सी लगी रहती, वहाँ के कुछ अपरिचित लोगों ने सोचा कि यह तो कोई बहुत बड़ा महन्त है, इसके यहाँ हजारों लखपती नर-नारी रोज दर्शन करने के लिए आते हैं। वे लोग खूब भेंट चढ़ाते होंगे, इसके पास खूब धन माल और सामान होगा। चलो, आज रात को इसके यहाँ चोरी करके माला माल हो जायँ। यह सोचकर तीन व्यक्तियों ने हिम्मत की, और पुलिस के जैसी खाकी ड्रैस पहनकर रात्रि को दो बजे मकान में सैंध लगाकर श्री युवाचार्य जी के निवास स्थान में आ घुसे। इस समय सभी मुनिराज प्रगाढ़ निद्रादेवी की गोद में विश्राम कर रहे थे। युवाचार्य श्री ध्यान पार कर सोने का विचार कर रहे थे, कि इतने में उन चोरों की बैटरियों के तीव्र-प्रकाश से सारा कमरा आलोकित हो उठा।

सहसा आँखों को चुंधिया देने वाले इस तीक्ष्ण प्रकाश को देखकर महाराज क्षण भर के लिये स्तब्ध से रह गये। और फिर बड़े धैर्य, साहस और निर्भयता से कहने लगे कि आप लोग कौन हैं? यहाँ रात्रि को क्यों आये हैं? आप यह प्रकाश क्यों कर रहे हैं? हमारे निवास स्थान में प्रकाश करने की मनाई है? यह सुनकर और उस गौरवर्ण के हृष्ट-पुष्ट विशाल काय संत के ब्रह्मचर्य से दीप्त मुख मंडल की दिव्य आभा को देखकर वे लोग सहसा स्तब्ध, चकित और भयभीत होकर सिर पर पाँव रख कर भाग निकले। पर उनमें से एक चोर इस प्रकार भय-व्याकुल हो उठा कि वह भाग न सका और वहीं छिप गया। बाहर गये हुए चोरों ने पत्थर फेंक कर उसे बाहर भाग आने का इशारा किया, जिससे पहरेदार जाग उठे।

युवाचार्य श्री ने यह जानते हुए भी कि चोर यहाँ छिपा हुआ है, पहरेदारों को उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा और वह इन्हें

बातों में लगा देख मौका पाकर नौ दो ग्यारह हो गया। आपने पहरेदारों को बताया कि 'कोई अपरिचित अवाञ्छित व्यक्ति यहाँ आघुसे थे, जो वापिस उल्टे पैर चले गये। हमारी किसी प्रकार की कोई हानि नहीं हुई। और नुकसान होता भी क्या, यहाँ रक्खा भी क्या है, लकड़ी के पात्रों और ओढ़ने पहनने की चादरों के सिवा और हमारे पास है ही क्या, जो ले जाते। बहुमूल्य वस्त्र आभूषण आदि का परिग्रह तो यहाँ कोई करता ही नहीं। वे लोग तो यहाँ आकर ही पछताते होंगे। पर हो सकता है कि उनका यहाँ आना सार्थक हो जाए और वे अपने पूर्व-कृत्यों पर पछताते हुए भविष्य में ऐसे कामों से मुँह मोड़ लें। यहाँ चोरी के लिए आने से उन्हें अवश्य आत्म-ग्लानि हुई होगी।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि युवाचार्य श्री के आत्मतेज का तो उन चोरों पर प्रभाव पड़ा ही, साथ ही उन्होंने हाथ में आये हुए चोर को न पकड़ा कर अपनी अनुपम दयालुता और क्षमा-शीलता का परिचय दिया। चोरों को यह कुछ भी ज्ञात नहीं था कि वहाँ पर कुछ धन है या नहीं, वे तो उनकी अनुपम निर्भी-कता और तेजस्विता से ही हत-प्रभ से होकर भाग गये थे। यह आपके ब्रह्मचर्य के तेज और आत्म-विश्वास का ही परिणाम था कि सशस्त्र चोर भी इन पर वार न कर सके।

कुछ दिन स्यालकोट छावनी विराज कर स्यालकोट शहर, पसरूर और अमृतसर होते हुए आप अम्बाला पधारे।

संवत् १६८० का चातुर्मास अम्बाला में ही हुआ। अम्बाला से खरड़, रोपड़, नालागढ़, बलाचोर, नया शहर, बंगा, फग-वाड़ा, जालन्धर, करतारपुर और अमृतसर में धर्म-प्रचार करते हुए आप लाहौर जा विराजे।

युवाचार्य श्री और गोरक्षा—

काशीराम जी महाराज का १६८१ का चातुर्मास पंजाब की राजधानी लाहौर में हुआ। यहां पर 'गोरक्षा' आदि अनेक सामयिक उपयोगी विषयों पर मार्मिक सार्वजनिक व्याख्यान होते रहे। आपने अनेक तर्क और प्रमाणों से यह भली-भाँति सिद्ध कर दिया कि 'जैन गृहस्थियों के लिए गौओं का संरक्षण और पालन परम पावन कर्तव्य है। गो-पालन से मनुष्य अपना लौकिक और पारलौकिक कल्याण कर सकते हैं। गोरक्षा के विषय पर अपने भाषण का उपसंहार करते हुए महाराज श्री ने भविष्य वाणी के रूप में जो स्पष्ट और निर्भीक घोषणा की, वह आज भी हमारे कानों में गूंज रही है और हमें अपने कर्तव्य पालन का स्मरण करा रही है। उस समय महाराज श्री ने फरमाया था कि—

'मैं राजनैतिक नेताओं को स्पष्ट रूप से चेतावनी देता हूं कि 'जब तक भारत में गोवध बन्द न होगा तब तक राजनैतिक दृष्टि से नाममात्र के लिए देश भले ही स्वतन्त्र हो जाय पर आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से यह कदापि स्वतन्त्र और समुन्नत नहीं हो सकेगा। इसके लिए तो गोवंश की रक्षा केलिए सतत प्रयत्न-शील होना ही पड़ेगा।'

आज हम स्पष्ट देखते हैं कि पंजाबकेसरी इस संतप्रवर की उक्त भविष्य वाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रही है। देश स्वतन्त्र हो गया है, पर गोरक्षा न होने से इसकी दुर्दशा दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। भुख-मरी बे रोजगारी और मंहगाई ने जन सामान्य की कमर तोड़ डाली है। एक मात्र गोरक्षा से ही देश को इन सब विपत्तियों से छुटकारा मिल सकता है।

लाहौर से आप अमृतसर और वहाँ से जेजों वासी भाईयों की प्रार्थना स्वीकार कर जेजों पधारे।

संवत् १९८२ का चातुर्मास जेजों शहर में हुआ, वहां आप बंगा, फिल्लोर, लुधियाना, मलेरकोटला, पटियाला, राजपुरा, परसते हुये अम्बाला पधारे। अम्बाले में जैन कान्फ्रेंस हुई और दो वैरागियों को दीक्षा दी गई। वहां से राजपुर, बहादर गढ़, पटियाला, समाणा, कैथल, ननेरा, कसून, जींद और रोहतक होते हुए दिल्ली पधारे।

दिल्ली में भवन दान—

संवत् १९८३ का चातुर्मास स्थानीय भाईयों की अत्यधिक आग्रह भरी विनती के कारण सदर दिल्ली में हुआ। यहां पर लाला चन्नूमल ज्ञानचन्द जी के मकान में साधु ठहरा करते थे, युवाचार्य जी के धर्मोपदेशों से लाला ज्ञानचन्द जी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वह मकान धर्म ध्यान के लिये दान कर दिया।

दिल्ली शहर में मुन्नालाल जी की धमशाला में साधु आर्याओं को ठहरने नहीं दिया जाता था, किन्तु पूज्य युवाचार्य श्री की कृपा से वह रुकावट भी हट गई। इस प्रकार भारत की राजधानी दिल्ली में आपका यश चारों ओर छा गया। यहां पर आपके सदुपदेश से अमृतसर वाले लाला कुञ्जलाल जी आदि प्रमुख कार्यकर्ताओं के उत्साह से सब्जी मन्डी में महावीर विद्यालय की स्थापना हुई।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् यू० पी० की ओर विहार हुआ। बड़ौत, कांधला, पानीपत करनाल आदि परसते हुए आप अम्बाला पधारे। वहां पर शिमला से आए हुए लाला हेमराज जी, वंशीलाल जी आदि दर्शनार्थी भाईयों ने निवेदन किया कि 'महाराज शिमला में आज दिन तक कोई साधु नहीं पधारे।

आप कृपा करें तो बड़ा उपकार होगा।'

शिमला में शास्त्रार्थ—

इस पर शिमला पधारने की स्वीकृति देदी गई। तदनुसार आप ग्रामानुग्राम विचरते हुए शिमला पधारे। वहां पर एक मौलवी से 'ईश्वर कर्तृत्व' विषय पर एक सार्वजनिक शास्त्रार्थ हुआ।

लम्बे-चौड़े शास्त्रार्थ के पश्चात् मौलवी ने यह स्वीकार कर लिया कि सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम आदि सात्विक चित्तवृत्तियों को जागृत करने वाली आपकी शिक्षा को अवश्य ध्यान में रक्खूंगा। वहां के जैन-अजैन, दिगम्बर श्वेताम्बर थानक वासी आदि सभी भाईयों ने श्री सेवा में उपस्थित होकर चातुर्मास के लिये प्रार्थना की किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को देखते हुए विनती अस्वीकृत कर दी गइ।

शिमला से दुर्गम और कठोर पहाड़ी पथ को पार कर आप नालागढ़ पधारे। वहां से रोपड़ होते हुए होशियार पुर आ विराजे। वहाँ के लोगों की विनती को स्वीकार कर—

संवत् १९८४ का चातुर्मास होशियार पुर में किया। इसी समय आपको अमृतसर में पूज्य श्री की अस्वस्थता का समाचार मिला, अतः चातुर्मास पूर्ण कर शीघ्र अमृतसर जा पहुंचे। और वहीं पूज्य श्री की सेवा में रहने लगे।

संवत् १९८५ का चातुर्मास पूज्य श्री की सेवा में अमृतसर में हुआ। पूज्य श्री का स्वास्थ्य सुधर जाने पर आपने अमृतसर से विहार कर दिया। पर आप ऐसे गुरुभक्त थे कि जब भी पूज्य श्री की किंचित्मात्र अस्वस्थता का समाचार सुनते तो सैकड़ों मीलों से दौड़ कर अमृतसर आ पहुँचते। अमृसर से मजीठा, नारोवाल, पसरूर, स्यालकोट तथा जम्मू तक विहार कर आप वापिस स्यालकोट के मार्ग से गुजरांवाला जा विराजे।

१९८६ का चातुर्मास गुजरां वाला शहर में हुआ। यहाँ प्रतिदिन दो ढाई सौ दर्शनार्थी लोगों की भीड़ बनी रहती थी। गुजरां वाला से आप लाहौर पहुंचे। यहाँ पर जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् सुब्रिन एम० ए० पी० एच० डी० (हेड आफ ओरिएन्टलबायोलोजी कलडिपार्टमेन्ट हेमबर्ग युनिवर्सिटी) ने पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर अपनी अनेक शंकाओं का समाधान किया। उक्त प्रोफेसर ने पूज्य श्री से मिलकर और शास्त्र विषयक सब शंकाओं का पूर्णत: समाधान पाकर परम प्रसन्नता प्रकट की। इस अवसर पर कपूरथला के वकील श्री पृथ्वीराज जी, नारोवाल के श्री ला० मुलखराज जी एल० एल० बी, स्यालकोट के श्री ला० जंगीलाल जी एम० ए० एल० एल बी सुशील कुमार जी वकील, रमेशचन्द जी वकील, पसरूर के बा० प्यारे लाल जी कपूरथला के डा० नरेन्द्रनाथ जी बीरबल सिंह जी एल० एल० बी श्री बाल कृष्ण जी वकील रायसाहब रघुवीरसिंह जी चन्द्रबल तथा उमराव सिंह जी वकील आदि महानुभाव भी उपस्थित रहते थे। लाहौर से आप अमृतसर, कपूरथला होते हुए होशियारपुर पधारे।

संवत १९८७ का चातुर्मास होशियारपुर में ही हुआ। वहाँ से फिर आप अमृतसर आ पहुंचे।



पंजाबकेसरी युवाचार्य
श्री काशीरामजी महाराज

मानो हि महतां धनम्

आदर-सत्कार ही महापुरुषों का धन होता है।

अ० भारतीय साधु-सम्मेलन का शिलान्यास

पत्री मार्गी तथा परम्परा मार्गी-विवाद का मधुर अन्त—

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज अन्यान्य शास्त्रों के साथ ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपने जैन ज्योतिगणना के अनुसार एक पञ्चाङ्ग प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था। स्वाभाविक रूप से इसकी तिथियों में तथा प्रचलित पञ्चाङ्गों को तिथियों में अन्तर पड़ जाता था। पञ्जाब सम्प्रदाय के बहुत से सन्तों ने तो पूज्यश्री के पंचांग या पत्री की तिथियों को मान्य कर लिया था। पर मुनि श्री लालचन्द जी महाराज, गणी श्री उदयचंद जी महाराज आदि अनेक मुनिराज पुरानी परम्परा के ही समर्थक बने रहे। इस प्रकार पंजाब श्रीसंघ पत्री-मार्गी और परम्परा-मार्गी इन दो दलों में विभक्त हो गया। दोनों दल संवत्सरी भिन्न दिन मनाते। इस प्रकार दोनों में उत्तरोत्तर मतभेद बढ़ता जा रहा था, जो श्रीसंघ के लिए महान् घातक था।

इस विवाद को मिटाने के लिए चैत्र संवत् १९८७ में अखिल

भारतीय श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन कान्फ्रेंस की ओर से भारत भर के प्रमुख श्रावकों के एक डेपुटेशन ने पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर इस विवाद के अन्त के लिए प्रार्थना की, और निवेदन किया कि अखिल भारतीय जैन सभा एक ही दिन संवत्सरी आदि विषयों का निर्णय करने के लिए एक अखिल भारतीय साधु सम्मेलन का आयोजन कर रही है। यह भी निवेदन किया कि दूसरी सब सम्प्रदायों ने समाज ऐक्य और हित के विचार से प्रेरित होकर कान्फ्रेंस की टीप को स्वीकार कर लिया है, एवं आप भी स्वीकार कर संघ को कृतार्थ करें।

इस पर पूज्यश्री ने युवाचार्यश्री से परामर्श कर अपनी स्वीकृति देते हुए फरमाया कि ऐसे स्थान पर जहाँ पंजाब के साधु भी सुगमता से पहुंच सकें। बृहत्-साधु सम्मेलन शीघ्र करने का प्रबन्ध किया जाय।

तदनुसार अजमेर में अखिल भारतीय बृहत् साधु-सम्मेलन की व्यवस्था की गई। और यह निश्चय किया गया कि अखिल भारतीय साधु-सम्मेलन से पूर्व प्रान्तीय साधु-सम्मेलन किये जाएँ, ताकि उनमें बृहत् साधु-सम्मेलन में भेजने के लिए प्रतिनिधियों तथा प्रस्तुत करने योग्य प्रस्तावों आदि के सम्बन्ध में भली-भांति विचार कर लिया जाय।

पंजाब साधु-सम्मेलन होशियारपुर—

उक्त निर्णय के अनुसार पंजाब प्रांत के साधु और आर्याओं का एक सम्मेलन होशियारपुर में करने का निश्चय किया गया। युवाचार्य श्री ने सं० १९८८ का चातुर्मास अमृतसर में व्यतीत कर प्रान्तीय साधु-सम्मेलन को सफल बनाने के लिए होशियारपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। इस सम्मेलन की सफलता के लिए आपने दिन रात एक कर दिया।

इस सम्मेलन में—

१. वादी मान-मर्दक गणी श्री उदयचन्द जी महाराज २. जैन धर्म दिवाकर उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज ३. व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज। ४. श्रीरामस्वरूप जी महाराज, ५. प्रवर्तिनी श्री आर्या पार्वती जी ६. श्री आर्या राजमती जी आदि पंजाब के सभी प्रमुख संत और सतियाँ उपस्थित हुईं। इसमें अन्यान्य विचारणीय विषयों के साथ बृहत साधु-सम्मेलन में अजमेर जाने वाले प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी किया गया।

बृहत् साधु-सम्मेलन के लिए अजमेर की ओर प्रस्थान—

अखिल भारतीय साधु-सम्मेलन को सफल बनाने के लिए युवाचार्य श्री ने अपनी मुनि-मंडली के साथ होशियारपुर से अजमेर की ओर प्रस्थान कर दिया। ग्रामानुग्राम और नगरानु नगर विचरते हुए आप दिल्ली आ पहुचे।

सं० १९८९ का चातुर्मास दिल्ली में बिताकर आप फिर आगे बढ़ गये। इस समम भारत भर के जैन जगत् में आप ही के नाम तथा कार्यों की चर्चा थी। उदाहरण के लिए मगसर शुद सप्तमी संवत् १९८९ के "जैनप्रकाश" की निम्न पंक्तियाँ पठनीय हैं—

श्री साधु सम्मेलन रूप कल्पवृक्ष का बीज, पंजाब के प्रतापी पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की कृपा से बोया गया और सब से पहले अपनी ८५ वर्ष की अवस्था होने पर भी अपने मुख्य शिष्य युवराज श्री काशीराम जी महाराज को अमृत शहर सरीखे दूरस्थ नगर से दिल्ली चौमासा करवाया। और युवराज श्री अजमेर तरफ बिहार कर रहे हैं यह समाचार सभी हर्ष से सुनेंगे।

सब से पहले कार्य का श्रीगणेश करने वाले युवराज श्री

काशीराम जी महाराज को मुबारकबादी देने तथा सफल विहार की भावना प्रकट करने के लिए समिति के सभ्य दिल्ली सदर में पहुंच गये थे ।'

उक्त सूचना से स्पष्ट सिद्ध होता है कि अजमेर बृहत् साधु-सम्मेलन का उपक्रम पूज्य श्री की प्रेरणा तथा युवराज श्री के अदम्य उत्साह तथा साहस से ही हुआ था । इस कठिन कार्य को सफल बनाने के लिए आप ही सर्वप्रथम आगे बढ़े थे । इस प्रकार आप देहली से चलकर गुड़गाँवा, रेवाड़ी होते हुए अलवर पधारे। अलवर से बाँदीकुई होते हुए जयपुर पहुँचे । वहाँ से किशनगढ़ परसते हुए आप अजमेर आ विराजे । युवाचार्य श्री जिस-जिस भी ग्राम या नगर में गये, वहीं की जनता ने आप का दिल खोलकर स्वागत किया । आप के मार्ग में पलकों के पाँवड़े बिछा दिये । आप प्रत्येक ग्राम और नगर की जनता को अपने दर्शनों एवं मधुर उपदेशों के द्वारा अपूर्व परितृप्ति प्रदान करते जाते थे ।

पंजाब में —

(१) गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज।

(२) उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज ।

(३) युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ।

(४) श्री मदनलाल जी महाराज ।

(५) श्री रामजीलाल जी महाराज ।

इन पांच प्रतिनिधियों तथा २० अन्य साथी सन्तों के साथ जब आपने अजमेर के प्राङ्गण को अपने पदार्पण से पावन किया तो वह ऐतिहासिक नगरी हर्षोल्लास से विकसित हो उठी। स्थानीय नर-नारियों ने तथा कान्फ्रेंस के प्रतिनिधि व कार्यकर्त्ताओं ने बड़े भारी समारोह के साथ आपका अभूतपूर्व स्वागत किया ।

आपके अजमेर पहुचने की सूचना समाचार पत्रों में प्रकाशित होते ही देश भर के जैन समाज में हर्षोत्साह की लहर दौड़ गई। पंजाब जैसे दूरस्थ प्रान्त से युवाचार्य काशीराम जी महाराज, वादी मानमर्दक गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज आदि २५ सन्त पैदल चल कर अजमेर पहुंच गये हैं, यह जानकर भारत भर के मुनि गणों के पग द्रुत गति से अजमेर की ओर बढ़ने लगे। सभी के हृदयों में सम्मेलन की सफलता के लिये अपूर्व उत्साह भरा हुआ था।

अजमेर में पहुँचते ही आपने अपने व्याख्यानों से स्थानीय श्रीसंघ में और विशेषत: नवयुवकों में अपूर्व जागृति के भाव भर दिए। इस पंजाबी गौरवर्ण विशालकाय परम सुन्दर तेजस्वी प्रौढ़ मुनिराज के जो एक बार दर्शन कर लेता, वही मन, वचन, कर्म से उन्हीं का हो जाता। अजमेर पहुँच कर युवाचार्य श्री ने अपने चिर-अभिलाषित स्वप्नों को साकार रूप में सफल होते देख परम संतोष प्रकट किया। वे उसकी सफलता के लिये कटिबद्ध हो कर चौबीसों घण्टे उसी के कार्य में जुट गये। अब तक अजमेर में अन्य भी अनेक सन्त पहुंच चुके थे या पहुंच रहे थे। पर राजस्थान व गुजरात आदि प्रान्तों के प्राय: सभी साधु आचार्य तथा प्रतिनिधि आदि ब्यावर में रुके हुए थे।

बृहत् साधु-सम्मेलन अजमेर

'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'—

वल्लभीपुर बृहत् साधु सम्मेलन के डेढ़ हजार वर्ष पश्चात् अजमेर की अजरामरपुरी में भारत भर के स्थानक वासी जैन साधुओं का बृहत् सम्मेलन चैत्र बदी दशमी संवत् १९८९ को हो रहा है। भारत भर के श्री संघ की दृष्टि अजमेर के इस सम्मेलन की सफलता की ओर लगी हुई है। साधु और श्रावक वर्ग के पारस्परिक भेद भाव को मिटाने का यहां अभूतपूर्व प्रयत्न होने वाला है। चारों ओर उत्साह की लहर छाई हुई है।

पर इस उत्साह और आनन्द के नीचे सभी के हृदयों में आशा-निराशा और आशंका के भाव भर रहे है, विभिन्न २६ सम्प्रदायों के पूज्य वर आचार्य तथा उनके शिष्यगण जो आज तक कभी एक-दूसरे के समक्ष नहीं आये, वे सब एक मंच पर एकत्रित हो जायेंगे या नहीं यह बात भविष्य के गर्भ में छिपी हुई है। पूज्य श्री जवाहर लाल जी महाराज व वयोवृद्ध पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज की सम्प्रदायों के पारस्परिक मत भेदों को मिटाने के लिए श्री मिश्रीलाल जी महाराज ने सत्याग्रह करते हुए अनशन व्रत ले रक्खा है। और इसी कारण दो सौ के लग-

भग साधु-साध्वियों का गण अजमेर के पास पहुंच कर भी अजमेर नगरी में पदार्पण न कर ब्यावर ही में रुका हुआ है। जो कार्य जितने बड़े और जितने शुभ कार्य होते हैं, उनमें विघ्न भी उतने ही बड़े आते हैं। शुभ कार्य सदा रचनात्मक होते हैं और रचनात्मक कार्यों में सा रुकावटों व अनेक विघ्न-बाधाओं का आना स्वाभाविक है। इसके विपरीत अशुभ कार्य ध्वंसात्मक होते हैं। ऐसे कार्यों में भला क्या विघ्न आयेंगे। भवन के निर्माण में सौ बाधाएं आ सकती हैं पर गिराने में लगता ही क्या है।

तदनुसार बृहत् साधु-सम्मेलन सरीखे अत्यन्त भव्य और शुभ कार्य में अनेक रुकावटों का उपस्थित होना अनिवार्य था। पर उन पर विजय प्राप्त करना ही तो धीर-वीरों का लक्षण है। साधु सम्मेलन के समारम्भ से पूर्व ही यह जो अड़चन उपस्थित हो गई है, इसे किस प्रकार दूर किया जाय। ब्यावर में एकत्रित मुनिराजों को किस प्रकार समझा-बुझा कर सम्मेलन में उपस्थित होने के लिए प्रस्तुत किया जाय, यही विचार सबके मन मस्तिष्क और हृदयों को आन्दोलित कर रहा है। कौन ऐसा वीर-पुङ्गव प्रभावशाली मुनि-मृगेन्द्र संत-प्रवर है, जिसके प्रेम औदार्य और तेज से समग्र-मुनि मंडल अपने पुराने भेद-भावों को छोड़ कर सम्मेलन में उपस्थित हो जाय।

इस प्रकार विचार करते हुए सबका ध्यान पंजाब के इस प्रौढ सिंह युवाचार्य की ओर जाता है। और वह भी यह सोच कर कि इस सम्मेलन का आयोजन गुरुवर पूज्य श्री १००८ सोहनलाल जी महाराज के शुभ संकल्पों से हुआ है। इसकी सफलता और असफलता का समग्र दायित्व हमारे ही दृढ कन्धों पर है—

'कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि'

ऐसी भीष्म-प्रतिज्ञा कर ब्यावर की ओर चल पड़ते हैं। युवाचार्य श्री के ब्यावर की ओर प्रस्थान करते ही समस्त श्रीसंघ को सम्मेलन की सफलता का पूर्ण विश्वास हो जाता है। और हम देखते हैं कि श्रीसंघ का वह विश्वास निराशा में परिवर्तित नहीं हुआ। पंजाब के संत-प्रवर के ब्यावर पहुंचते ही सब मुनिराजों ने सहर्ष उनके साथ सम्मेलन में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।

मधुर मिलन—

अजमेर से ब्यावर की ओर विहार करने पर सर्वप्रथम जेठाना या जेष्ठाना नामक ग्राम में मुनिराजों का प्रथम पवित्र मिलन हुआ। यहीं पर युवाचार्य श्री का पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज से भेंट हुई। यह भेंट क्या थी, सफलता और विजय का प्रथम प्रत्यक्ष प्रतीक थी। आज इस 'जय' के कारण ही जेष्ठाना का 'जय स्थाना' यह नाम सार्थक हो गया।

पूज्य श्री जवाहर लाल जी महाराज के साथ आगे बढ़ने पर 'खर्वा' ग्राम में शतावधानी पं० रत्न श्री रत्नचन्द जी महाराज से मिलन हुआ। यहाँ से आप तीनों छोटी ब्यावर पधारे। वहां पर कवि श्री नानचन्द जी महाराज, श्री पूज्य अमोलकऋषि जी महाराज, प्रसिद्ध वक्ता चौथमल जी महाराज, श्री माणक चन्द जी महाराज, श्री मणिलाल जी महाराज, आदि मुख्य मुनिराजों को बुला कर समझाया। ज्योंहि एक-दूसरे के नेत्रों की ज्योति परस्पर टकराई कि उसके प्रकाश में तत्काल सब सन्देह निराशा और दुविधा के बादल फट कर हवा हो गये। पवित्र प्रेमभरी दृष्टियों के चार होते ही संशय और मतभेद का कुहासा प्रेमाश्रु नीर के रूप में बह गया। सबके हृदय परस्पर सम्मान की भव्य भावनाओं से भर आये, सब ने समवेत स्वर से आश्वासन दिलाया

कि जैसा आप कहेंगे वैसा ही हम करेंगे, किन्तु आप एक बार ब्यावर अवश्य पधारें।

युवाचार्य श्री ब्यावर में—

लगभग आठ हजार नर-नारियों और श्रावक-श्राविकाओं तथा प्रमुख मुनिराजों ने मिलकर बड़े भव्य समारोह के साथ प्रातःकाल के पवित्र मुहूर्त में युवाचार्य श्री का ब्यावर में पदार्पण करवाया। नगर के चौड़े और प्रशस्त राजमार्ग हजारों दर्शनार्थियों की भीड़ से पटे पड़े थे। अजमेर से पूर्व ब्यावर ही में लगभग दो सौ साधुओं का यह अभूतपूर्व अनुपम सम्मेलन अनायास ही सम्पन्न हो गया। सचमुच ब्यावर नगरी अहोभाग्य शालिनी है, जो इतने मुनिराजों की पावन चरण रज से कृतार्थ हो गई।

दूसरे दिन सब मुखिया मुनिवृन्द खरवा ग्राम में पधारे। और पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज व पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के सम्प्रदायों के पारस्परिक मतभेदों को शान्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ करने लगे। विवाद का अन्त करने के लिए एक समिति का निर्माण किया गया और दोनों पक्षों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को सर पंच के पद पर प्रतिष्ठित किया। वहाँ से सब मुनिराज अजमेर पधारे।

पूज्य श्री १०८ सोहनलाल जी महाराज को सम्मेलन के सभापतित्व का सम्मान—

साधु-सम्मेलन मे सर्वप्रथम विचारणीय यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि साधु-सम्मेलन के सभापति का सर्वाधिक सम्माननीय पद किसे प्रदान किया जाय। इस सम्मेलन में भारत भर के छब्बीस संप्रदायों के सभी प्रमुख आचार्य तथा प्रतिनिधि गण

एकत्रित हुए थे। सभी एक-से-एक बढ़कर विद्वान् विद्यावयोवृद्ध और पूज्य थे। वास्तव में इस जटिल श्न को निबटाना बड़ा ही कठिन था। पर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज का अखंड प्रताप और तेज तो सम्मेलन के अणु-अणु में व्याप्त हो रहा था। अतः सहसा सर्व सम्मति से यह स्वर सुनाई दिया कि पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज को ही सभापति के सिंहासन पर सुशोभित किया जाय। यद्यपि अस्वस्थता के कारण आप भौतिक देह से अजमेर न पधार कर अमृतसर में ही विराज रहे थे, पर आपकी भव्य आत्मा के दिव्य प्रकाश से तो सम्मेलन का प्रत्येक प्राणी अनुपम प्रेरणा प्राप्त कर रहा था। तात्कालिक कार्य संचालन के लिए कार्यवाहक अध्यक्ष सभापति पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के प्रमुख प्रतिनिधि विद्यावयोवृद्ध वादी मान-मर्दक गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज को ही बनाया गया। इस प्रकार भारत भर के मुनिराजों ने पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के प्रति अपनी असीम श्रद्धाभक्ति नतमस्तक हो प्रकट कर दी। वास्तव में अपने पूज्य गुरुदेव के इस अनुपम यशोविस्तार के कार्य में युवाचार्य श्री का आरम्भ से अन्त तक हाथ बना रहा था, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

यह निश्चित है कि यह सम्मेलन पूज्य श्री के शुभ संकल्प तथा युवाचार्य श्री के सदुत्साह तथा गणी जी की कार्य कुशलता के कारण ही सफलता पूर्वक सम्पन्न हो पाया था।

इस सम्मेलन में हजारों मील दूर से सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास धूप, वर्षा आदि यात्रा के नानाविध कष्टों को सहकर पंजाब बिहार, गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड़ और मालवा आदि भारत के अनेक प्रान्तों एवं दूर-दूर के नगर-नगरान्तरों से हजारों मीलों की पैदल लम्बी यात्रा कर ढ़ाईसौ के लग-भग मुनिराज

पधारे थे। वास्तव में यह एक अपने ढंग का असाधारण सम्मेलन था।

इससे पूर्व इतिहास में ऐसे केवल तीन ही सम्मेलनों का उल्लेख मिलता है। प्रथम सम्मेलन भगवान् महावीर स्वामी के कुछ समय पश्चात् पाटलीपुत्र या पटना नगर में हुआ था। द्वितीय सम्मेलन उसके तीनसौ वर्ष पश्चात् मथुरा नगरी में सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात् वीर संवत् ९८० विक्रम की सातवीं शताब्दी में काठियावाड़ की राजधानी वल्लभीपुर नामक नगरी में देवर्द्धि गणी क्षमा श्रमण के नेतृत्व में एक ऐसा ही बड़ा सम्मेलन सम्पन्न हुआ था। उसके चौदहसौ वर्ष पश्चात अजमेर नगरी को ऐसे अनुपम साधु सम्मेलन के स्वागत-सत्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पुनीत-चरित उदारचेता मुनिराजों की अखिल कलिकल्मषहारिणी निर्मल पद-रज के पवित्र स्पर्श से पावनतम होकर सचमुच यह नगरी अजरामरपुरी बन गई।

छब्बीस सम्प्रदायों के २६ प्रमुख प्रतिनिधि गण जब अपने दो सौ के लग-भग अन्य साथी संतों के साथ सभा-मण्डप में बैठकर प्रवचन करते तो ऐसा सात्विक समा बन्ध जाता, जिसका वर्णन साधारण लेखकों की जड़ लेखनियों की तो बात ही क्या साक्षात् सरस्वती भी अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा से नहीं कर सकती।

देश के कोने-कोने से इन मुनिराजों के दर्शनार्थ आये हुए एक लाख के लगभग श्रावक-श्राविकाओं की रेल-पेल से अजमेर नगर में ऐसी चहल-पहल हुई कि प्रत्येक गली, बाजार, घर-बार आनन्दोल्लास से चहक उठा।

साधु सम्मेलन के साथ अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन कान्फ्रेंस का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो रहा था।

'पंजाब केसरी' पदवी की प्राप्ति—

इस साधु सम्मेलन में युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज के दिव्य व्यक्तित्व की सर्वत्र एक गहरी छाप दिखाई दे रही थी। आपका उन्नत प्रशस्त तेजस्वी ललाट अपनी नैसर्गिक कान्ति से सम्राटों के मणि-मण्डित मुकुट के समान जग-मगाता रहता था। आपकी मन्द गम्भीर मधुर ध्वनि के कानों में पड़ते ही सब साधु-साध्वियों के तथा श्रावक-श्राविकाओं के कान चौकन्ने हो जाते थे। जब आप सम्मेलन के खुले अधि-वेशन में प्रवचन प्रारम्भ करते तो ऐसा प्रतीत होता मानो धर्म स्वयं इस युवक केसरी के उन्मुक्त गौर-गात्र के रूप में श्रीसंघ को शासनादेश देने के लिए अवतीर्ण हो गया है। आपके एक-एक वाक्य, शब्द और अक्षर का समस्त श्रोतागणों के हृदयों पर विद्युत धारा की भाँति एक अनुपम प्रभाव पड़ रहा था। आपके प्रवचन का प्रत्येक शब्द उपस्थित सभ्य वृन्द के मानस-पटल पर अंकित होता जाता था। और ऐसा क्यों न होता, आप कोई किसी की प्रेरणा से सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुए थे, प्रत्युत आपकी मनोभावना का मूर्त रूप ही यह सम्मेलन था। आपके शब्दों में आपकी हार्दिक प्रबल प्रेरणा ही साकार रूप में अभिव्यक्त होती थी। आपकी इस अप्रतिहत कार्य-शक्ति और अनुपम तपःपूत तेजस्विता से प्रभावित होकर अखिल भार-तीय साधु-सम्मेलन ने आपके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए 'पंजाब केसरी' की महान उपाधि से आपको विभू-षित किया। वास्तव में इस उपाधि के रूप में भारत भर के श्री संघ

के हार्दिक भाव ही प्रकट हुए थे। आपका साक्षात्कार होते ही मनुष्य के हृदय में सर्वप्रथम यही भाव आता था कि यह संत वास्तव में पंजाब का सिंह है, जो विघ्नों की पर्वत-पंक्तियों से भी छाती ठोक कर टक्कर लेने के लिये सदा प्रस्तुत रहता है। दृढ़ता और तेजस्विता के साथ आपके मुखमंडल पर अहर्निश खिली रहने वाली मधुर मन्द मुस्कान की कान्ति तो सुवर्ण में सुगन्ध और मृदुलता का काम कर रही थी।

इस अखिल भारतीय बृहत् साधु-सम्मेलन ने पूज्य श्री १०८ परम प्रतापी सोहनलाल जी महाराज को भारत भर के मुनिराजों के 'प्रधानाचार्य' की पदवी से विभूषित किया।

सम्मेलन के अनन्तर—

यह सम्मेलन अनेक दृष्टियों से सर्वथा सफल रहा। साधुओं में पारस्परिक मेल-मिलाप बना रहे, इस सम्बन्ध में स्तुत्य प्रयत्न किया गया, तथा कई प्रस्ताव पास हुए। साधुओं की सर्व-सम्मत समाचारी भी बनाई गई। गणेशलाल जी, सरदारमल जी आदि स्थानीय उत्साही युवक कार्यकर्ताओं ने भी सम्मेलन को सफल बनाने के लिए कोई कसर उठा नहीं रक्खी।

सम्मेलन समाप्ति के पश्चात् श्री पंजाब केसरी ने मसूदा नामक ठिकाने में विहार किया। वहाँ आपके दिव्य प्रभाव से ८४ ग्रामों का झगड़ा मिट गया। इस समय आप आस-पास के अन्यान्य ग्रामों में विचर कर धर्म का उद्योत करते रहे। अजमेर के श्रावकों के अतिशय प्रयत्न-बल से श्री पञ्जाब केसरी ने अजमेर में चातुर्मास की विनति स्वीकार करली।

संवत् १९९० का चातुर्मास अजमेर में ही हुआ। पञ्जाब-केसरी को निरन्तर चार मास तक अपने मध्य पाकर तथा उनके

उपदेशामृत का पान कर यह नगरी कृत-कृत्य हो गई। अजमेर से विहार कर आप जयपुर पधारे। अब अजमेर का साधु-सम्मेलन स्मरणीय घटना का रूप धारण करने लग पड़ा। मार्ग में किशनगढ़ ही में युवाचार्य श्री अस्वस्थ हो गये। इस वेदना-काल में गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज व श्री रघुवरदयाल जी महाराज ने बड़ी सेवा की। पञ्जाबकेसरी श्री काशीराम जी महाराज के प्रति गणी जी महाराज का बड़ा प्रेम था। जयपुर में आपने तथा श्री गणी जी ने शास्त्रोद्धार के कार्य की प्रेरणा की, और एक योजना बनाई। इस कार्य में पंडितरत्न शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी महाराज व पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज व्याख्यान वाचस्पति भी सम्मिलित थे। उक्त योजना में इन सब की सम्मति और अनुमति प्राप्त थी।

वहाँ से आप भरतपुर होते हुए आगरा पधारे।

संवत् १९९१ का चातुर्मास आगरे में हुआ। यहाँ पर मुनि श्री कस्तूरचन्द्र जी की कृपा से ओसवाल वंशी श्री जौहरीलाल जी महाराज, रवीन्द्र मुनि जी तथा ब्राह्मण कुलोत्पन्न श्री अमृत मुनि जी इन तीनों ने वैराग्यवृत्ति स्वीकार की। आगरा में लोहामंडी के श्रावकों ने बड़ा भक्तिभाव प्रदर्शित किया।

चातुर्मास के पश्चात् मथुरा नगरी की ओर विहार हुआ। वहाँ से गुड़गाँवा होते हुए महरौली पधारे। यहाँ पर पुनः शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी महाराज से मिलन हुआ। यहाँ से दोनों संत साथ-साथ अपनी शिष्य मंडली सहित दिल्ली

पधारे। दिल्ली में आपके अनेक सार्वजनिक व्याख्यान हुए। और शतावधानी जी ने अपने अवधान प्रयोग भी बताये।

देहली से विहार कर रोहतक, जीन्द, सनाम, और संगरूर होते हुए आप लुधियाना पधारे। यहाँ पर भी आपके कई प्रभावशाली व्याख्यान हुए। लुधियाना से ग्रामानुग्राम विचरते हुए जंडियाला पहुंचे। यहाँ पर राय साहब लाला टेकचन्द जी, लाला गंडामल जी, लाला गोकुलचन्द जी, आदि श्रीसंघ के सदस्यों ने आपका बड़ा भारी स्वागत किया।

अमृतसर में चतुर्मूर्तियों का समागम

भारत भर के सभी साधु-साध्वियों तथा पूज्य आचार्यों के समान अमोलक ऋषि जी महाराज के हृदय में भी पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा थी। पूज्य श्री के दर्शनों के लिए ही आप सुदूर दक्षिण तथा मालवा प्रान्त से देहली होते हुए उत्तर में पञ्जाब की ओर पधार रहे थे। आप ही की प्रबल प्रेरणा से बृहद् साधु-सम्मेलन के सभापति का पद पूज्य श्री को प्राप्त हुआ था। पूज्य श्री के दर्शनों की लालसा एवं विचार-विनिमय की प्रबल भावना से प्रेरित होकर आप भी अमृतसर के समीप जण्डियाला ग्राम की ओर आ रहे थे। पर मार्ग में किसी ने उन्हें यह भ्रम डाल दिया था कि पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज बड़े विद्वान् हैं और वे शास्त्र-विषयक अनेक गम्भीर प्रश्न पूछकर दूसरे मुनिराजों को प्रभावित कर देते हैं। उस पर पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी ने अमृतसर परसने का विचार स्थगित कर दिया था।

यह समाचार जब पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने सुने तो उन्होंने पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज से मिलने की अपनी उत्कट अभिलाषा व्यक्त की। इस पर अमृतसर के अग्रणी लाला नत्थूशाह जी, लाला रतनचन्द जी, लाला

लालूमल जी, लाला भगवानदास जी, लाला मुन्नीलाल जी, लाला मोतीलाल जी आदि २५ श्रावक पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी की सेवा में लुधियाना पहुंच गए थे। उन्होंने बड़ी आग्रह भरी विनति की। अतः पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी प्रार्थना स्वीकार करते हुए अमृतसर की ओर विहार कर जंडियाले पहुंच गए थे।

इस प्रकार जंडियाला में तीन महान् संतों का फिर से मिलन हुआ। यहां से सभी एक साथ विहार कर अमृतसर की ओर बढ़े। अमृतसर-वासियों ने बड़ी धूम-धाम से इन तीनों महात्माओं का अपने नगर में पदार्पण कराया। हजारों नर-नारियों ने आपके स्वागत में भाग लिया।

नगरी में प्रथम बार आये हुए पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी जैसे महान् विद्वान् तथा पूज्य शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी महाराज जैसे प्रकांड पंडित व आशुकवि के साथ-साथ लगभग चार वर्ष के पश्चात् बृहत् साधु सम्मेलन की सफलता का सेहरा बांधे हुए, 'पञ्जाब केसरी' की अभिनव उपाधि से विभूषित युवाचार्य श्री को अपने मध्य पाकर स्थानीय श्रीसंघ परम आल्हादित हो उठा। पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज तो वहां पहले ही से विराज रहे थे। इस प्रकार अपने समय की इन चारों महान् विभूतियों का सम्मेलन जब जमादार की हवेली में प्रारम्भ हुआ, तो सैंकड़ों, हजारों श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों का समूह इस अपूर्व नयनाभिराम दृश्य को देखकर आनन्द विभोर हो उठा। जब चारों महापुरुषों ने एक ही पाट पर विराजमान होकर क्रम-क्रम से अपना प्रवचन प्रारम्भ किया तो श्रोतागण मन्त्र मुग्ध से हो गये।

सर्व प्रथम पूज्य श्री अमोलक ऋषि महाराज ने कहा कि

पूज्य श्री के दर्शनों से मुझे जैसा दिव्य आनन्द प्राप्त हुआ है, वह वास्तव में अवर्णनीय है। अमृतसर वासी भाईयों ने मेरा जैसा हार्दिक स्वागत सत्कार किया वह अभूतपूर्व है। वास्तव में आप लोगों के मध्य अपने आपको पाकर मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। मार्ग में कुछ लोगों ने जो यह भ्रम डाल दिया था कि पूज्य श्री प्रश्न पूछकर दूसरों को हतप्रभ कर देते हैं, वह भ्रम तो यहां आने पर दूर हो ही गया. साथ ही भारत की इस महान् विभूति के साक्षात्कार से एक अनिर्वचनीय आत्मिक दिव्यानन्द की उपलब्धि भी हुई है।

पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी जब तक विराजे कई प्रश्नों के उत्तरों की धारणा करते रहे। यूं तो पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी ३२ सूत्रों का हिन्दी अनुवाद और कई ग्रन्थों का निर्माण कर चुके थे, वे अपने समय के महान् मुनिराज थे। इसी प्रकार भारत रत्न रत्नचन्द्र जी महाराज ने भी अर्धमाधी कोश, प्राकृत व्याकरण-कौमुदी आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। फिर भी गुरू गम धारणाएँ पूज्य श्री के साथ पारस्परिक वार्ता में धारण कीं।

पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज से अमृतसर में चातुर्मास करने की आग्रह भरी विनति की गई, पर आप को मालवा की ओर जाना आवश्यक था अतः आप अमृतसर में कुछ दिन विराज कर वहां से बिहार कर दिल्ली आ पहुँचे।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज का स्वर्गवास

इस समय अमृतसर की जनता ने शातवधानी मुनि रत्नचन्द्र जी महाराज तथा युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज की सेवा में भी चातुर्मास की आग्रहपूर्ण विनती की। अतएव आप दोनों ने अपना संवत् १६६२ का चातुर्मास पूज्य श्री के चरणों में अमृतसर में करना स्वीकार करके वहां से विहार कर दिया।

शतावधानी महाराज को प्रधानाचार्य महाराज से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। वह उनके संरक्षण में एक ऐसी शिक्षण संस्था की स्थापना करना चाहते थे, जिस में साधुओं को सभी विषयों की शिक्षा देकर उन्हें उच्चकोटि का विद्वान् बनाया जावे। इस सम्बन्ध में अमृतसर के भाइयों ने उनको पर्याप्त सहयोग का आश्वासन भी दिया था।

अमृतसर की विनति को स्वीकार करने के पश्चात् शतावधानी जी तथा युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज वहां से विहार कर पसरूर तथा जम्मू में धर्म प्रचार करते हुए स्यालकोट आए। स्यालकोट में आपके कारण बड़ी भारी धर्म प्रभावना हुई।

इधर संवत १६६२ विक्रमी में पूज्यश्री सोहनलाल जी महाराज

का स्वास्थ्य अमृतसर में कुछ अधिक खराब हो गया। इस से अमृतसर के श्रावक घबरा गए और उन्होंने युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को पूज्य महाराज के चरणों में अविलम्ब पधारने के लिए अमृतसर से स्यालकोट टेलीफौन किया।

उधर आपको स्यालकोट में ही पूज्य महाराज का यह संदेश भी मिल गया था कि 'अभी कोई खतरा नहीं। आने में जल्दी न करें।

अतः आप वहां कुछ दिन और धर्म प्रचार करके लाहौर पधारे। स्यालकोट से लाहौर आने तक आपको कई दिन लग गये।

किन्तु जब आप दोनों लाहौर पधारे तो पूज्य महाराज ने कहा कि—

"युवाचार्य जी तथा शतावधानी जी को अब बुलवा लिया जावे।"

तदनुसार आपको संदेश भेज दिया गया और युवाचार्य जी लाहौर से विहार करके जल्दी-जल्दी अमृतसर पहुँच गये।

पूज्य श्री का स्वर्गवास किस रोग से हुआ यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह पीछे बतलाया जा चुका है कि उनको वात रोग हो गया था, जिससे उनके हाथ-पैर कांपा करते थे। किन्तु यह रोग सांघातिक कभी नहीं हुआ करता।

वास्तव में पूज्य श्री के स्वर्गवास का तात्कालिक कारण कोई रोग न होकर उनकी आयु की समाप्ति ही थी आयु समाप्त होने पर सभी को शरीर छोड़ना पड़ता है और वही आपके साथ भी हुआ।

वास्तव में पूज्य श्री ने अपने स्वर्गवास के समय की भविष्य-वाणी तेरह मास पूर्व ही करदी थी। एक बार बात चीत के

प्रसंग में आपने अपने पोते शिष्य पंडित मुनि श्री शुक्लचंद जी महाराज से कहा कि—

"मेरा अनुमान है कि अभी मैं बारह मास तक नहीं मरूंगा।"

इस पर पण्डित शुक्लचन्द जी ने पूछा—"फिर तेरहवें मास में।"

इसका उत्तर देने से उन्होंने इन्कार कर दिया। तब पण्डित शुक्लचन्द जी ने फिर पूछा "तो चौदहवें महीने में।"

इस पर आपने उत्तर दिया कि "वहां तक काम नहीं चलेगा।"

इस प्रकार आपने पण्डित मुनि श्री शुक्लचन्द जी को अपने स्वर्गवास का समय बहुत कुछ बतला दिया था। किन्तु यह बतलाने के साथ ही आपने उनको यह भी ताकीद करदी थी कि "इस बात को किसी के सामने न खोला जावे, अन्यथा भक्त लोग भारी आफत मचा देंगे।"

आपके स्वर्गवास से तीन दिन पूर्व आपकी सेवा में निम्नलिखित मुनिराज थे—

१ युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज, २ मुनि ईश्वरदास जी महाराज, ३ मुनि हर्षचन्द जी महाराज, ४ मुनि माणिकचन्द जी महाराज तथा ५ तपस्वी मुनि सुदर्शनलाल जी महाराज।

अपने स्वर्गवास से तीन दिन पूर्व आषाढ़ शुक्ल तीज संवत १६६२ को आपने मुनि सुदर्शनलाल जी से कहा—

"तुमने मेरी बड़ी भारी सेवा की है। अभी तुम को तीन दिन का कष्ट और है। किन्तु यह बात किसी से कहना नहीं, क्योंकि इस को सुन कर सहस्रों व्यक्ति आ जावेंगे।"

इस प्रकार आपके तीन दिन भी निकल चले।

आषाढ़ शुक्ला पंचमी को आप ने रात्रि के साढ़े तीन बजे

के लगभग युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को उठाया और उनसे कहा कि "प्रतिक्रमण प्रारम्भ करो।"

तब युवाचार्य जी बोले "गुरुदेव ! अभी प्रतिक्रमण का समय नहीं हुआ।"

तब पूज्य महाराज बोले "नहीं अभी करो। आज समय ऐसा ही है।"

इस पर सब लोगों ने आप से प्रतिक्रमण की आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण आरम्भ कर दिया। प्रतिक्रमण लगभग पौने पांच बजे समाप्त हो गया।

प्रतिक्रमण के पश्चात् आप बोले—'मेरे वस्त्रों की प्रतिलेखना करके उन्हें भूमि पर बिछा दो।"

इस पर युवाचार्य जी बोले "गुरुदेव! अभी तो आपकी तबियत ठीक है।"

तब आपने उत्तर दिया—

"नहीं, अब समय आ गया।"

इस पर आपके वस्त्रों की प्रतिलेखना करके उन्हें भूमि पर बिछा दिया गया। इसके पश्चात् आपने प्रथम सबको जो कुछ शिक्षा देनी थी वह देकर फिर निन्दना तथा आलोचना की फिर आप युवाचार्य श्री काशीराम जी से बोले—

"मुझे संथारा करा दो। यह ध्यान रहे कि संथारा आरम्भ करने के बाद मुझसे कोई न बोले।"

यह कह कर आप भूमि पर मुँह ढक कर विधि सहित संथारा आरम्भ करके लेट गए। ऊपर के साधु आप को 'वृद्धालोचना' का पाठ सुनाते रहे और आप मुँह ढांक कर लेटे रहे और किसी से कुछ भी नहीं बोले और न लेशमात्र भी हिले डुले। इस प्रकार आप ५॥ बजे प्रातः काल से लेकर ८ बजे तक निश्चेष्ट तथा निःशब्द लेटे रहे।

इस प्रकार आपका आषाढ़ शुक्ला ६ संवत् १६६२ को प्रातः आठ बजे अमृतसर में स्वर्गवास हुआ।

पूज्य श्री के शव को विमान के अन्दर लेटाया गया था। उनका मुख खुला था और उस पर मुख-वस्त्रिका बंधी हुई थी। उनके ऊपर अनेक दुशाले पड़े हुए थे। शव यात्रा के मार्ग में स्थान स्थान पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने प्याऊ आदि लगा रखी थीं। कहीं ठण्डे जल का, कहीं शर्बत का तथा अनेक स्थानों पर लस्सी पिलाने का प्रबन्ध था। पान इलायची की खातिर को तो शव यात्रा वालों को संभालना कठिन हो रहा था। जुलूस ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता था, पूज्य महाराज के शव पर अधिकाधिक दुशाले पड़ते जाते थे। स्थान स्थान पर केवड़ा तथा गुलाब की वर्षा की जा रही थी। कटड़ा अहलूवालिया में तो कई अजैनों ने भी उन पर दुशाले डाले। शव यात्रा के जुलूस में लगभग एक लाख की भीड़ थी। इस समय अमृसतर के सभी मुख्य मुख्य बाजार बन्द थे। आप के ऊपर लगभग १७६ दुशाले डाले गए।

शवयात्रा का जुलूस लगभग ५॥ बजे शाम को स्मशान भूमि में पहुँचा। वहां श्वेत तथा लाल चन्दन की एक अद्भुत चिता तैयार की गई।

चिता में आग दे दी गई और वह भव्य मूर्ति देखते ही देखते अदृश्य हो गई।

इस प्रकार अमृतसर का वह सौभाग्यसूर्य श्रीसंघ को तीस वर्ष तक अपनी ज्योतिर्मय किरणों से आप्लावित करके नियति के गर्भ में विलीन होकर अस्त हो गया। पंजाब का वह उद्धार-कर्ता उस को लगभग साठ वर्ष तक उपदेशामृत का पान कराकर

पपीहे के समान स्वाति बूंद के लिये तरसता हुआ छोड़कर स्वर्ग सिधार गया।

आपका जन्म संवत् १६०६ में तथा स्वर्गवास संवत् १६६२ में हुआ। इस प्रकार आपने कुल ८६ वर्ष की आयु पाई। आपने २७ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य और ५६ साल तक मुनिव्रत का पालन किया। इस बीच में २२ वर्ष तक तो आपने लगातार एकान्तर किये। आप जन्म भर ब्रह्मचारी रहे।

वास्तव में इस पंचम काल में आपके जैसा तप करना अत्यन्त कठिन है। आपने जिस धैर्य तथा साहस के साथ दीक्षा लेकर संयम का पालन किया वह अनुकरणीय तथा स्मरणीय है। प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के दिव्य जीवन का विस्तृत वर्णन 'प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी' नामक उनके जीवन-चरित में है। जिज्ञासु जन उस ग्रन्थ का अवलोकन करें। आपकी फैलाई हुई ज्ञान ज्योति समस्त देश में अभी तक भी अपना प्रकाश फैला रही है।

यह आपकी विशेषता थी कि आप मनुष्य के अन्तरात्मा को पहचानते थे। अपने उसी ज्ञान के बल से आपने यह देख लिया कि आपके द्वारा जलाई हुई ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित रखने का कार्य केवल युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ही कर सकेंगे। इसलिये आपने एक सार्वजनिक पदवी दान महोत्सव में उनको युवाचार्य की पदवी देकर यह घोषणा कर दी थी कि उनके बाद आचार्य पद श्री काशीराम जी महाराज को दिया जाएगा।

अमृतसर से विदाई

संवत् १९९२ का वर्ष अमृतसर श्रीसंघ के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा। इस वर्ष अमृतसर के श्रीसंघ ने अभूतपूर्व सुख-दुःखमयी अनेक घटनाएं देखीं। जिस नगरी ने कुछ दिनों पूर्व प्रधानाचार्य पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज, पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज, युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज तथा शतावधानी जी महाराज के दर्शनों एवं उपदेशामृत के पान से देव-दुर्लभ दिव्यानंद प्राप्त किया था, उसी को कुछ ही मास पश्चात् पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के दारुण वियोग का असह्य शोक सहन करना पड़ा। इसके कुछ समय पश्चात् चातुर्मास समाप्त होते ही 'पंजाब केसरी' ने भी वहाँ से विहार कर दिया।

युवाचार्य श्री से इस बार जो अमृतसर बिछुड़ा तो फिर सदा के लिए ही बिछुड़ गया। यद्यपि अमृतसर छोड़ने के पश्चात् पंजाब-केसरी श्री काशीराम जी महाराज ने अमृतसर से लेकर बम्बई तक के हजारों ग्राम-नगरों और पुर-पट्टनों के कोटि-कोटि नर नारियों को अपने भव्य दर्शनों एवं मधुर वचनामृतों से आप्लावित कर कृतार्थ किया था। पर अमृतसर के भाग्य में पूज्य आचार्य श्री के साथ युवाचार्य श्री के दर्शनों से भी वंचित होना ही लिखा था। इस बार अमृतसर छोड़ने के पश्चात् आप फिर वहां प्रचार कर अमृतसरवासियों को कृतकृत्य न कर सके। उस समय कौन जानता था कि युवाचार्य श्री आज जो यहाँ से विदा हो रहे हैं, वे निरन्तर दस वर्ष तक देश के कोने-कोने को धर्म का संदेश देते हुए भी फिर इस नगरी में पदार्पण न कर सकेंगे।

संवत् १९९२ का चातुर्मास अमृतसर में बड़े आनन्द और उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। धर्म-ध्यान और प्रवचन आदि का अपूर्व समागम रहा। श्री पंडित रत्नचन्द जी शतावधानी के वहीं विराजने के कारण यह चातुर्मास और भी अधिक आकर्षक हो गया था। अमृतसर श्रीसंघ इन दोनों संत प्रवरों का अपने मध्य पाकर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के असह्य वियोग-शोक को धीरे-धीरे सहन करने में समर्थ हो गया था। पर साधु भला सदा एक स्थान पर कहाँ टिके रह सकते हैं, उन्हें तो संसारी लोगों के शोक-मोह को पार कर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर विहार करते ही रहना पड़ता है। तदनुसार चातुर्मास समाप्त होते ही युवाचार्य श्री एवं शतावधानी जी दोनों ही संत प्रवरों ने अपने शिष्य गणों के साथ प्रेम और सत्कार भरे अमृतसर वासियों के भावना भरे हृदयों एवं नीर भरे नेत्रों का ध्यान किये बिना इस वैभव की नगरी से विदाई ले ही ली। सैकड़ों भावुक भक्त जन, श्रावक-श्राविकाएँ आपको विदाई देने के लिए मीलों तक आपके साथ चले आये। आपको विदाई देते समय उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो उनके जीवन का आधार ही छिन रहा हो। २० वर्ष तक पूज्य श्री और युवाचार्य श्री के सतत सम्पर्क के कारण अमृतसर वासी अपने आपको परम धन्य एवं सौभाग्यवान् समझते रहे। पर आज पूज्य श्री उन्हें सदा के लिए छोड़ कर स्वर्ग सिधार गये और युवाचार्य श्री भी साधु-नियमों का पालन करते हुए वहाँ से विहार कर रहे हैं।

इस प्रकार अमृतसर से विदा होकर दोनों संत ग्रामानुग्राम विचरते हुए होशियारपुर पधार गये। यहीं पर आचार्य पद प्रदानोत्सव होने वाला था। अतः आप कुछ दिन वहीं विराजते रहे।

आचार्य पूज्य श्री
काशीराम जी महाराज

'मानो हि महताम् धनम्'

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलहिं फलहिं पर हेत ।
ये इत तें पाहन हनैं, वे उत तें फल देत ॥

आचार्यपद प्रदानोत्सव

युवाचार्य पञ्जाब केसरी काशीराम जी को अपने गुरुदेव द्वारा उत्तराधिकार के रूप में प्रदत्त आचार्य पदवी धारण करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। इसके लिए होशियारपुर में आचार्यपद-प्रदानोत्सव की बड़ी भारी तैयारियाँ हो रही हैं। दूर-दूर से हजारों नर-नारी, श्रावक-श्राविकाएँ तथा साधु साध्वियों के समूह यहाँ एकत्रित हो रहे हैं। इस अवसर पर चतुर्विध श्रीसंघ का एक बड़ा भारी सम्मेलन आमंत्रित किया गया है। लगभग ११ हजार नर-नारियों की उपस्थिति में यह महोत्सव प्रारम्भ होने वाला है। अपने दिवंगत पूज्य के पद पर अपने हृदय सम्राट् पंजाब केसरी को प्रतिष्ठित करने के लिए सभी लोगों के हृदयों में अपूर्व उत्साह झलक रहा है। ऐसे ही अपूर्व आनन्द और उल्लास के मध्य सं० १९९२ की फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को होशियारपुर नगरी में यह समारोह सानन्द सम्पन्न हो जाता है।

इस आचार्य पद प्रदानोत्सव के शुभावसर पर—

(१) शतावधानी श्री पंडित रतनचन्द जी महाराज
(२) श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज
(३) ,, गणावच्छेदक बनवारीलाल जी महाराज
(४) ,, व्याख्यान वाचस्पति मदनलाल जी महाराज

(५) ,, बहुसूत्री जी श्री नरपतराय जी महाराज
(६) ,, कवि हरिश्चन्द्र जी महाराज
(७) ,, तपस्वी निहालचन्द जी महाराज
(८ ,, प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज
(९) ,, आर्या राजमती जी

आदि कुल ४५ साधु मुनिराज और आर्याओं की उपस्थिति में आचार्य पदवी प्रदान की गई। जब युवाचार्य श्री को आचार्य की चादर ओढ़ाई गई तो सभा भवन जयघोष से गूंज उठा।

पूज्य श्री का प्रवचन—

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने अपने हार्दिक भावों को संक्षिप्त और सारगर्भित रूप में इस प्रकार व्यक्त किया—

समुपस्थित सभ्यवृन्द! आज आप सब मिल कर मेरे दुर्बल कंधों पर संघ के शासन भार का महान् उत्तरदायित्व डाल रहे हैं। हम लोगों को असहाय एवं एकाकी अवस्था में छोड़ कर पूज्य श्री के स्वर्ग सिधार जाने पर संघ शासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए किसी न किसी प्रमुख व्यक्ति का वरण करना ही होता है। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि मुझ में न इतनी योग्यता ही है न क्षमता ही, कि मैं पूज्य श्री के पाट पर प्रतिष्ठित हो कर उसी प्रकार संघ की गौरव-वृद्धि कर सकूं। पर पूज्य श्री गुरुदेव तथा समस्त श्रीसंघ की आज्ञा एवं आदेश अनुल्लंघनीय है। अतः अपनी अयोग्यता एवं असामर्थ्य को देखते हुए भी इस आशा से मैं इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो रहा हूं कि पूज्य गुरुदेव के शुभाशीर्वाद और आप लोगों की सद्भावनाएं सदा मेरे साथ बनी रहेंगी।

संघ-संचालन के कार्यों में पदे-पदे अनेक एक से बढ़कर एक नित्य नवीन कठिनाइयाँ आती रहती हैं, नई से नई समस्याएँ

सामने उपस्थित होंगी, पग-पग पर असमानों का सामना करना पड़ेगा, ऐसी अवस्था में पूज्य गुरुदेव की अन्तः प्रेरणा और आप सब विज्ञजनों का हार्दिक सहयोग ही मुझे उलझनों को सुलझाने का मार्ग प्रदर्शित कर सकेगा। यदि आप सब लोगों ने मिलकर मुझे अपनी महान् सेवा का सौभाग्य प्रदान किया है, तो आप सब का यह परम पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि सुख में, दुःख में, सम्पत्ति में, विपत्ति में प्रत्येक अवस्था और परिस्थिति में आप मनसा, वाचा, कर्मणा मुझे अपना साहाय्य प्रदान करते रहें।

मुनिवृत्ति ग्रहण करते समय मेरे जैसा एक संत सेवक यह स्वप्न में भी कल्पना न कर सकता था कि कभी संघपति या पूज्य आचार्य पद के महान् गौरवास्पद पद की जिम्मेदारी मेरे दुर्बल कंधों पर आ जायगी। पर जब संघ ने मेरी दुर्बलता को देखते हुए भी मुझे इस पद पर बैठाने का निर्णय कर लिया है, तो मैं गुरुदेव तथा चतुर्विध संघ की धरोहर के रूप में इस पद को स्वीकार कर रहा हूं। मैं मन वचन कर्म से जीवन पर्यन्त इस पद की प्रतिष्ठा को बढ़ाने तथा श्रीसंघ को समुन्नत करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहूंगा। अपनी ओर से जाने या अनजाने में कभी कोई ऐसा कार्य मेरी ओर से न होगा, जिससे इस पद की प्रतिष्ठा मन्द पड़ने की सम्भावना हो। फिर भी आखिर मैं एक मानव हूं, अतः मानव सुलभ दुर्बलता जन्य यदि कभी कोई त्रुटि या शैथिल्य आप लोगों को कभी कुछ दिखाई दे जाय तो आप मुझे तत्काल निस्संकोच रूप से सावधान करते रहें।

मैं यह समझते हुए भी कि अखंड तपस्वी पूज्य श्री १००८ श्री सोहनलाल जी महाराज के समस्त गुणों में तप, त्याग, संयम, और साधना चतुर्थांश भी नहीं है, फिर भी इसी आशा से कि पूज्य श्री का वरदहस्त वरद हस्त मेरे सिर पर सदा बना रहेगा, और

आप सब भी मुझे ले निभेंगे, मैं शासनादेश को नतमस्तक हो स्वीकार कर रहा हूं। चतुर्विध श्रीसंघ के अतिरिक्त उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज तथा गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज आदि विद्यावयोवृद्ध संत प्रवर भी मुझे प्रत्येक कार्य में सदा सत् परामर्श देते रहेंगे। क्योंकि उपाध्याय और गणी का आसन और पद इस दृष्टि से आचार्य से भी बड़ा है। वे आचार्य के पथ-प्रदर्शक और निर्देशक माने जाते हैं। आप लोगों के भरोसे तथा आशा, विश्वास और साहाय्य के सहारे ही यह तुच्छ सेवक इस पद की प्रतिष्ठा को स्वीकार कर रहा है। अतः मैं भगवान् वीर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह हमें तथा श्रीसंघ को शासन के समुन्नत करने में समर्थ बनाएँ।

उक्त मौखिक आत्म-निवेदन के पश्चात् पूज्य श्री ने एक अपना लिखित भाषण भी पढ़ सुनाया था। उसकी अविकल प्रति आगे दी जाती है—

मुनिवरो! आर्याओ! श्रावक तथा श्राविकाओ! चतुर्विध-श्रीसंघ!

चार तीर्थों ने आज इस स्थान पर एकत्र होकर मुझे अपने विचारों को प्रकट करने का जो अवसर दिया है वह अति प्रशंसनीय है। उसके लिए मैं आप सब को धन्यवाद देता हूं।

स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ श्री सोहनलाल जी महाराज जिनका शुभ नाम सदा प्रकाशमान रहेगा, जिन्होंने उस आदर्शमय जीवन से समस्त भारतवर्षीय जैन समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है और हमें एक दूसरे के समीपस्थ सम्बन्धी बना दिया है, के उपकारों का मूल्य लगाना हमारी सब की शक्ति से परे है। काल की गति के अनुसार जिसके समक्ष राजा और रंक एक सम हैं, वह देवलोक सिधार गये हैं। और आप चार तीर्थ की

अनुमति से संघ के सूत्र सम्हालने का भार मेरे कन्धों पर छोड़ गये हैं।

उत्तरदायित्व की गम्भीरता और मामलों की कोमलता, जहाँ हृदय में कुछ भय की प्रेरणा करते हैं, वहां आपकी श्रद्धा और भक्ति अति उत्साह जनक है। मैं सर्व प्रकार से स्वर्गीय पूज्य श्री के पद चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करूंगा। उन्होंने हमारे लिए जो आत्मकल्याण का मार्ग दर्शाया है, उसका अनुसरण करना मेरा ध्येय होगा। इसमें आप सब की सहानुभूति पर मुझे विश्वास है।

स्वर्गीय पूज्य श्री को वृद्धावस्था और कुछ असाता वेदनीय कर्म के उदय से निरन्तर तीस वर्ष तक अमृतसर ही में निवास करना पड़ा। यह अमृतसर वालों का महान् पुण्योदय का कारण भी था। उस कालान्तर में अनेक क्षेत्र होने वाले लाभों का प्राप्त नहीं कर सके। इसलिए मेरा विचार है कि शीघ्र ही यह प्रबन्ध करूं कि सर्व क्षेत्रों का एक बार भ्रमण किया जाए। ताकि वहां के चार तीर्थों से निज का परिचय प्राप्त कर सकूं। जो आदर्श और कामनाएं उनके क्षेत्रों में जीवन को प्रकाशित कर रही है, उनका वृत्तान्त उन्हीं के मुखों से स्वयं सुनूं।

मेरा विश्वास है कि इन सब अनुभवों के अनुसन्धान से बड़ा लाभ होगा। मेरी यह भी इच्छा है कि भविष्य में साधु मुनिराजों और आर्जा जी के चातुर्मास और विहार का कार्य-क्रम इस विधि से बनना चाहिए कि वर्ष भर में कम से कम एक बार प्रत्येक क्षेत्र को इनके दर्शनों और संगति का लाभ अवश्य प्राप्त हो सके। संगठन के लिए मेरा यह भी विचार है कि चिरकाल तक परस्पर मिलाप न होने से बहुत हानि होती है, और नवीन काल के अनुभव साधु-साध्वियों को प्राप्त नहीं होने से सब

अनुभव प्राय: नष्ट हो जाते हैं। एक-दूसरे तक उनके पहुंचाने और उनके प्रकाश से लाभ उठाने का सम्प्रदाय को कोई अवसर प्राप्त नहीं होता। प्रोत्साहन की मात्रा बहुत कम रहती है। नए-नए साधु आदि सम्प्रदाय में उपस्थित होते रहने पर भी हमको सम्प्रदाय में नया जीवन व उत्साह नहीं दिखाई देता। प्राय: न परस्पर मेल होता है और न विचारों में परिवर्तन ही दिखाई देता है। इस कारण यह आवश्यक हो गया है कि परस्पर विचार विनिमय के लिए साधु सम्प्रदाय का प्रति ३ या ५ वर्ष में एक सम्मेलन हुआ करे।

अन्त में इतना बताना और भी आवश्यक है कि कई एक धार्मिक विषय चार तीर्थों से सम्बन्ध रखते हैं। अथवा अन्य दो तीर्थों की सहायता उसमें आवश्यक होती है। ऐसे विषयों पर विचारार्थ चार तीर्थों का परामर्श प्राप्त करने के लिए एक कमेटी नियत करने की आवश्यकता है जिसमें साधु-साध्वी, श्रावक श्राविकाएं सम्मिलित हों। उनका धर्म होगा कि इन विषयों पर जो कि उनके सामने रक्खे जायें, संघहित के विचार से उस सम्बन्ध में हमें सम्मति दिया करें। उनके निर्णयों को उचित सम्मान देने को मेरी इच्छा है।

होशियारपुर काशीराम आचार्य

१२---१९३६

आपने इस अवसर पर संघ के नाम कुछ आवश्यक सूच-नाएं इस प्रकार दी थी—

पूज्यश्री की सूचनाएं निम्न प्रकार थीं—

श्री श्री श्री १०८ श्री पूज्यवर आचार्य श्री काशीराम जी की श्रीसंघ के प्रति आवश्यक सूचना—

१. श्रीसंघ को उचित है कि वह परस्पर प्रेमभाव बढ़ावें।

और सहानुभूति से बर्ताव करें। यदि किसी के मन में द्वेष-भाव हो वह सर्वथा भूल जाय।

२. श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज के सम्प्रदाय में जिस प्रकार ज्ञान दर्शन चरित्र की वृद्धि हो, इसी प्रकार श्रीसंघ को पुरुषार्थ करना चाहिए।

३. जैन धर्म प्रचारार्थ देशकालानुसार साधन उत्पन्न करके जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार करना चाहिए।

४. साधु और आर्यिकाओं को चाहिए कि शास्त्रीय नियम व गण समाचारी के नियमों का भली प्रकार से पालन करें।

५. साधु और आर्यिकाओं को चाहिए कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रभावना की आवश्यकता समझें, वहां-वहां पर जाने को प्रयत्नशील रहें।

६. अन्य सम्प्रदाय के साधुओं का चातुर्मास प्रान्तिक आचार्य की सम्मति से कराया जावे।

७. स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ सोहनलाल जी महाराज की हित शिक्षाओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन यापन करना चाहिए।

८. श्रीसंघ को शास्त्रीय ज्ञान का प्रचार करना चाहिए। और आगमों का स्वाध्याय करना चाहिए।

९. साधु और आर्याएं जैन-अजैन का भेद न रखते हुए अहिंसा, सत्यादि गुणों का प्रचार करें।

१०. जैन धर्म की वृद्धि के उपायों, यत्नों का अन्वेषण करते हुए जैन धर्म की हर प्रकार से वृद्धि करनी चाहिए।

११. गृहस्थियों को भी उचित है कि अहिंसा धर्म का प्रचार करते हुए अपने जीवन को शास्त्रीय जीवन से विभूषित करें

और न्याय से व्यवहार करते हुए निर्वाण पद के अधिकारी बनें।

१२. मुनिमहाराज या आर्जकाजी परस्पर जी शब्द से सम्बोधन करें। और श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी इसी शब्द का अनुकरण करें।

आचार्य पद प्रदानोत्सव में श्री संघ पंजाब की ओर से जो अभिनन्दन पत्र पूज्य श्री की लोक सेवा में अर्पण किया गया था उसकी प्रतिलिपि—

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में—

श्री १००८ पूज्य श्री काशीराम जी महाराज।

परम पूज्य आचार्यवर !

आज इस श्रद्धास्पद धर्मासन पर आरोहण के समय हम जैन गृहस्थ आपका सम्मान पूर्वक हृदय से अभिवादन करते हैं।

इस पुनीत धर्मासन पर जिस पर अनेक वर्षों तक स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ श्री सोहनलाल जी महाराज विराजते रहे हैं, आपकी उपस्थिति हमारे हृदयों को नई आशा, नये विश्वास एवं नये उत्साहों से भर रही है। हम जानते है कि हमारे सम्प्रदाय की बागडोर इस समय एक ध्रुवव्रती, दृढ़प्रतिज्ञ उदार हृदय, महामना धर्म धरन्धर के हाथों में जा रही है; जो हमारे धर्म रथ का संचालन परम योग्यता व उत्तमता से कर सकेगा।

मान्यवर !

आपका इतिहास किसी से छिपा नहीं है, बाल्यकाल में ही आपके हृदय में वह वैराग्य सामग्री उपस्थित थी जो कि आपको माता-पिता के मोह एवं सांसारिक बन्धनों से दूर खींच ले गई। आपने अपने बन्धुओं की सांसारिक आशाओं को ठुकराकर पंच

महाव्रत का अवलम्बन किया। आपका हृदय प्रारम्भ से ही विचार मन्थनों एवं नवीन अनुशीलनों का क्रीड़ा क्षेत्र रहा है। शिमला के पहाड़ी प्रदेश में नवीन खोज की भावना से प्रेरित होकर सबसे पूर्व आपने ही जाने का साहस किया, तथा वहां के धर्म भक्तों को अपने दर्शनों से कृत-कृत्य किया। १९३३ के अजमेर सम्मेलन में आपने बड़ी निपुणता से अपनी उदारहृदयता तथा एकताप्रियता का प्रमाण दिया।

आज जब आप इस धर्मासन पर विराज रहे है, हमारे हृदय में नई आशाएं लहरा रही हैं। हम अनुभव करते हैं कि हमारे सम्प्रदाय की बागडोर एक योग्य आचार्य के योग्य उत्तराधिकारी के हाथों में जा रही है तथा वे अपनी गूढ़विद्वत्ता, दक्षता, उदार-हृदयता, एकताप्रियता, आध्यात्मिकता से हमारे सम्प्रदाय की ध्वाज को सदा ऊँचा एवं फहराते रक्खेगें।

हम है आपके अनन्य भक्त

चतुर्विध संघ पंजाब

होशियारपुर में उसी दिन तीन दीक्षाएँ

होशियारपुर में उसी दिन हजारों नर-नारियों के समूह के मध्य श्री राजेन्द्र मुनि आदि तीन वैरागियों की दीक्षाएं भी पूज्य श्री के पवित्र कर कमलों से सम्पन्न हुई। हजारों व्यक्तियों की साक्षियों से दीक्षोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। पूज्य श्री के तीन शिष्य और बढ़े। इस पूज्य महोत्सव के अवसर पर मानो समाज ने तीन शिष्य रूपी रत्न भेंट किये हो।

आप आचार्य पद महोत्सव के कार्य और दीक्षोत्सव का कार्य समाप्त होने के बाद कुछ दिन विराज कर होशियारपुर से जालन्धर छावनी, फगवाड़ा, बंगा, नयाशहर, राहों, बलाचोर, रोपड़,

खरड़, डेराबस्सी और गुरुकुल पंचकूला पधारे। पूज्य श्री ने समयो-चित भाषण व उपदेश दिया, गुरुकुल का निरीक्षण किया। वहाँ आपसे बड़े आग्रह भरी विनति अम्बाला के लिए हुई। पूज्य श्री का अम्बाले में बड़ी धूम-धाम से स्वागत हुआ। उन्हीं दिनों श्री महावीर जयन्ती अम्बाले में मनाने का निश्चय किया।

महावीर जयन्ती का महोत्सव अम्बाले में—

पूज्य श्री ने अम्बाला निवासी तीनों सम्प्रदाय वालों को मिलकर जयन्ती उत्सव मनाने का उपदेश दिया। तदनुसार तीनों सम्प्रदायों ने मिल कर महावीर जयन्ती मनाने का निश्चय किया। आचार्य श्री ने कहा कि तीनों सम्प्रदाय के अनुयायी यदि एक स्थान पर बैठ कर वीर प्रभु के गुणगान नहीं कर सकते तो हम जैनधर्मी बनने का दावा कैसे कर सकते हैं? हम में द्वेष भावों की वृद्धि है, पूज्य शासन-देव महाप्रभु के प्रति कोई भक्ति नहीं है। आपसी द्वेष में हम अपने परम पिता को भी भूल जाते हैं। आपके इस उपदेश ने सभी सम्प्रदाय वालों के हृदय में स्थान कर लिया था, सब ने पूज्य श्री की बात स्वीकार कर ली।

जैन कालेज में महावीरजयन्ती—

इस अवसर पर आचार्य श्री काशीराम जी व पण्डित रत्न शतावधानी जी भी आमन्त्रित किये गये थे। विनति को मान्य कर दोनों महात्मा शिष्य मंडली के साथ उपदेश स्थान को पधारे।

भगवान् महावीर के जीवन और उनके उपदेशों पर पंडितरत्न शता-वधानी जी महराज ने भी विद्वत्तापूर्ण प्रवचन किया। अन्या-न्य मुनिराजों एवं महानुभावों ने भी अपने-अपने श्रद्धांजलि के पुष्प चढ़ाए।

आप यहाँ कुछ दिन विराज कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए

धर्मोपदेश देते रहे। चातुर्मास समीप जान कर आप—

संवत् १९९३ का चातुर्मास अम्बाले में करने के लिए पधारे। इस चतुर्मास में आप के उपदेशों का जैन—अजैन सभी ने अपूर्व लाभ उठाया और एक सामग्री भंडार खोला गया। जिसमें पात्र, पुस्तकें, रजोहरण, माला आदि वस्तुएँ मिलती हैं।

पंजाब की इस प्रसिद्ध संस्था या भंडार का पूरा नाम 'पूज्य श्री सोहनलाल जैन धर्मोपकरण सामग्री रजोहरण पात्र भंडार, अम्बाला (पू० पंजाब) है।

भंडार का मकान श्री लाला हीरालाल नोरतराम के नाम से उनके पुत्र लाला बनारसी दास जी ने जैन सभा के ऊपरी भाग में बनाया। पूज्य श्री के चातुर्मास में धर्म का प्रचार और श्रद्धा की वृद्धि हुई। जैनियों के तीनों सम्प्रदायों में प्रेमभाव जागृत हुए। धर्म ध्यान भी अच्छा हुआ।

इसी चातुर्मास में आश्विन शुक्ला दशमी (विजया दशमी) को श्री सुरेन्द्र मुनि की दीक्षा बड़े धूमधाम से हुई। आप रादौर जिला करनाल के उच्च वंशज हैं। आज उच्च व्याख्यानियों में आप की गणना है। अंबाला का चतुर्मास दर्शनार्थियों का केन्द्र बना रहा। वहां से विहार कर पूज्य श्री पटियाले पधारे।

पटियाला में अवधान

भारतरत्न शतावधानी पंडितरत्नचन्द जी महाराज आपके साथ ही साथ विचर रहे थे। और चातुर्मास भी साथ ही साथ करते थे। साथ रहने से पण्डितरत्न जी को भी एक शिष्य लाला लक्ष्मीराम जी ने दिया। दोनों महान् विभूतियाँ पटियाला में धर्म जागरण कर रही थीं।

भारत रत्न पंडित रत्नचन्द जी महाराज ने यहां पर अपने

अवधान प्रयोग किये। इन अवधानों को देखकर जनता इतनी प्रभावित हुई की आपके व्याख्यानों में लोग बड़ी भारी संख्या में उपस्थित होने लगे। जैन धर्म के इस व्यापक प्रचार को देखकर एक स्थानीय राजपण्डित जी ने पूज्य श्री को शास्त्रार्थ करने के लिये चैलेंज दिया। पूज्य श्री ने शास्त्रार्थ के आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा कि आप जिस विषय पर कहें उसी विषय पर मैं शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार हूं। इस पर उन्होंने कहा कि आपका हमारा सबसे बड़ा मतभेद इसी विषय पर है कि आप ईश्वर को कर्ता नहीं मानते। अतः—

'ईश्वर कर्ता है या नहीं'
इसी विषय पर शास्त्रार्थ हो।

महाराजश्री ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, पंडित जी के सब प्रश्नों का उत्तर महाराज श्री इस प्रकार तक तथा विद्वत्ता से सुलझाकर देते कि उन्होंने आपके प्रकाण्ड पाण्डित्य को स्वीकार कर लिया। वे भी आपके अगाध शास्त्र एवं तप संयममय जीवन के प्रशंसक बन गाए। यहां पर आपने 'कर्म सिद्धान्त' इस विषय पर एक बड़ा विस्तृत एवं शास्त्रीय रहस्य को प्रकाशित करने वाला व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में जीवों का पुनर्जन्म, कर्म-बन्धन, संवर और निर्जरा के द्वारा कर्म-बन्धनों से मुक्ति, जीव और अजीव का भेद, बारह प्रकार के तपों का विवेचन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र, इन तीनों क्रियाओं से मुक्ति-मार्ग की प्राप्ति, कर्मसंस्कार युक्त पुद्‌गलों से प्रभावित आत्मा का निरूपण, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र अन्तराय इन आठ प्रकार के कर्मों का स्पष्टीकरण करते हुये यह स्पस्ट सिद्ध किया कि कर्म स्वयं ही कर्ता

और फल देता है। आत्मा जैसा कर्ता है कर्मावरणीय पुद्गल आबन्ध को प्राप्त होते हैं और फल देकर अलग हो जाते हैं।

इस प्रकार जब तक जीव शुभाशुभ कर्मों का करता रहता है, कर्मों का आदान प्रदान होता रहता है। कर्मों के नाश के बाद चेतन नितरां सुख और आनन्द को प्राप्त हो जाता है। कर्म सिद्धान्त को मानने पर यमदूत या पाप पुण्य का हिसाब-किताब रखने वाले धर्मराज अथवा उसका न्याय या निर्णय करने वाले ईश्वर आदि किसी संसारी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं रहती।

इस व्याख्यान में पूज्य श्री ने 'ईश्वर कर्तृत्व' के सम्बन्ध में 'कर्म सिद्धान्त' जैसे गहन गम्भीर और नीरस विषय का ऐसे सुन्दर, सरल, सरस ढंग से प्रतिपदान किया कि श्रोता गणों के मुख से अनायास ही 'धन्य धन्य' के शब्द निकल पड़े।

अम्बाले में संत की प्राप्ति—

इसी समय पटियाले में समाणा के भाई विनति करने को आए, किन्तु पूज्य श्री को बहादुरगढ़ और राजपुरा आना आवश्यक था। अतः समाणे के भाइयों को समझा कर आप अम्बाले पधारे।

अम्बाले के लाला सेलुराम जी ओसवाल तथा उनकी पत्नी सुखी देवी जी ने अपने पुत्र हुक्मीचन्द को पूज्य श्री को सौंप दिया, अर्थात् पूज्य श्री को शिष्य रूपी भिक्षा दी। वैरागी दशा में मुनि श्री हुक्मीचन्द जी भी पूज्य श्री के साथ विचरने लगे।

अम्बाले से यू० पी० की ओर विहार—

अम्बाले से श्रीपूज्यआचार्य काशीराम जी महाराज अम्बाला छावनी शाहाबाद, थानेसर, करनाल आदि नगरों को परसते हुए पानीपत पधारे। यहाँ से सोनीपत और खेवड़ा स्पर्शते हुए दिल्ली पधारे। दिल्ली निवासियों की आग्रह भरी विनती को ध्यान में

रखते हुए आपने यू० पी० की ओर विहार किया।

खेखड़ा, खट्टा, लुहारा सराय, बड़ौत, बामनौली, बिनौली एलम, और वहाँ से काँधला पधारे।

काँधला में सार्वजनिक व्याख्यान हुए। यहीं पर वैरागी हुकमीचन्द जी की दीक्षा हुई और ये हरिश्चन्द्र मुनि के रूप में विख्यात हुए।

यहाँ से गंगेरू, तितरवाड़ा, छपरौली, बड़ौत होते हुए वापस दिल्ली पधारे।

संवत् १९९४ का चातुर्मास देहली सदर में हुआ। दिल्ली के चातुर्मास में पूज्य श्री को कई बातों पर ध्यान देना पड़ा। काठियावाड़, बम्बई, और गुजरात के भाईयों की विनतियाँ पहले से हो रही थीं। पहले श्री पूज्य सोहन लाल जी महाराज की अस्वस्थता के कारण आप उधर विहार करने में असमर्थ रहे। अब यह प्रश्न वापिस दिल्ली आने पर उधर से दिल्ली आये हुए भाईयों द्वारा उठाया गया। उपकार करने के लिए ही पूज्य श्री ने साधु वृत्ति स्वीकार की थी।

पूज्य श्री ने पंजाब सम्प्रदाय की भली-भाँति देख रेख रखने के लिए मुनि समिति का निर्माण कर दिया और उनके वापिस पंजाब पधारने तक सम्पूर्ण व्यवस्था सम्बन्धी उसे अधिकार दे दिये।

निरीक्षण कमेटी के निम्न सदस्य थे—

१ गणी श्री उदयचन्द जी महाराज।

२ उपाध्याय श्री आत्माराम जी।"

३ गणावच्छेदक श्री बनवारीलाल जी महाराज।

४ गणावच्छेदक श्री गोकुलचन्द जी महाराज।

५ महासती जी श्री पार्वती जी आर्या (प्रवर्तिनी जी)।

यह व्यवस्थापिका मुनि समिति अपना कार्य सुचारू रूप से करती रहेगी ऐसा निर्देश देने के बाद आपने दूसरे देशों में विचरण करने का निश्चय किया।

देहली सदर में स्थानक का निर्माण—

यहाँ पर पूज्यश्री के विराज ने से धर्म भावना की खूब जागृति हुई। अनेक महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए। स्थानीय श्रीसंघ ने सदर बाजार में डिप्टीगंज के सिरे पर एक भव्य भवन बनवाया था। इसके लिए २० हजार रुपये श्री लाला ज्ञानचन्द जी विश्वेश्वर-नाथ जी से ऋण रूप में प्राप्त किया गया था। पूज्य श्री पंजाब-केसरी काशीराम जी महाराज की प्रेरणा से श्री लाला ज्ञानचन्द जी विश्वेश्वरनाथ जी जैन ने वह २० हजार रुपये भवन के निमित्त दान कर दिए। राजमहल के समान इस विशाल भवन में धर्म ध्यान के लिए तो स्थान है ही, नीचे एक वाचनालय भी चल रहा है।

यहाँ अन्यान्य स्थायी प्रभावशाली कार्य भी सम्पन्न हुए। दर्शनार्थी गण दूर दूर से आते रहे और धर्मध्यान में भी खूब वृद्धि हुई। इस प्रकार यहाँ का चातुर्मास समाप्त कर पूज्य श्री आचार्य काशीराम जी महाराज ने धर्मोपकार करने के लिए दूर-दूर देशो में विचरने का निश्चय किया।



उत्तर से दक्षिण की ओर विहार

पञ्जाब से राजपूताना, काठियावाड़, गुजरात, दक्षिण, बम्बई, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ प्रान्त की ओर—

समाज की वास्तविक दशा को आँखों से देखकर स्वानुभव के आधार पर सामाजिक त्रुटियों तथा कुरीतियों का निवारण करना व धर्म का उद्योत करना ही श्री पंजाब केसरी तथा उनके साथी मुनि-मण्डल का एक मात्र लक्ष्य था। इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर पूज्य श्री काशीराम जी महाराज अपनी शिष्य मण्डली के साथ हजारों मील लम्बी पैदल यात्रा पर निकल पड़े थे। वास्तव में यह यात्रा एक असाधारण धार्मिक विजय यात्रा थी। इस प्रकार के महान् उद्देश्य को लेकर इतनी लम्बी पैदल यात्राएँ बहुत कम लोगों ने की होंगी। इतिहास में ऐसे धर्म प्रचारकों की गणना अंगुलियों पर की जा सकती है, जिन्होंने भारत के इतने अधिक प्रान्तों के गाँव-गाँव में जाकर क्या अमीर, क्या गरीब, क्या राजा, क्या रंक, क्या ज्ञानी, क्या अज्ञानी, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या गृहस्थी, क्या वैरागी, सभी को समभाव से सद्धर्म का दिव्य संदेश सुनाया हो।

पूर्वकृत निर्णय के अनुसार दिल्ली नगर से चिराग दिल्ली,

महरौली, गुड़गांवा, रिवाड़ी, खुहरी, ईटोली होते हुए पूज्यश्री नारनौल पधारे। पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज हाँसी का चातुर्मास पूर्ण कर यहाँ पर पूज्य आचार्यश्री की सेवा में आ पहुँचे। यहाँ से आप सम्पूर्ण दक्षिण की यात्रा में छाया के समान पूज्य श्री के साथ बने रहे।

इस प्रकार यहाँ से विहार करने से पूर्व दस मुनिराजों का एक संघ बन गया। इस संघ ने दिल्ली प्रान्त से जयपुर की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

जयपुर स्टेट में प्रथम नारनौल से ६० मील दूर खंडेला नामक रियासत है। पूज्य श्री नीम का थाणा होकर जब यहाँ पधारे तो यहाँ के राजा साहब आपके व्याख्यान सुनकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कई त्याग और प्रत्याख्यान किये। राजा साहब के राजकुमार की भी पूज्य श्री के प्रति इतनी श्रद्धा थी कि उन्होंने देहली में पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर शुद्ध श्रद्धान ली। यहाँ से ६० मील चलकर आप जयपुर पधारे।

जयपुर में भव्य स्वागत—

पूज्य श्री के आगमन का शुभ समाचार सुनकर जयपुर निवासी उमड़ पड़े। उन्होंने स्वागतार्थ मीलों तक आगे आकर इस सन्त-शिरोमणि का भव्य स्वागत किया। हजारों की संख्या में जैन-अजैन आदि सभी लोगों ने जय-जय के नारों के साथ बधाई और मंगल गान गाते हुए आपका नगर में पदार्पण कराया। आपके यहाँ पधारने से संघ में अपूर्व उत्साह की लहरें उमड़ पड़ीं।

यहाँ के लोगों में एक फौजदारी झञ्झट खड़ा हो गया था, आपने उसे शान्त किया और मृत्यु भोज की प्रथा को बन्द कराने के लिए प्रबल प्रयत्न किया। जयपुर श्रीसंघ ने पूज्य श्री

के उपदेशों पर आचरण करने का निश्चय किया। यहाँ पंजाबी भक्तों के एक डेपुटेशन में अमृतसर निवासी लाला रतनचन्द जी, जँडियाला निवासी राय साहब टेकचन्द जी, लाहौर निवासी लाला मुन्शीराम जी, कसूर निवासी देवराज जी मजिस्ट्रेट स्यालकोट निवासी लाला टेकचन्द जी, अम्बाला निवासी ला० लक्ष्मीचन्द जी तथा और भी अनेक नगरों के ३१ भाई थे।

उन्होंने पूज्य श्री से आग्रह पूर्वक पंजाब पधारने को विनति की। पूज्य श्री बड़ी दुविधा में पड़े कि अब क्या करना चाहिये, अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे कि इधर जाना इतना आवश्यक नहीं जितना कि दूर दूर भ्रमण कर अनुभव प्राप्त करना सर्व क्षेत्रों में धर्म प्रचार करना व देश देश के विज्ञान का जानना परमावश्यक है। इधर पंजाब को छोड़ कर इधर आने से कार्य-भार संभालने और क्षेत्रों का देख-रेख करने में बड़ा विषमता आ गई। बात तो यह थी कि पूज्य श्री अपने निश्चित कार्य-क्रम तोड़ना नहीं चाहते थे। चाहे जो हो एक बार भारत भ्रमण करना परमावश्यक था।

किन्तु पंजाब का स्मरण हो आने से पूज्य श्री का सुकोमल हृदय दयार्द्र हो उठा। अतः उधर ही जाना आवश्यक समझ जयपुर से पूज्य श्री पंजाब स्पर्श करने की भावना से भक्तों की इच्छा पूर्ण करने को जयपुर से विहार कर पंजाब की ओर चल पड़े पूज्य श्री को जयपुर संघ ने बड़े उत्साहपूर्वक विदाई दी। किन्तु पूज्य श्री जयपुर से तीन मील उत्तर की ओर बढ़े होंगे कि एक मुनिराज को बड़ी तकलीफ हो गई। पूज्य श्री को जयपुर के भाईयों ने विनति कर वापस जयपुर पधारने को बाध्य किया। अतः पूज्य आचार्य श्री काशीराम जी वापिस जयपुर पधार गए। कुछ दिनों पश्चात् उक्त मुनिराज के स्वास्थ्य सुधर आने पर पूज्य श्री ने पंजाब की

ओर प्रस्थान का विचार प्रकट किया। किन्तु इसी समय दो तीन अन्य मुनिराजों के अस्वस्थ हो जाने के कारण पंजाब की ओर प्रस्थान का विचार फिर स्थगित कर देना पड़ा। इस प्रकार पंजाब में पदार्पण दैवाधीन हो गया।

इधर उदयपुर के केशूलाल जी ताकड़िया आदि २५-२६ भाई जयपुर आ पहुंचे और बड़ी आग्रह भरी विनति की, मालवा और मारवाड़ से भी कई आग्रह भरे पत्र आ रहे थे कि आप का इधर पधारना आवश्यक है। अजमेर सम्मेलन में पूज्य श्री का प्रभाव सारे भारत की जैन-जनता पर खूब पड़ चुका था। मेवाड़, मालवा, मारवाड़, दक्षिण गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रान्तों के भक्तों के भक्ति प्रवाह को व्यर्थ कर देना उचित नहीं जँचा। पंजाब के संघपति लाला टेकचन्द जी, रतनचन्द जी आदि ३०-३१ भाईयों का आग्रह भी नहीं टाला जा सकता था। दैवाधीन बात थी, उदयपुर के वीर श्रावकों की विनति ने उनके हृदय को दयार्द्र कर दिया।

अन्त में उदयपुर वालों ने विजय पाई। प्रधानस्थान उदयपुर की विनति ने लिया और पंजाब की ओर बढ़ना दैवाधीन हो गया।

मेवाड़ भूमि की ओर विहार—

पूज्य श्री ने कुछ मुनियों को अस्वस्थता के कारण यहां छोड़ कर किशनगढ़ की ओर विहार कर दिया। किशनगढ़ में बड़ा भव्य स्वागत हुआ। कुछ दिनों धर्म प्रचार कर अजमेर की ओर पधारे। अजमेर की जनता आप की अनन्य भक्त बनी हुई थी। अजमेर के श्रावक समुदाय ने आप ही को सर्वश्रेष्ठ पूज्य मान रक्खा था। अजमेर में श्री गणेशलाल जी बोहरा बड़े उत्साही कार्यकर्ता हैं। आप का कार्य और धर्मप्रेम सराहनीय है। यहाँ पर

जैनियों और अजैनियों ने बड़ी श्रद्धापूर्वक आप के व्याख्यान सुनें।

ब्यावर में अपूर्व स्वागत और होली चतुर्मास—

श्री महाराज अजमेर से ब्यावर पधारे। ब्यावर पधारने के पूर्व मन्त्री मुनि श्री मन्नालाल जी महराज,पूज्य श्री जवाहरलाल जी महराज के सभी साधु (जो यहां उपस्थित थे) संत और श्रावकगण दो डेढ़ मील तक स्वागत के लिए आये। और भव्य स्वागत और भक्ति भाव के साथ पूज्य श्री को ब्यावर में पदार्पण कराया।

पूज्य श्री ने पहले ही फरमा दिया था कि मैं निर्वद्य और निष्पक्ष मकान में ठहरूंगा, जहां सभी सम्प्रदायों के लोग व्याख्यानों से लाभ उठा सकें। आपके विचारों का सम्मान करके सर्व सम्मति से श्री कालूराम जी कोठारी, श्री उदयलाल जी आदि ने पूज्य श्री को कुन्दनभवन में ठहराया। जैन अजैन सभी को पूज्य श्री के व्याख्यानों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके व्याख्यानों का यहां की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार इस वर्ष होली चतुर्मास ब्यावर में हुआ।

उदयपुर के भाईयों ने यहां आकर पुनः विनती की। अब यहां से मसूदा आदि ग्रामों में होकर पूज्य श्री भीलवाड़ा पधारे। और वहाँ थोड़े दिन विराज कर चितौड़गढ़ के पवित्र प्रांगण को अपने पाद पद्मों से पवित्र किया। मेवाड़ के ऐतिहासिक स्थान चित्तौड़ गढ़ की वीर भूमि के आपने दर्शन किये।

उदयपुर के भाई जब ब्यावर में स्वागत के लिये आये थे तो पूज्य श्री भक्तों की भक्ति प्रभाव में आ गये। पूज्य श्री ने देखा कि पंजाबी अपने विचारों के पक्के होते हैं किन्तु मेवाड़ी भी कम नहीं हैं। जयपुर, ब्यावर और चित्तौड़ गढ़ हो अन्त में उदयपुर के चातुर्मास का निर्णय भी करा लिया। पूज्याचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र, काल व भावानुसार चातुर्मास उदयपुर करने की स्वीकृति देदी।

मेवाड़ की वीरभूमि में

यह जानकर उदयपुर के भाई अत्यन्त आनन्दित हुए और बड़े उत्साह और जय नादों से स्वीकृति का स्वागत किया। फिर श्रावकगण उदयपुर पहुँचकर श्री जी के पधारने की प्रतीक्षा करने लगे। पूज्य श्री के कपासन परसने की विनति भी आ पहुंची थी और कपासन के भाई भी वहाँ आ गये थे।

ब्यावर से विहार कर जब आपने मेवाड़ में प्रवेश किया तो आपका सरल कोमल हृदय हर्ष, शोक, उत्साह दैन्य आदि विविध विरोधी भाव धाराओं से आप्लावित हो उठा। जब आपको यह स्मरण आता कि यही वह बाप्पारावल महाराणा कुम्भा, महाराणा सांगा, वीरव्रती प्रातःस्मरणीय प्रताप, और महाराणा राजसिंह जैसे स्वाधीनता के पुजारियों व जैन वीर भामाशाह जैसे दानियों का देश है, जिन्होंने अपने प्राणों का बलि चढ़ाकर भी देश की स्वाधीनता को सदा बचाये रक्खा था, तो आपका हृदय उल्लास से परिपूरित हो उठता। जब आप भोले-भाले मेवाड़ वासियों की पराकोटि की निश्छल सात्विक श्रद्धा-भक्ति को देखते, और अनेक विनय भरे मधुरतम शब्दों को सुनते तो आपका हृदय गद्गद् हो जाता। पर दूसरे ही क्षण जब मेवाड़ के अणु-अणु में व्याप्त अज्ञता, निरक्षरता, और निर्धनता के कारण वहाँ की जनता की शोचनीयतम अवस्था का ध्यान करते, तो आपके करुणार्द्र नेत्र बरबस सजल हो उठते।

मोसर (मृतभोजों) के अवसर पर अथवा विवाह आदि के समय कर्ज करके भी सैकड़ों हजारों लोगों को जिमाते देख आप इस बड़े भारी विरोधाभास का कुछ कारण न समझ

पाते, कि जिन लोगों के पास पेट भर अच्छा भोजन तथा तन ढकने को भी पर्याप्त पैसा नहीं है, वे ही हजारों रुपये इन मोसरों आदि में क्यों फूँक डालते है। गुड्डे-गुड्डियों के समान आठ-आठ दस-दस वर्ष के अबोध शिशुओं को विवाह के बन्धन में बन्ध कर पति-पत्नी बनते देख आप दांतों तले अँगुली दबा लेते। प्रत्येक गाँव की प्रत्येक जाति में अनेक ऐसे धड़े या पार्टियां देखकर जिनमें परस्पर भोजन व्यवहार भी न हो, आप सविषाद चकित हो जाते।

इस दुर्दृश्य को देखकर आपके हृदय में बार-बार यही विचार आता कि क्या यह वही जगद्वन्द्य वीरप्रसू मेवाड़भूमि है, जिसकी यशोगाथाएँ दिग्-दिगन्तरों में गाई जा रही हैं, पर आज जिसके लाल अन्धपरम्परा, रुढ़िवाद, अज्ञान और अशिक्षा के दल-दल में इस प्रकार फँसे हुये है कि उससे अपने उद्धार का विचार भी नहीं कर पाते।

पूज्य श्री जहाँ भी जाते इन सब कुरीतियों के निवारण के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देते। पर यहाँ तो समुद्र को शहद के घड़ों से मीठा करना था। फिर भी यथाशक्ति इन लोगों को उद्धार का मार्ग दिखाते हुए, पूज्य श्री ब्यावर से मसूदा, भीलवाड़ा और चित्तौड़ परस कर कपासन आ विराजे।

यहाँ से करेड़ा होते हुए पूज्य श्री सनवाड़ पधारे। यहाँ की विजय-जैन पाठशाला के प्रधानाध्यापक श्री उदय जैन के नेतृत्व में पाठशाला के अध्यापक छात्रों तथा कन्या पाठशाला की छात्राओं ने अपने साज-बाज के साथ पूज्य श्री का स्वागत जुलूस निकाला, जिसमें नगर के तथा बाहर के हजारों नर-नारियों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। विद्यालय के छात्रों की परीक्षा लेकर आप बड़े प्रसन्न हुए। यहाँ के केसरीमल जी कन्हैयालाल जी आदि

उत्साही कार्यकर्ताओं ने आपके व्याख्यानों के प्रबन्धादि कार्यों में महत्वपूर्ण भाग लिया।

मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में पञ्जाब केसरी पूज्य श्री का शुभागमन—

पूज्य श्री सनवाड़ से छोटे-छोटे ग्रामों में विचरते और धर्म प्रचार करते नाथद्वारा आ पहुँचे। वहाँ से देलवाड़ा होते हुए मेवाड़ की राजधानी उदयपुर की ओर बढ़े। ब्रह्मचर्य और तेज के पुञ्ज इस पंजाबी सन्त के जो भी दर्शन कर लेता वही साम्प्रदायिक भेद-भाव को छोड़कर सहसा पूज्य श्री के चरण कमलों में नत-मस्तक हो जाता। यहाँ जैन और अजैन का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। आपको उदयपुर में बड़े पंचायती नोहरे में चातुर्मास के लिए ठहराया गया। आपके व्याख्यानों में हजारों की संख्या में सभी सम्प्रदायों के श्रोतागण उपस्थित होने लगे। व्याख्यान-स्थान नियत समय से पूर्व श्रोतागणों से खचाखच भर जाता था।

यहाँ बल्लभसिंह जी कोठारी, केशुलाल जी, चिमनलाल जी, राजमल जी, आदि धर्म-प्रेमी सज्जनों ने महाराज की सेवा सुश्रूषा, एवं व्याख्यान आदि के प्रबन्ध कार्य में स्तुत्य सहयोग दिया। यहां के साढ़े चार सौ के लगभग साधु-मार्गियों के घरों में तो आनन्द और उत्साह का प्रवाह ही उमड़ आया। इस प्रकार—

संवत् १९९५ का चातुर्मास उदयपुर में सानन्द सम्पन्न हुआ। धर्म ध्यान के साथ मुनियों ने बड़ी-बड़ी तपस्याएँ भी कीं। तपस्वी मुनि श्री सुदर्शन जी महाराज ने एक मास का व्रत किया। मुनि श्री हरिश्चन्द्र जी ने १६ दिन के उपवास

किये । अर्थात् एक मास और १६ दिन तक अनशन रहा । श्री जौहरीलाल जी महाराज की तपस्या भी उल्लेखनीय रही ।

३ मुनिराजों का पञ्जाब प्रस्थान—

पंजाब केसरी पूज्य श्री ने मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को उदयपुर से श्री राजेन्द्र मुनि जी, श्री सुरेन्द्र मुनि जी, और महेन्द्र मुनि जी को ईश्वरदास महाराज की सेवा में अमृतसर भेज दिया । ८०० मील की लम्बी यात्रा कर तीनों सन्तों ने पूज्य श्री की आज्ञा का पालन करते हुये सन्त-भक्ति का परिचय दिया । वास्तव में ऐसे मुनिराजों का जीवन धन्य है जो पूज्य श्री की सेवा का अमूल्य लाभ और देश-देशान्तरों के भ्रमण के अलभ्य अवसर को छोड़कर पंजाब केसरी की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए उदयपुर से पैदल विहार कर सन्त सेवा में अमृतसर जा पहुंचे ।

मालवा की ओर—

पंजाब केसरी पूज्य श्री ने मागशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को उदयपुर से विहार कर दिया । आपका उदयपुर में प्रवेश और वहां से विहार दोनों ही घटनाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी । आपके विहार में १०००० के लगभग नर-नारियों ने सोत्साह भाग लिया और मीलों तक आपको विदाई देने के लिए साथ चले आये । उदयपुर से विहार कर पंजाब केसरी कानोड़ पधारे जहां के २०० जैन घरों ने तथा अजैन भाईयों ने मिलकर आपका भव्य स्वागत किया । यहां से बड़ी सादड़ी, छोटी सादड़ी व नीमच आदि होते हुए, मन्दसौर पधारे । मन्दसौर दशार्ण भद्र राजा की राजधानी थी ।

जावरा में मन्दिरमार्गी और साधुमार्गियों के मुकदमों का अन्त—

पूज्य श्री ने मालवा और मेवाड़ में, पूज्य श्रीलाल जी की सम्प्रदाय के दोनों टुकड़ों में पारस्परिक अश्रद्धा और वैर भावना को बढ़ते देखकर बड़ा भारी खेद और आश्चर्य प्रकट किया। मन्दसौर से आप जावरा पधारे। यहाँ पर मन्दिर मार्गियों परस्पर और इसी प्रकार साधु मार्गियों में भी परस्पर मुकद्मेबाजियाँ चल रही थीं। ये मुकद्मेबाजियाँ किसी प्रकार समाप्त होने वाली न थीं। पर पूज्य श्री का तो मन्दिर मार्गी और साधु मार्गी दोनों पर प्रेम था और दोनों ही आपके प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति रखते थे तथा बड़े उत्साह के साथ आपके सार्वजनिक व्याख्यानों में उपस्थित होते थे। फलतः आपने दोनों सम्प्रदायों के मुखियाओं को बुलाकर उनके झगड़े मिटा दिए। और इस प्रकार उन मुकद्मों का अन्त हो गया।

जावरा मुसलमानों की रियासत थी, पर यहाँ के मिनिस्टर साहब पर पूज्यश्री का बड़ा प्रभाव पड़ा। यूं इससे पूर्व भी रियासत में जैन धर्मावलम्बियों को अपने धर्मकार्यों के सम्पादन में किसी प्रकार की कोई अड़चन उपस्थित नहीं होती थी। जैनियों के पारस्परिक कलह के शान्त हो जाने से वहाँ के मिनिस्टर साहब बहुत प्रभावित हुए। यह झगड़ा एक पंजाबी मुनिराज की कृपा से शांत हुआ है, यह जानकर वे बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और प्रायः प्रत्येक व्याख्यान में सोत्साह भाग लेते रहे।

जावरा से आप सैलाना पधारे। यहाँ रतन लाल जी डोसी बड़े धर्मज्ञ और शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं। आपने पूज्य श्री से धर्म चर्चा कर पर्याप्त लाभ प्राप्त किया।

यहाँ से आप रतलाम की ओर बढ़े, रतलाम निवासियों ने जब यह सुना कि पंजाब केसरी श्री १००८ श्री काशीराम जी महाराज सुदूर पंजाब प्रान्त से विहार करते हुए रतलाम पधार रहे हैं, तो यहाँ के श्रीसंघ के हर्ष का पारावार न रहा। पर यहाँ स्थानक वासी जैन भाईयों में तीन सम्प्रदाएँ चल रही थीं। पूज्य श्री जवाहर लाल जी महाराज की सम्प्रदाय, तथा धर्मदास जी महाराज के अनुयायी श्रावकगण आपस में एक दूसरे से बड़ा भारी द्वेष रखते थे। ये लोग आपस में एक दूसरे सम्प्रदाय के साधुओं को वन्दना नमस्कार आदि भी नहीं करते थे, उनके व्याख्यानादिकों में सम्मिलित होना तो दूर रहा। तीसरी सम्प्रदाय पूज्य श्री मुन्नालाल जी की है। पूज्य श्री इस प्रकार के भेद-भावों से दूर रहना चाहते थे। अत: जब रतलाम वासी भाईयों ने आकर पूज्य श्री की सेवा में रतलाम परसने की प्रार्थना की तो आपने स्पष्ट कहा कि हम किसी ऐसे स्थान में नहीं ठहरना चाहते जहाँ किसी एक ही सम्प्रदाय के साधु ठहरते हों, हमारा किसी सम्प्रदाय से कुछ राग-द्वेष नहीं है।

इस पर श्री सेठ वर्धमान जी पीतलिया, और श्री सेठ भूलचन्द्र जी भंडारी आदि रतलाम के भाईयों ने पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया कि आप रतलाम अवश्य पधारिये, हम आपको योग्य व निरवद्य स्थान होगा वहीं ठहरायेंगे। इस पर पूज्य श्री ने फरमाया कि आपके वहाँ तीन सम्प्रदाएँ हैं और तीनों सम्प्रदायों के साधु भिन्न-भिन्न स्थानों में उतरते हैं और पृथक् पृथक् व्याख्यान देते हैं, एक दूसरे को वंदना व्यवहार नहीं करते और आपस में दूसरे की निन्दा करते हैं। यह मुझे दु:खकर प्रतीत होता है।

मैं आपके नगर में शान्ति हो और एक ही व्याख्यान हो

ता आऊँ। दोनों मुखियाओं ने पूज्यश्री के शांतिमय वचनामृतोंका आदर करते हुये तदनुसार व्यवस्था करने का आश्वासन दिया।

रतलाम प्रवेश के समय बिना किसी साम्प्रदायिक भेद-भावों के एक विशाल जन-समुदाय ने आपका स्वागत किया। पूज्य श्री काशीराम जी महाराज, पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की सम्प्रदाय के श्रावकों और धर्मदास जी महाराज की सम्प्रदाय के श्रावकों दोनों की विनति को स्वीकार करते हुये दोनों के मकानों में उतरे, क्योंकि दोनों के मकान पास ही पास थे। व्याख्यान एक विशाल भव्य-भवन में होते थे, जहां तीनों सम्प्रदायों के श्रावक तथा अन्य भक्त जन भी बड़ी भारी संख्या में नित्य उपस्थित होते थे। पूज्यश्री के प्रभावशाली व्याख्यानों की परम्परा से रत्नपुरी (रतलाम) धन्य हो उठी। आपके प्रभाव से स्थानीय साम्प्रदायिक वैमनस्य कुछ समय के लिये शान्त हो गया। पूज्यश्री का सभी लोगों ने निष्पक्ष तथा साम्प्रदायिक भेद भावनाओं से ऊपर उठे हुये महान् संत की भाँति स्वागत-सत्कार किया।

पंजाब केसरी पूज्य श्री रतलाम की जनता को अपने मधुर उपदेशों से कृतार्थ कर धारा नगरी की ओर चल पड़े। यह धारा नगरी प्रसिद्ध विद्वान् महाराज भोज की राजधानी रही थी। इस नगरी में प्रवेश करते ही भोज के समय की विद्या का सर्वाङ्गीण चित्र नेत्रपटलों पर अंकित हो जाता है। यहां से आप मांडव गढ़ या मांडु पधारे। मांडु के किले में भी आप का एक भव्य प्रवचन हुआ। मांडु में किसी समय एक लाख घर थे, ऐसा वहां के पुराने वही-खातों में लिखा है। जिनमें से अब केवल एक है।

पंजाब केसरी का वनकेसरी से मिलन

मांडवगढ़ से आगे का मार्ग पहाड़ी घाटियों से परिपूर्ण था। यह विकट एकान्त और निर्जन मार्ग मोटर आदि सवारियों में बैठे हुए यात्रियों को भी भयावह प्रतीत होता था। मीलों तक किसी गांव या बस्ती का नाम निशान भी न था। शेर, चीते, बाघ आदि हिंस्र जङ्गली जन्तु यहां निर्भय होकर दिन रात घूमा करते थे। सड़क पर स्थान-स्थान पर डैंजर (Denger) 'खतरा' के बोर्ड लगे हुए थे। ऐसे मार्ग को एकाकी पैदल पार करना और वह भी निहत्थे होकर कोई सरल बात न थी। बिना किसी शस्त्रास्त्र के उन एकान्त शून्य पहाड़ी मार्गों में विचरते हुए तो बड़े २ साहसियों के भी दिल दहल उठते थे।

ऐसे ही विकट मार्गों में पूज्य श्री अपने ७ साथी संतों के साथ निर्भीक भाव से आगे बढ़ते चले जा रहें हैं। यहां से नीमाड़ की ओर बढते समय मार्ग में एक बड़ी विकट भयंकर घाटी मिली। घाटी से उतरते ही एक बावड़ी आती है, इस बावड़ी पर एक शेर पानी पीता दिखाई दिया। मांडवगढ़ से लेकर शेरपुर तक कोई क्षेत्र श्रावकों का नहीं था, भीलों के सिवाय और कोई बस्ती थी ही नहीं। बोरा फाटक पहुंचने पर कुछ विश्रान्ति मिली, किन्तु शीरपुर पहुँचना आवश्यक था, अतः

पूज्य श्री ने तत्काल वहाँ से विहार कर दिया। मार्ग में पूज्य श्री जंगल दिशा के लिए पीछे रह गए और साथी मुनिगण दो तीन सौ गज आगे निकल गए। शौच आदि से निवृत्त हो महाराज श्री सड़क पर आकर आगे बढ़ने लगे कि पीछे से सड़क पर एक शेर आ पहुँचा। किन्तु उसका ध्यान पूज्य श्री की ओर नहीं गया। उसी समय पीछे से एक मोटर लारी आ रही थी, शेर उस मोटर लारी का रास्ता रोक कर सड़क पर खड़ा हो गया। बहुत कुछ शोर हल्ला मचाने पर भी वह उनके मार्ग में से हटा नहीं। अन्त में अग्नि के प्रयोग से उन लोगों ने उसे भगाया।

मोटर की सवारियों ने दूर से देखा था कि शेर के आगे सड़क पर एक अकेला साधु चला जा रहा है। यह दृश्य देख कर वे स्तब्ध एवं आश्चर्याभिभूत हो उठे। पास में आने पर मोटर की सब सवारियों ने मोटर से नीचे उतर कर नतमस्तक हो वन्दना कर कहा कि—

महाराज, मार्ग में तो शेर खड़ा था, आप उससे बच कर आगे कैसे निकल आए, हमारी मोटर को तो उसने बुरी तरह घेर लिया था। हम दूर से देख रहे थे कि आप शेर से आगे अकेले चले जा रहे हैं। हमने जीवन में पहली बार यह महान् आश्चर्य देखा है। इस पर पूज्य श्री ने कहा कि भाई, हमें तो कुछ मालूम नहीं, कोई जीव पीछे से आ गया होगा। इस प्रकार पंजाब केसरी का वनकेसरी से यह मिलन बड़ा ही भव्य और चमत्कारक रहा।

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः'

का प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसी घटनाओं से ही मिलता है। ऐसा

प्रतीत होता है कि हजारों मील से चल कर आए हुए पंजाब केसरी इस संत प्रवर के देवोपम दर्शन-सौभाग्य से अपने आप को कृत-कृत्य करने के लिए ही वन-केसरी स्वेच्छापूर्वक पूज्य श्री के मार्ग में आकर उपस्थित हो गया हो।

थाल घाट से तीन मील दूर निमारणी गांव में साधु आहार पानी के लिए गये। किन्तु कहीं आहार-पानी का योग नहीं बना। सभी संतों ने सोचा कि चलो यह भी एक तप ही हो जायगा। पर मार्ग में कुछ ही दूर आगे बढ़े होंगे कि एक मोटर में से उतर कर सवारियाँ भोजन करने की तैय्यारी करती हुई मिलीं। इन लोगों ने संतों से आहार-पानी के लिए विनति की। इस प्रकार इस बीहड़ मार्ग में अनायास ही निर्दोष आहार पानी का लाभ हो गया। किन्तु कई बार तो मार्ग में आहार-पानी आदि अनेक परीषहों को सहन करना ही पड़ता था।

इन कष्टों को सहते हुए यह साधु-मंडली बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़ती चली जा रही थी। अन्त में ये लोग शीरपुर आ पहुँचे। यहां दस पन्द्रह काठियावाड़ी भाईयों के घर हैं, उन लोगों का धर्म-प्रेम बड़ा सराहनीय था। इन लोगों ने पूज्य श्री का बड़ी श्रद्धा-भक्ति से आदर सत्कार किया।

यहाँ से दक्षिण की ओर विहार करते हुए धूलिया से सात मील उत्तर की ओर एक गाँव में पूज्य श्री ने होली चातुर्मास किया। होलिका के दिन चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया। यहीं बम्बई और धूलिया के श्रावकों ने चातुर्मास के लिए प्रार्थनाएँ कीं। बम्बई श्रीसंघ की ओर से गिरधर भाई तथा अन्य सज्जन आये थे। चातुर्मास की विनती पर पूज्यश्री ने फरमाया कि धूलिया पहुँच कर रास्ते का अंदाज लगाकर स्वीकृति दूंगा।

धूलिया में पूज्यश्री का सोत्साह स्वागत हुआ। यहीं पर परम प्रतापी मुनि श्री भागचन्द जी महाराज व पंडितरत्न श्री त्रिलोक चन्द्र जी महाराज ने दर्शनों का लाभ प्राप्त किया। आपने यहाँ पर अपने प्रवचनों का दिव्य दान दिया, जिससे स्थानीय श्रीसंघ में पर्याप्त उत्साह और जागृति के भाव दिखाई देने लगे।

वहाँ से ग्रामानुग्राम विचरते हुए पूज्य श्री चाँदवड़ पधारे। यहाँ मुनि श्री हरिश्चन्द्र जी ज्वराक्रान्त हो गये। यहीं पर अहमद-नगर श्रीसंघ की ओर से चातुर्मास की विनती के लिए एक डेपुटेशन श्री सेवा में आया। इधर मनमाड़ के भाइयों ने भी पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना की कि साधु जी को तकलीफ है, अतः आप मनमाड़ ही पधारें। नासिक दूर होने से आपको वहाँ पहुँचने में असुविधा होगी, मनमाड़ से सुविधानुसार जिधर इच्छा हो पधारें।

जंगल में मंगल

यहाँ से आगे पूज्य श्री जहाँ-जहाँ भी पधारते आपके साथ सैकड़ों भक्त जन हो लेते। आस-पास के ग्रामों से झुंडों के झुंड एकत्रित हो जाते। जिस किसी भी छोटे या बड़े ग्राम में विश्राम करते, वहीं प्रवचन भी होता। व्याख्यान सुनने के लिए उत्सुक लोगों की भीड़ से छोटे से छोटा गाँव भी वड़ी बस्ती का रूप धारण कर लेता। अथवा ऐसा प्रतीत होता कि यहां कोई बड़ा सा मेला है। एक गाँव से दूसरे गांव की ओर विहार करते तो सैंकड़ों नर-नारी चार-चार पांच-पांच मील तक जय-जय घोष करते और मंगल गान गाते आपके साथ चले जाते। इतने में उधर अगले गाँव से जन-समूह आ मिलता। इस प्रकार ग्रामानु-ग्राम विचरते हुए आपको इधर कहीं भी एकाकीपन का अनुभव नहीं करना पड़ा।

चाँदवड़ से तीन मील दूर एक छोटा सा गाँव है। उस गाँव का यह सौभाग्य था कि उसने पूज्य श्री के पदार्पण से पवित्र होकर ऐसे दुर्लभ दिव्य दिन के दर्शन किये। उस छोटे से गांव में सैंकड़ों दर्शनार्थियों के एकत्रित हो जाने से चहल-पहल हो गई। अहमद नगर के दौंड़ीराम जी आदि कई सज्जन तथा

अमृतसर से भगवानदास जी आदि कई पंजाबी भाई भी दर्शनार्थ यहां आ पहुंचे।

वाम्बोरी, धूलिया, चांदवड़ आदि ग्रामों के सैकड़ों भक्तजन तो यहां पहले ही से साथ ही साथ चल रहे थे। बात तो यह है कि पूज्य श्री का प्रताप गांव-गांव में व्याप्त हो रहा था। आपका नाम सुनते ही कि पंजाब केसरी पूज्य श्री पधार रहे हैं, लोग घर-बार और काम-धन्धे छोड़ सहसा आपके दर्शनार्थ निकल पड़ते। यहीं पर अहमदनगर चातुर्मास की विनती स्वीकार करली गई। यहां से आप मनमाड़ पधारे। वहां से अनेक छोटे-मोटे नगरों को परसते हुये अहमद नगर छावनी में आ विराजे।

संवत् १९९६ का का चातुर्मास अहमद नगर में हुआ। अहमद नगर दक्षिण का एक मुख्य नगर और जिला है। जैनियों के घर भी यहां पर्याप्त संख्या में हैं। यहां का चातुर्मास भी महत्वपूर्ण रहा।

एक मुसलमान भाई का सम्यक्त्व ग्रहण—

यहां पर अजैन व्यक्तियों में से नानूलाल नामक एक मुसलमान भाई ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसने पूज्य श्री से सामायिक, प्रतिक्रमण व भक्तामर आदि की जानकारी प्राप्त की। साथ ही बारह व्रतों में से कई व्रत भी स्वीकर किये। वह पूज्य श्री का अनुयायी बन गया।

इसी प्रकार कई स्वतन्त्र त्याग प्रत्याख्यान व्रत नियम आदि भी होते रहे। पूज्य श्री के व्याख्यानों की सबसे बड़ी एक विशेषता यह थी कि आप अपने व्याख्यानों में व्यर्थ की विद्वत्ता या अनावश्यक पांडित्य का परिचय न देकर सीधी सरल किन्तु प्रभाव-शालिनी भाषा में जनता के लिए उपयोगी विषयों तथा

अपने हार्दिक भावों को बड़ी निष्ठा के साथ व्यक्त कर देते थे। बीच-बीच में रोचक कथा कहानियों एवं उदाहरणों आदि से अपने प्रवचन को अत्यन्त आकर्षक और सरल बना देते थे। आपकी पंजाबी उच्चारण शैली या टोन तो बड़ी ही हृदय-स्पर्शी प्रतीत होती थी। बात तो यह है कि आप व्याख्यान देने के लिए व्याख्यान नहीं देते थे प्रत्युत देश जाति और समाज की दुरवस्था को देखकर आपके हृदय में एक टीस सी उठती, वही वाणी के द्वारा व्यक्त हो जाती थी। आप के क्रान्तिकारी विचार समाज को रूढ़िवाद के बन्धनों तथा कुरीतियों के पंक से निकाल कर उत्थान की ओर अग्रसर करना चाहते थे। यही कारण है कि आपके प्रत्येक शब्द का श्रोताओं के हृदय पर तत्काल सीधा प्रभाव पड़ता था। आपके उपदेशों के कारण दया, दान, व्रत, प्रत्याख्यान, पौसध आदि धार्मिक क्रियाओं का ठाठ सा लगा रहता।

अहमद नगर में कुन्दनमलजी फिरोदिया का निवास स्थान है। आप बड़े सत्य भक्त निर्भीक वक्ता, सच्चे राष्ट्र सेवी स्थानक वासी वकील हैं। और कई वर्षों तक बम्बई प्रान्त की एसेम्बली के स्पीकर रह चुके हैं। आपने भी पूज्य श्री के उपदेशों से पर्याप्त लाभ उठाया।

यहां पर पूना, दक्षिण, मालवा, बम्बई व गुजरात आदि प्रान्तों के भाई दर्शनार्थ आते रहते थे। बम्बई पधारने और पूना स्पर्शने की विनतियां हुईं। पूज्य श्री का विचार भी चातुर्मास के पश्चात् अप्रतिबन्ध विहार करने का था ही।

आपके उपदेशों से प्रभावित होकर यहां की जनता ने एक असहाय फंड की स्थापना की, जिससे बहुत उपकारी कार्य हुए।

बम्बई के निकट आनन्द ऋषि जी से मिलन—

चातुर्मास बाद पूर्व निर्णयानुसार आप छोटे-मोटे ग्रामों में धर्म प्रचार करते हुए बम्बई के मार्ग पर बढ़ चले। पूना परस ने की प्रार्थना को स्वीकार कर आप रूणाखा पधारे।

यहाँ पर ऋषि सम्प्रदाय के वर्तमान पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज से साक्षात्कार हुआ। पंडित आनन्द ऋषि जी सूत्रार्थों के बहुत बड़े ज्ञाता और बड़े विद्वान् आचार्य हैं। उस समय आप युवाचार्य पद पर थे। आपने पूज्यश्री का बड़े प्रेम-पूर्वक स्वागत किया, और पूज्यश्री के प्रति बड़ी भक्ति और प्रेम का परिचय देते हुए इस दुर्लभ मिलन का पूरा-पूरा लाभ उठाया। आप दोनों साथ ही साथ प्रवचन किया करते थे। जब दोनों पूज्य एक साथ बैठ कर उपदेशामृत की वर्षा करते तो जन गण मन आनन्द-विभार हो उठता। इस प्रकार कुछ दिनों के स्नेह-पूर्ण संसर्ग के पश्चात् पूज्य श्री यहाँ से पूना पधार गये।

पूना में दीक्षा—

पूना नगर में सेठ गुलराज जी, सेठ चुन्नीलाल जी, आदि उत्साही श्रावक हैं। इन लोगों ने पूज्य श्री के स्वागत सत्कार में कोई कसर उठा न रक्खी। यहाँ पर कपूरचन्द जी नामक वैरागी की दीक्षा हुई। पूना नगर में दीक्षा देना जैन धर्म की प्रभावना करना था। यहाँ के मराठा लोगों ने भी दीक्षोत्सव में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। यह दीक्षोत्सव एक बड़े खुले मैदान में हुआ

था, जिसमें हजारों नर-नारी सम्मलित हुए। इस अवसर पर पूज्य श्री ने त्याग विषय पर महत्व पूर्ण व्याख्यान दिया।

पूना से पूज्य श्री काशीराम जी महाराज चींचवड़ पधारे। वहाँ कोटा सम्प्रदाय के श्री प्रेमचन्द जी महाराज ठाणा तीन से विराजमान थे। आपने पूज्य श्री का बड़ी भक्ति-भाव से स्वागत सत्कार किया। श्रीसंघ ने भी आपके प्रति महान् त्याग एवं सेवा-भाव प्रदर्शित किया।

बम्बई में पदार्पण

चींचवड़ से विहार कर घोड़नदी, पनवल आदि ग्राम नगरों में धर्म का उद्योत करते हुए आप बम्बई पधारे। यहां पर भी अन्यान्य नगरों के समान आपका बड़ा भव्य स्वागत हुआ। सं० १९९७ का चातुर्मास बम्बई में हुआ। उसी वर्ष पंडित रत्नमुनि श्री शतावधानी रत्नचन्द्र जी महाराज का घाटकोपर बम्बई में, और ताराचन्दजी महाराज का माटुंगा बम्बई में चातुर्मास हुए।

पूज्य श्री पंजाब केसरी काशीरामजी महाराज का चातुर्मास कान्देवाली में निश्चित हुआ था। किन्तु पूज्यश्री शौचआदि की तकलीफ के कारण चींचपोकली में ही विराजते रहे। आचार्यश्री के श्री भागमलजी व पंडित रत्नश्री शुक्लचन्द्र जी महाराज आदि चार सन्तों का चौमासा भी कान्देवाली बम्बई में हुआ। ये चारों सन्त पूज्य श्री के दर्शनार्थ चींचपोकली आते-जाते रहते थे। इस समय पूज्य श्री की शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही थी। यूं तो अहमदनगर चातुर्मास के पश्चात् से ही शरीर निर्बल होता जा रहा था, पर बम्बई का पानी अनुकूल न होने के कारण यहां विशेष दुर्बलता आ गई। पूज्य श्री ने दिन में एक ही बार आहार करना आरम्भ कर दिया। दिन में चार समय स्वाध्याय करते, और चारों बार ध्यान लगाते। आप प्रत्येक चातुर्मास

में बत्तीस सूत्रों का स्वाध्याय किया करते थे। साथ ही अन्य धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी जितना होता चलता रहता।

अद्भुत त्याग-भावना

यहां पर आपके पास वैरागी सिद्धराज जी की दीक्षा हुई। पंडितरत्न शतावधानी जी महाराज, ताराचन्दजी महाराज व पूज्य श्री ने मिलकर वीर संघ बनाने की योजना बनाई। पूज्य श्री ने उस समय फरमाया कि—

'यदि सब का एक ही आचार्य बन जाय तो बहुत अच्छा हो। ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम मैं अपने आचार्य पद का परित्याग कर उसकी आज्ञा का पालन करने के लिये तैय्यार हूं।'

यह कैसी दिव्य और अद्भुत अपूर्व त्याग भावना है पूज्य श्री के उक्त वाक्य का अक्षर-अक्षर यह स्पष्ट घोषित कर रहा है कि श्रीसंघ को अत्यन्त सुदृढ़, सुसंगठित और अखंड बनाना ही आपके जीवन का एकमात्र प्रमुख ध्येय था। इसके लिए अवसर उपस्थित होने पर आप बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करने के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। जहां दूसरे सन्त इस पूज्य पदवी को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करते रहते हैं और अपने अनुयायी दो चार सन्तों को लेकर भी पूज्य या आचार्य बनने की भावना रखते हैं, वहां पूज्य श्री पंजाब केसरी १००८ काशीराम जी महाराज भारत भर में सबसे बड़ी पंजाब सम्प्रदाय के पूज्य पद पर प्रतिष्ठित होकर भी संघ की एकता की रक्षा के लिए उसे सहर्ष छोड़ देने को प्रस्तुत हैं। दोसौ के लगभग साधु-साध्वियों तथा लाखों श्रावक-श्राविकाओं के संघपति का पद कोई साधारण पद नहीं है।

६०० मील लम्बे और ५०० मील चौड़े क्षेत्र के संघ-नायक

श्री पूज्य पद को आप वीर प्रभु के एक शासन की स्थापना के लिए न्यौछावर करने के लिये सहर्ष तैय्यार हो गये थे। आप हृदय से चाहते थे कि वीरप्रभु के नाम पर ये जो छत्तीसों छोटे-मोटे स्वतन्त्र सम्प्रदाय चल पड़े हैं, वे सब एक वीर शासन संघ के रूप में अन्तर्भूत हो जाएं। इसीलिए वे आचार्य पद का परित्याग कर एक साधारण सेवक बनने के लिए समुद्यत रहते थे।

भले ही उस समय आपका यह शुभ संकल्प क्रियात्मक रूप ग्रहण न कर सका। पर इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि पूज्य श्री के हृदय में संघ की एकता के लिए एक अनिर्वचनीय लगन थी। और वे इसी के लिए जन्म भर सतत प्रयत्नशील रहे।

बम्बई श्रीसंघ के प्रमुख, वेलजी लखम जी भाई नघु, मंत्री श्री जमनादास भाई गिरधर भाई, सेठ मेघ जी भाई ठोभण, डा० नारायण जी भाई, टी० जी० शाह, तथा कान्फ्रेंस के सेक्रेट्रियों ने पूज्य श्री के प्रति अपार भक्ति भाव प्रदर्शित किया।

गुजरात में पदार्पण का निर्णय—

पंजाब श्रीसंघ की ओर से अब तक अनेक स्थानों पर अनेक वार अनेक डेपुटेशनों ने श्रीसेवा में समुपस्थित हो कर पंजाब परसने की आग्रह भरी विनतियाँ की थी। इधर पूज्य श्री को बम्बई का पानी भी अनुकूल न होने के कारण शारीरिक व्याधियाँ उत्पन्न होने लग पड़ी थी। अतः आपने अपना कार्य-क्रम पंजाब के नगरों को स्पर्शने का बना लिया था। किन्तु इधर गुजरात काठियावाड़ के बड़े बड़े नगरों के कई डेपूटेशन भी बम्बई में पूज्य श्री की सेवा में आये और गुजरात काठियावाड़ पधारने की प्रार्थना करने लगे।

काठियावाड़ी भाई तो कान जी ऋषि के प्रचार को दबाने के

लिए पूज्यश्री के पीछे ही पड़ गये। अन्त में पूज्य श्री ने अहमदाबाद तक पधार कर फिर आगे बढ़ने की भावना के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए कह दिया। इस प्रकार यद्यपि पूज्यश्री ने सेवा भाव से प्रेरित होकर अहमदाबाद की ओर जाने की स्वीकृति दे दी थी, तथापि आपकी शारीरिक दशा ऐसी नहीं थी कि यात्रा के कठोर कष्टों को सहन कर सकते।

शरीर से दुर्बलतर होते हुए भी आप सतत कार्य-तत्पर रहते थे। ध्यान की प्रवृत्ति बढ़ गई थी, बात चीत करना कम हो गया था। आप अधिकतर एकान्त स्वाध्याय और ध्यान में मग्न रहने लगे थे। प्रत्येक आवश्यक परामर्श तथा उसके सम्बन्ध में निर्णय आदि श्री पं० मुनि शुक्लचन्द जी महाराज आदि साथी मुनियों से ही करने पड़ते थे। विशेष अवसर पर ही पूज्य श्री के दर्शन होने लगे थे। इस समय पूज्य श्री के भाव आत्मोन्नति के लिए अत्युत्कृष्ट हो गये थे। समाज-हित के सिवा आप कभी कोई चर्चा न करते थे। आप इतने मधुर और प्रिय वचन बोलते थे कि दर्शनार्थी परम प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते।

पूज्य श्री के हृदय में समाजोद्धार की भावना इतनी प्रबल थी कि शरीर के साथ न देने पर भी आपने गुजरात की ओर विहार करने का निर्णय कर लिया।

बम्बई से प्रस्थान—

अपने पूर्व निर्णयानुसार पंजाब की ओर प्रस्थान का विचार परित्याग कर काठियावाड़ परसने की भावना से चातुर्मास के समाप्त होते ही बम्बई से विहार कर दिया। यहाँ से प्रस्थान कर मार्ग में अनेक छोटे-बड़े ग्राम नगरों में सद्धर्म का दिव्यसंदेश देते हुए आप गुजरात के प्रमुख नगर अहमदाबाद की ओर बढ़ने लगे।

— — —

गुजरात के प्राङ्गण में

बम्बई से विचरते हुए पूज्य श्री सूरत पधारे। यहाँ के शिवराम जी आदि उत्साही कार्यकर्ताओं ने आपके स्वागत सत्कार और व्याख्यान आदि का सुन्दर आयोजन किया। सूरत का अधिकतर जैन समाज मूर्तिपूजक है, पर वहां के लोगों ने भी आपका हृदय से स्वागत किया।

भड़ोंच—

सूरत से आप भड़ोंच पधारे। यहां पर भी आप का वैसा ही स्वागत हुआ। त्याग प्रत्याख्यान भी हुए। आस-पास के कई भाई दर्शनार्थ यहां पहुंचे।

बड़ोदा—

यह गुजरात की एक अत्यन्त उन्नत रियासत है। यहां के लोग पंजाब केसरी की सिंह गर्जना को सुनकर चकित हो गये। इधर के संतों में पारस्परिक फूट के कारण आत्म तेज का कहीं कोई चिन्ह नहीं मिलता, किन्तु पंजाब केसरी तो संगठन और एकता के प्रत्यक्ष प्रतीक थे। यही कारण है कि आपकी वाणी में एक अपूर्व ओज तथा मुख मंडल पर दिव्य तेज झलकता रहता था। इसका यहां की जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

अहमदाबाद—

अनेक ग्रामानुग्राम और नगरानुनगर विचरते हुए पूज्य श्री यहां से अहमदाबाद पधारे। काठियावाड़ के अग्रणी यहां ६वीं बार डेपुटेशन लेकर आये। काठियावाड़ी भाईयों की अति आग्रह भरी विनती को देखते हुए पूज्य श्री बड़े भारी असमंजस में पड़ गये। राजकोट के भाई आशावादी थे, उन्होंने एक दो तीन बार नहीं प्रत्युत ६ बार अत्यन्त करुण शब्दों में पूज्य श्री से प्रार्थना की थी।

इस बार के डेपुटेशन में सर्व श्री चुन्नीलालजी वोरा ठाकरसी भाई, माणीलाल भाई, प्राण जीवन भाई, मुरारजी शाह आदि मुख्य-मुख्य सज्जनों ने फिर प्रार्थना की। ये सब जैन धर्म के अच्छे ज्ञाता श्रावक थे। उनके हृदयों में अपने भाईयों के रक्षण की उत्कट लालसा लहरा रही थी। पूज्य श्री ने इनकी विनती का आदर करते हुए भी अपनी स्थिति को देखकर स्वीकृति प्रदान नहीं की।

वीरम गांव के कलोल गाँव में पूज्य श्री का भावोद्रेक—

पूज्य श्री अहमदाबाद से चलकर कलोल गांव पधारे। यहां पर पूज्य श्री जेसिंह भाई, शान्तिलाल भाइ के मील के बंगल में विराजे। कलोल में दरियापुरी सम्प्रदाय के पूज्य श्री उत्तमचन्दजी महाराज वृद्धावस्था के कारण स्थविर भाव से विराज रहे थे। आपने हार्दिक स्वागत, सत्कार तथा सरल स्वभाव से पूज्य श्री को हृदय में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। वहां पर राजकोट निवासी काठियावाड़ी भाइयों का प्रतिनिधि मंडल १० वीं वार श्री चरणों में उपस्थित हुआ। इस बार भी पूज्य श्री ने

उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। इस पर वे लोग अत्यन्त निराश हो गये। उनकी आंखों से आंसू टपटपाने लगे। प्राण जीवन भाई ने अपनी करुण अवस्था का चित्र पूज्य श्री के व्याख्यान के समय इस प्रकार अंकित किया कि सबके हृदय भर आये। कानजी ऋषि के मिथ्या धर्म प्रचार का खंडन करने का सामर्थ्य पूज्य श्री के सिवाय अन्य किसी में नहीं है, यह कहते हुए जब आपने वहां के जैन समाज की दुर्दशा का मर्मस्पर्शी वर्णन किया तो पूज्य श्री के साथी वे मुनिगण भी जो अब तक तत्काल पंजाब पहुंचने के लिए आतुर हो रहे थे, काठियावाड़ स्पर्शने को उद्यत हो गये। इस पर पूज्य श्री का हृदय भी द्रवित हो गया और उन्होंने काठियावाड़ की ओर विहार करने का संकल्प कर लिया।

इसी समय जोधपुर के भाइयों का एक प्रतिनिधि मंडल भी यहां आ पहुंचा। और वह पूज्यश्री से जोधपुर पधारने की प्रार्थना करने लगा। दोनों ओर से खींचा तानी होने लगी, पर पूज्य श्री ने पहले से ही काठियावाड़ स्पर्शने का निश्चय कर लिया था, अतः जोधपुर वासियों को आश्वासन देकर आपने राजकोट की विनति स्वीकार करली।

धर्म की रक्षा व मिथ्या-प्रचार के खंडन की प्रबल प्रेरणा से प्रेरित होकर इस वृद्ध और अस्वस्थ पंजाब केसरी ने अपनी शारीरिक दुर्बलता की परवाह न करते हुए राजकोट की ओर विहार कर दिया।

कानजी-मत-ध्वान्त निवारण

कानजी और उनके सिद्धान्त—

कानजी बोटाद स्थानक वासी साधु सम्प्रदाय के सुन्दर विशाल गौराकृति, प्रशस्तोन्नत-मस्तक, शास्त्रज्ञ अद्‌भुत व्याख्याता साधु थे उनके व्याख्यानों में जादू का सा आकर्षण रहता था। इनके मस्तिष्क में स्वयं प्रसिद्ध बनने की कल्पना जागृत हुई। इस कल्पना को साकार रूप प्रदान करने के लिए स्थानकवासी समाज की दीक्षा छोड़कर वे अपने आपको ब्रह्मज्ञानी कहने लगे। उन्होंने काठिवाड़ के गाँवों में अपने स्थानक बनाकर गाँवों के गाँवों को अपना अनुयायी बना लिया था। स्थानकवासी, मन्दिर मार्गी और दिगम्बर सभी साधुओं को अपने पास रखकर स्वयं सभी सम्प्रदायों के प्रधान बन रहे थे, उन्होंने अपने निजी धर्म-ग्रन्थ बनाये। सामान्यतया दिगम्बर मत की ओर उनका अधिक झुकाव था। उन्हें साक्षात् तीर्थंकर मान कर सोलह सिंगारों से सुसज्जित अप्सराओं के समान सुन्दरी नारियाँ तथा मनुष्य रूपी देवता उनके समक्ष प्रतिदिन नृत्य किया करते थे।

वहाँ चौबीसों घण्टे खूब माल उड़ा करते हैं और जो भी भक्त जाए उसकी बड़ी सेवा सुश्रूषा होती है। यदि कोई कुछ

प्रश्न कर बैठता तो वे उसे बहुत बुरी तरह से डाँट देते। अतः कोई प्रश्न करने का साहस ही न करता। उनके भक्त लोग किसी प्रकार का प्रश्न करने ही न देते। वास्तव में उनका कोई मत या सिद्धान्त नहीं है, अपने वाक्य ही आप्त वाक्य हैं। उन्होंने सोनगढ़ में एक भव्य मठ बनाया हुआ है। इस मठ में नानाविध राजसी ठाठ-बाट और सब प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध है, मठ क्या है पृथ्वी पर दूसरी स्वर्गपुरी ही है। ये कानजी ऋषि काठियावाड़ भर में सोनगढ़ के दिव्य संत के नाम से विख्यात हैं।

सिद्धान्त—

इनके अटपटे सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय देना यहाँ अप्रासाङ्गिक न होगा। इनके मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं—

१ मैं बोलता हूँ मैं चलता हूँ, खाता हूँ मैं लिखता हूँ ऐसा मानना मिथ्यात्व और पाखण्ड है। इसलिए ऐसी मान्यता रखने वालों को हजार गाय मारने के समान पाप लगता है।

२ अधिक से अधिक क्रियाएँ करके यह आत्मा नवग्रैवेयक हो आया, परन्तु आत्मकल्याण नहीं हुआ, इसलिए मैं सामायिक करूं उपवास करू, ऐसा जो विकल्प लाना है वह भयंकर से भयंकर अज्ञान है। कारण किसी भी क्रिया के करने का आत्म का स्वभाव और धर्म नहीं है। इसलिए सामायिक करने वाला सत्तर क्रोड़ा क्रोड़ि सागरोपम का मोहनीय कर्म बान्धता है, और समाई करता हुआ सम्यक दृष्टि निर्जरा करता है।

३ आत्मा को मोक्ष नहीं होता, परन्तु समझा जाता है। कारण कि आत्मा बन्धी हुई ही नहीं। और वह शरीर से भिन्न है, अज्ञान से आत्मा ने यह मान रक्खा है कि मैं बन्धी हुई हूँ। यह मान्यता टल जाय और इस प्रकार समझे कि मैं शुद्ध

स्वरूपी ज्ञाता हूं और यह समझ आ जाय तो इसका मोक्ष हो जाता है।

४ श्वेताम्बरों के सिद्धान्त में एक दया का ही वर्णन है, जिससे एकान्त पुण्य बनता है, इसलिए वह छोड़ने योग्य है। त्याग करना, किसी जीव को बचाना, किसी जीव की दया पालना यह आत्मा का धर्म ही नहीं है। मैं दूसरों को बचाऊं, या मैं दूसरों को दुःख दूं ऐसा मानना और करना मिथ्यात्व अज्ञान और पाखण्ड है।

५ आत्मा को जान लेना मात्र ही सब क्रियाओं का अन्त है। यही सम्यक् ज्ञान है।

६ सम्यक्ज्ञान के बाद क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती, सम्यक ज्ञान ही मोक्ष है कोई दूसरी वस्तु नही।

७ शरीर की भिन्नता जान लेना धार्मिकता पा लेना है। धर्म क्रिया पालने से नहीं अपितु आत्मा से 'अहं' या 'मैं पन' का नाश करने से होता है।

८ दया दानादि क्रियाएँ मनुष्य को तारने में समर्थ नहीं हैं। ये त्याज्य हैं।

९ आनन्द में भोगोपभोग करते हुए सम्यक् ज्ञान के द्वारा मनुष्य मुक्त समझा जाता है मोक्ष निराली वस्तु है।

ऐसे ही अनेक भ्रान्त सिद्धान्तों के द्वारा उन्होंने श्रावकों को अपने वश में कर लिया था।

स्पष्ट है कि उक्त सिद्धान्त अत्यन्त दोषावह, अनर्थकारी, तथा भव्य आत्माओं को पतन के मार्ग पर अग्रसर कराने वाले हैं। धर्म के नाम पर ऐसे विषैले, और लोगों को गुमराह करने वाले विचारों का खण्डन करना परमावश्यक था। पर अब तक किसी

माई के लाल ने ऐसा साहस नहीं दिखाया था कि कानजी के उक्त कपोल कल्पित मत के विरुद्ध कुछ कह सके। इसलिए उनके दिन दुगुने और रात चौगुने प्रचार को बढ़ते देख सुश्रावकों के हृदय अन्दर ही अन्दर दुःखी हो रहे थे। पर वे कर कुछ नहीं सकते थे। उन्हें ऐसा कोई वीर केसरी दिखाई ही न देता था जो थम ठोक कर कानजी से लोहा ले सके।

सौभाग्य से जब पूज्यश्री पंजाबकेसरी भारत भ्रमण करते हुए बम्बई पधारे तो काठियावाड़ी श्रावकों के हृदयों में एक अपूर्व आशा और उत्साह की लहर दौड़ गई। उन्हें विश्वास हो गया कि पूज्य श्री पंजाब केसरी काशीराम जी महाराज ही कानजी की करतूतों की कलाई खोल सकते हैं। इसीलिए दस बार प्रार्थना कर अन्त में पूज्य श्री को काठियावाड़ परसने के लिए प्रोत्साहित कर ही दिया।

पूज्य श्री तो प्रथम से ही मिथ्या मत के ध्वान्त का निवारण करने के लिये सर्वत्र सत्य के सूर्य का प्रकाश करते आ रहे थे। इसी अपनी परम कारुणिक प्रकृति के अनुसार पराकाष्ठा की निर्बलता और अस्वस्थता के रहते हुए भी आप काठियावाड़ की ओर चल ही तो पड़े।

कलोल से पूज्य श्री वीरम गाँव होते हुए बढ़माण शहर, और बढ़माण कैम्प पधारे। यहां के राजा के प्रधान पालनपुर निवासी श्री मणीलाल जी, बड़े धर्मानुरागी सज्जन हैं। उनकी बहन ने दीक्षा ली हुई है, आपने पूज्य श्री के स्वागत सत्कार और व्याख्यान आदि का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर धर्म प्रचार के कार्य में स्तुत्य सहयोग प्रदान किया। यहां पर सैंकड़ों भाइयों ने कानजी के मत का परित्याग कर पूज्य श्री से सत्य श्रद्धा ग्रहण की। यहां से आप लीमड़ी पधारे।

पालियाद—

आप लीमड़ी से पालियाद पहुंचे। यहां के धर्मानुरागी श्रावकों को देख कर पूज्य श्री ने उन्हें तुङ्गिया नगरी के श्रावकों से उपमा दी। ये लोग बड़े धर्मप्रेमी, सरलचित्त श्रावक हैं। यहां से विहार कर पूज्य श्री बोटाद पधारे।

बोटाद—

कानजी ने यहीं पर स्थानकवासी साधुवेश को छोड़कर अपना नया पंथ चलाया था। उनके मूलचन्द जी नामक गुरु भाई बड़े ही क्रिया पात्र थे।

यहां पर कानजी के मत के मानने वाले लोगों की संख्या बहुत बड़ी थी। अतः यहां के श्रावकों ने पूज्य श्री की सेवा में निवेदन किया कि आप कानजी के बारे में यहां कुछ न कहें, अन्यथा झगड़ा हो जायगा, यहां उनके बहुत भक्त अनुयायी हैं।

पूज्य श्री ने उत्तर दिया 'जैसे उनको अपने मत के प्रचार करने की स्वाधीनता है, उसी प्रकार मुझे भी वीर-धर्म को फैलाने की स्वतन्त्रता है, मुझे कौन रोक सकता है, मैं उपदेश देना अपना कर्तव्य समझता हूं। उपदेश देने में मुझे कोई भय नहीं है। यदि कोई अपत्ति आइ तो मैं सहर्ष सहन करूंगा।' आपने आगे फिर उन लोगों को ललकारते हुए कहा कि 'यह धर्मात्माओं के लक्षण नहीं हैं, धर्म विघातकों के लक्षण हैं। आप लोगों ने डर-कर जैन सिद्धान्तों का खून कर डाला है। यह पाखंडी लोग दिन-दहाड़े वीर सिद्धान्तों पर प्रहार करते हैं और आप लोग पुरुषत्व हीन बनकर सब कुछ सहन कर रहे हो। इस प्रकार अपने साथियों को खोते हुए उन्हें अधर्म मार्ग की ओर धकेल रहे हो। यह आपकी बड़ी दयनीय दशा है, आप लोगों को संगठित होकर उनके मत को एक दम उखाड़ फेंकना चाहिए।'

बोटाद में मूलचन्द जी महाराज आदि मुनि विराजमान थे। उनके साथी-संत भी विद्वान्, बुद्धिमान्, क्रिया-पात्र और आत्मार्थी थे। वे स्वयं विद्वान् होते हुए भी प्रतिदिन पंजाब केसरी के व्याख्यान सुनने के लिए आते थे।

यहाँ पर पूज्य श्री के प्रतिदिन सार्वजनिक व्याख्यान होते थे। जैन-अजैन सभी लोग व्याख्यानों से लाभ उठाते थे। पूज्य श्री ने जनता को अपने व्याख्यानों के द्वारा सत्य मार्ग और सम्यक्त्व का सच्चा स्वरूप समझाया।

आपके व्याख्यानों से बोटाद में तहलका सा मच गया। पंजाब केसरी-संत की सिंह गर्जना से स्थानीय जनसमूह चकित हो उठा। सभी लोग अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए दिन-रात पूज्य श्री के पास बैठे रहते। और प्रश्नोत्तर सुनने वालों की भीड़ लगी रहती। यहाँ तक कि आहार करने के लिये भी बड़ी कठिनता से समय निकाल पाते थे। लोगों में प्रश्नोत्तर कर सत्य की खोज करने की रुचि इस प्रकार जागृत हो गई कि तत्व विचार करते हुये रात्रि के बारह-एक तक बज जाते। इस प्रकार वहाँ रहते हुए पूज्य श्री पंजाब केसरी ने स्थानीय जनता में एक अद्भुत जागृति के भाव भर दिये। जिसे देखो उसी में नया जोश, नया उत्साह और नवीन चेतना का प्रवाह दिखाई देने लगा। परिणाम यह हुआ कि बड़े अच्छे-अच्छे जानकार भक्त भी आप से अपनी शंकाओं का समाधान कर श्रद्धा-शील बन गये। आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर सैंकड़ों नर नारियों ने नये सिरे से सम्यक्त्व को ग्रहण किया।

पूज्य पंजाब केसरी श्री काशीराम जी महाराज ने कानजी की ढोल की पोल खोलते हुए स्पष्ट और निर्भीक शब्दों में भरी सभा में कहा कि—

'कानजी की इच्छा 'केवली' बनकर तीर्थंकर की पदवी प्राप्त करने की थी। इसके लिए उन्होंने अपने साथियों को अवधि ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, आदि बनाना चाहा। संवत् १९८५ में बड़वाण, के एक व्यक्ति को दीक्षा देकर यह प्रपंच फैला दिया कि इस व्यक्ति को अवधि ज्ञान हो गया है। साथ ही उसे कहा गया कि तुम एक स्थान पर संथारा कर लो, अस्वीकार करने पर उसे एक मकान में बन्द कर दिया गया। तब दर्शनार्थियों की भीड़ ने आकर जिनमें बम्बई के टी० जी० शाह तथा और भी कई भाई थे, पूछा कि अवधिज्ञानी जी कहाँ हैं ? तो उत्तर मिला कि अन्दर नहीं जाना क्योंकि उन्हें केवल ज्ञान होने लग रहा है। इस पर दर्शनार्थियों ने उसे बाहर निकाला और पूछा तो उसने उत्तर दिया कि मुझे कोई ज्ञान नहीं हो रहा है। कानजी ने मुझे यों ही मकान में बन्द कर दिया और खाने, पीने को भी कुछ नहीं देते। अन्त में उसके कहने पर उसे घर पहुंचा दिया। वहाँ उसने अपनी स्त्री को तंग किया तो उसने उत्तर दिया कि तू तो मुझे छोड़कर साधु हो गया था, अब तेरा मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर भी वह जब बलात्कार करने लगा तो उसने अपने ऊपर तेल छिड़क कर अपने प्राणों की आहुति दे दी।

यह है उनके अवधि ज्ञानी जी की एक कथा।

एक नहीं इसी प्रकार के अनेक प्रपंच रचकर संसार को अपने अनुकूल बनाना ही उनका काम है। वे स्त्रियों से पैर पुजवाते है। सोनगढ़ में एक ही स्थान पर मठ बनाकर रहते और आडम्बर रचकर लोगों को अपने जाल में फंसाते हैं।

वह अपने आपको तीर्थंकर समझते और कहते हैं कि 'जिस किसी को शंका का समाधान करना हो तो वह मेरे सामने आकर

करें। मैं तो वहाँ या कहीं पर भी जाकर शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। मुझे कहीं जाकर शास्त्रार्थ और वाद-विवाद करने की क्या आवश्यकता है। मुझे कोई शंका ही नहीं है, मैं स्वयं आप्त रूप हूँ, मुझे सर्वतत्व भासित हो रहे हैं। मैं सत्य का प्रचार कर रहा हूं फिर मुझे अपने सत्य में शंका लाने की आवश्यकता ही क्या है? यदि जिस किसी का मेरे मत में शंका हो तो वह यहाँ आकर समाधान कर सकता है।'

पर मैं कहता हूं कि यदि वे सच्चे हैं तो अपनी गुफा छोड़कर मैदान में आएं, और शास्त्रार्थ करलें। यदि वे हमसे शास्त्रार्थ नहीं करते हैं तो संसार को समझ लेना चाहिये कि वे और उनका मत सर्वथा झूठा है।

मैं उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये वह जैसे भी कहें प्रतिक्षण प्रस्तुत हूँ।

पंजाब केसरी की सिंह गर्जना को सुनकर उनका दिल दहल उठा, और वे तब तक सोनगढ़ी की गुफा से बाहर नहीं निकले जब तक उधर पूज्य श्री विचरते रहे। पूज्य श्री ने गाँव-गाँव मे घूम-घूमकर लगभग २५ हजार भटके हुए व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखाया, और उनके हृदय में सम्यक्त्व के प्रति श्रद्धा और प्ररूपणा के भाव जागृत किये।

यदि पूज्य श्री कानजी के पीछे पड़ जाते तो निश्चित ही उनकी जड़ें उखाड़ फेंकते। पर इस कार्य के लिये लम्बे समय की आवश्यकता थी और पूज्य श्री को पंजाब की ओर प्रस्थान करना था। साथ ही आपने पानी मथने की अपेक्षा सद्धर्म के प्रचार में समय बिताना ही श्रेष्ठ समझा। फिर भी आपके काठियावाड़ परसने से समाज को अनुपम लाभ हुआ, इसमें कुछ सन्देह नहीं। कानजी के अनेक अनुयायियों ने सत्य तत्व को पहचान कर

जैन धर्म की शरण ली। और जनता में सत्य के सूर्य का प्रकाश जगमगाने लगा।

बोटाद से आप दामनगर पधारे। यहाँ पर दामोदर भाई नामक एक बड़े शास्त्र निष्णात श्रावक थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान अगाध था। उनके तात्विक वचन, श्रवणीय और मननीय होते थे। बड़े-बड़े संत उनसे शास्त्रीय विषयों का समाधान करते थे। पूज्य श्री ने भी उनसे पर्याप्त शास्त्र चर्चा करते हुए उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा की। दामोदर भाई ने पूज्य श्री के समक्ष अपनी अनेक जटिल शंकाएँ उपस्थित कीं, तो उन्होंने इन शंकाओं का ऐस सुन्दर समाधान किया कि दामोदर भाई आनन्द विभोर हो उठे। उनके मुख से सहसा निकल पड़ा कि–'धन्य हैं पूज्य श्री आज तक मेरी इन शंकाओं का किसी ने समाधान नहीं किया था।'

दामोदर भाई समाज के शास्त्र रत्न थे। आज वे इस असार संसार को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गये हैं। खेद है कि उनका वह ज्ञान भी उनके साथ ही चला गया।

मुनि श्री परसराम जी महाराज भी यहीं विराजते थे, उनकी ज्ञान-गोष्ठी, शंका-सामाधान, प्रश्नोत्तरों की परम्परा पर्याप्त दिनों तक चलती रही। उन्होंने पूज्य श्री की क्रियाशीलता की अत्यन्त प्रशंसा की।

दाम नगर से विहार कर यह मुनिमंडल लाठी और लाठी से से अमरेली पहुँचा। अमरेली के प्रमुख श्रावक प्रेमसुखचन्द्र भाई बड़े उत्साही कार्यकर्त्ता थे, किन्तु आप पर भी कानजी का रंग चढ़ गया था, और धार्मिक श्रद्धा विकृत हो गई थी। पूज्य श्री के व्याख्यानों तथा शंका समाधानों से आप फिर श्रद्धाशील बन गये, इसी प्रकार और भी अनेक कानजी के अनुयायियों ने फिर धर्म में श्रद्धा रख कर जैन धर्म को स्वीकार किया। पूज्य श्री के पधारने

से अमरेली का श्रीसंघ अत्यन्त उत्साहित हुआ।

यहां पर अम्बाले से रामलाल आदि भाई पूज्य श्री के दर्शनार्थ आए। वे प्रेमसुखचन्द भाई के यहां ठहरे हुए थे। प्रेमसुखचन्द भाई की एक बच्ची बहुत समय से अस्वस्थ थी। रामलाल जी ने उन्हें कहा आप इस बच्ची को पूज्य श्री से 'मंगली' सुनवाया करें, इस से यह ठीक हो जायगी। तदनुसार पूज्य श्री से कुछ दिन मंगली सुनने के पश्चात् वह ठीक हो गई।

बड़िया के राजा साहब का व्याख्यान श्रवण--

पूज्य श्री अपनी मुनि-मंडली के साथ अमरेली से बड़िया पधारे। यहाँ के राजा साहब के हृदय में इतनी श्रद्धा-भक्ति जागृत हुई कि वे घंटों तक आपके व्याख्यान श्रवणार्थ उपस्थित रहने लगे।

'जैन धर्म पालन-कर्ता गृहस्थ या राजा देश, धर्म, न्याय की कैसे रक्षा कर सकता है, राजा साहब की ऐसी अनेक शंकाओं का पूज्य श्री ने रोचक एवं वैज्ञानिक ढंग से समाधान किया। इस विषय पर एक अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान भी हुआ। कान जी ऋषि के भ्रम जाल में पड़े हुए सैंकड़ों सुश्रावकों का यहां पर भी उद्धार किया गया।

यहां से छोटे-मोटे ग्रामों में विचरते हुए यह साधु-संघ जूनागढ़ पहुंच गया। यहाँ पर जेठालाल भाई, प्राग जी भाई बड़े प्रसिद्ध व्यवसायी राष्ट्रसेवी धर्मप्रेमी थे। इनकी गणना रियासत के प्रमुख व्यक्तियों में की जाती थी। मुनि श्री प्राणजीवन जी महाराज भी अपने शिष्यों सहित यहीं विराजते थे। ये बड़े मिलनसार संत थे। यहाँ के सार्वजानिक व्याख्यानों का भी जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यहां से ग्रामानुग्राम विचरते और कानजी के मिथ्या प्रचार को रोकते हुए आप जेतपुर पधारे।

शान्ति लाल जी, व वनमाली सेठ आदि धर्मानुरागी भाईयों ने यहाँ संत सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त किया।

जैतपुर से आप गोन्डल पधारे। यहां पर गोन्डल सम्प्रदाय की सतिया का विराजना था। एक दीक्षा भी हो रही थी। पूज्य श्री ने दीक्षोत्सव के समय उपस्थित जनता के समक्ष सम्यक्त्व और सत्यसिद्धान्तों पर एक सार गर्भित भाषण दिया। यहां के श्रावकों ने कुछ दिन विराजने की बड़ी आग्रह भरी विनति की, पर राजकोट पहुँचना परमावश्यक था, अतः यह विनती स्वीकार नहीं की गई।

राजकोट में पदार्पण—

गोन्डल से चलकर पंजाब केसरी राजकोट छावनी पधारे। यहाँ पर हजारों नर-नारी बालक-वृद्ध राजकोट छावनी तथा शहर से चलकर मीलों दूर तक स्वागत करने के लिए आये। यहाँ के राज-महलों के दरीखाने में जहाँ राज दरबार लगता है, आपके दैनिक प्रवचन होते थे। कुछ दिनो तक यहाँ की जनता को अपने उपदेशामृतों से आल्हादित कर पूज्य श्री ने राज कोट नगर में पदार्पण किया। यहाँ पर भी आपके स्वागत में सम्मलित हजारों नर-नारियों ने आपकी चरण रज से अपने मस्तकों को पावन एवं सुशोभित कर अपने जीवन को सार्थक बनाया।

पूज्य श्री के पदार्पण से यहाँ की जनता तो ऐसी आल्हादित हुई, मानों कोई दिव्य पुरुष या साक्षात् तीर्थङ्कर ही उनके मध्य विराज रहा हो। जिधर देखो उधर से ही जनता बड़े हर्ष के साथ उमड़ती चली आती दिखाई देती थी।

सर्व श्री विराणी जी, चुनीलाल जो नाग जी बोरा, ठाकरसी भाई, प्राणजीवन भाई, मणिलाल भाई, आदि प्रमुख श्रावकों के सदुत्साह के कारण ही पूज्यश्री का राजकोट में पदार्पण हुआ था।

मुखवस्त्रिकासंबन्धी शंकासमाधान

सौराष्ट्र में धर्म प्रचार करते हुए पूज्य श्री जब विहार कर रहे थे तो स्थान-स्थान में मुखपत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाते थे। बात यह थी कि कानजी पहले श्वेताम्बर स्थानकवासी साधु थे, उस अवस्था में स्वभावतः वे मुखपत्ति बांधते ही थे। पर उन्होंने अपना नया आडम्बर रचने के लिए मुखवस्त्रिका उतार दी। इसलिए लोगों में मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध में विशेष शंका समाधान की भावना जागृत हो गई थी।

एक दिन इस सम्बन्ध में विविध शंकाओं का समाधान करते हुए पूज्य श्री ने उपस्थित जिज्ञासु श्रावकों के समक्ष इस प्रकार प्रवचन किया—

प्रिय श्रावक गण; तथा साधुसाध्वियों,

जैन साधुओं के मुख पर बान्धी जाने वाली मुख वस्त्रिका के सम्बन्ध में कभी-कभी भ्रम वश कुछ शंकाएँ व्यक्त की जाती हैं। पर स्मरण रखना चाहिए कि जैन धर्म का परम प्रमुख चिन्ह मुख वस्त्रिका ही है। मुखवस्त्रिका अनादि काल से जैन साधुओं के मुखों पर सुशोभित रही है। आस्तिक और नास्तिक धर्मों में यह अन्तर है कि नास्तिक सम्प्रदाय केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, पर आस्तिक धर्म प्रत्यक्ष के साथ अनुमान और शब्द या

आगम आदि को भी प्रमाण मानते हैं। प्रत्येक आस्तिक के लिए शास्त्रोक्त बात नियम या आदेश परम प्रामाण्य हैं। जैन धर्म एक आस्तिक धर्म है। अतः जैन धर्मानुयायी के लिए शास्त्र या आगम अथवा सूत्रों का आदेश परम माननीय होना ही चाहिए।

अतः सबसे पहले हमें यह विचार करना चाहिए कि शास्त्रों में मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध में कुछ आदेश है या नहीं। इसका विवेचन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन आगमों में स्थान-स्थान पर मुख वस्त्रिका के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं, यही नहीं उसके आकार प्रकार परिमाण आदि के सम्बन्ध में भी आदेश दिये गये हैं।

शास्त्र प्रामाण्य—

उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्याय की २३ वीं गाथा में साधु की पड़िलेहण क्रिया का क्रम बताते हुए लिखा है कि—

मुह पोत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं॥
गोच्छ लइयं गुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३

यहाँ सर्व प्रथम मुख वस्त्रिका के प्रतिलेखन का आदेश दिया गया है।

इसी प्रकार उपासक दशाङ्ग सूत्र के प्रथम अध्याय के ७५ वे पाठ में आनन्द जी श्रावक के अधिकार में कहा गया है कि—

तएणं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमण पारणगंसि पढ माए पोरिसिए। सज्झायं करेइ, बिइयाए पोरसिएज्झाणं झियाइ, तइयाए पोरिए। चतुरियं अचवल, मसं भंते मुह पोत्तियं पडिलेपइ रत्ता भायणा वत्थाइ पडिलेहेइ भायणा पमजइ रत्ता।'

भगवती सूत्र में भी मुख पत्तिका का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। अतः स्पष्ट सिद्ध होता है कि समग्र जैन शास्त्रों में मुख

वस्त्रिका जैन साधु के लिये परमावश्यक मानी गई है। प्राचीन युग के सभी जैन साधु अपने मुखों पर मुख वस्त्रिका बांधते थे। किन्तु आधुनिक मूर्तिपूजक श्वेताम्बर दिगम्बर आदि सम्प्रदायों को मानने वाले जैन साधुओं ने उसे मुख पर से उतार दिया है। जैन धर्मावलम्बी होते हुए भगवान महावीर स्वामी, पार्श्वनाथ प्रभु और ऋषभ देव स्वामी के मतावलम्बी साधुओं के लिए यह सर्वथा अशक्य था कि वे मुखपत्ति का सर्वथा त्याग कर दें। इस-लिए उन्होंने मुख से उतारते हुए एक बड़ा ही विचित्र और लंगड़ा सा बहाना ढूंढ निकाला कि जैन साधु के लिए मुख-वस्त्रिका आवश्यक है इसमें तो कुछ संदेह नहीं, किन्तु मुख वस्त्रिका मुख पर बांधने के लिए नहीं प्रत्युत हाथ में रखने के लिए है। ऐसा कह कर उन लोगों ने अपने मुख से मुख वस्त्रिका उतारते हुए अपने हाथ में एक कपड़ा रखना शुरू कर दिया और बोलते हुए तथा बातचीत करते समय उस कपड़े को हाथ से मुख के आगे करने लग पड़े। उसी 'हस्तवस्त्र' को यह लोग 'मुख वस्त्रिका' कहने लग पड़े।

भला इन लोगों से पूछा जाय कि जिसका नाम ही 'मुख वस्त्रिका' है वह भला हाथ में कैसे रह सकती है। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कि कोई कर्ण 'फूल' को कहे कि हाथ की अंगूठी कर्ण 'फूल' है। अरे भाई कर्ण 'फूल' तो उसी को कहेंगे, जो कि कानों में पहना जाय। अथवा यूं कहे कि कोई स्त्री कर्ण फूल को हाथ में लिए फिरे और कहे कि देखो मेरे पास कर्ण फूल है, पर मैं इसे कानों में न पहन कर हाथों में लिए फिरती हूँ' तो सभी लोग उसे मूर्ख नहीं तो क्या कहेंगे। 'रिस्टवाच' को हाथ पर ही बाँधा जाता है यदि कोई उसे हाथ में लिए फिरे तो कोई उसे समझदार नहीं, कह सकता। अंगुलियों में धारण किए जाने

वाले आभूषण को ही अंगुलीयक या अंगूठी कहते हैं, पर जैसे कोई अंगुलियक को 'अंगुलियों' में न पहन कर हाथ में रखे तो उचित न होगा।

इसी प्रकार जो साधु मुख वस्त्रिका को मुख पर न बांधकर हाथ में लिए फिरते हैं, उन्हें क्या कहा जाय। फिर ये लोग न जाने क्यों दुराग्रह वश ऐसा कहने का साहस करते हैं कि शास्त्रों में मुखपत्ति का तो वर्णन है, पर कहीं यह स्पष्ट आदेश नहीं है कि मुखपती मुख पर ही बांधी जाय। ऐसे लोगों के समाधानार्थ यहां कुछ ऐसे प्रमाण उपस्थित करने आवश्यक हैं, जिन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि मुख वस्त्रिका को पहले सभी साधु चाहे वह श्वेताम्बर हो चाहे दिगम्बर मुख पर ही बांधते थे। मुख वस्त्रिका को हाथ में रखने की प्रथा सर्वथा कपोल कल्पित और अर्वाचीन है। इसके इसके लिये हम सर्वप्रथम हाथ में मुख पत्ती रखने वाले मूर्ति पूजकों के मान्य ग्रन्थ महानिशीथ सूत्र के ७ वें अध्याय का एक प्रमाण देते हैं वहां लिखा है कि—

कान में डाली हुई मुखवस्त्रिका के बिना इरिया वही क्रिया करने पर साधु को मिथ्या दुष्कृत या पुरिमार्द्ध प्रायश्चित्त आता है।

'इसी प्रकार देवसूरि जी' समाचारी ग्रन्थ में लिखते हैं कि—

"मुख वस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बध्वा"

अर्थात् "मुख-वस्त्रिक की प्रतिलेखना कर मुँह पर बान्ध कर"

(३) भुवनभानु केवली के रास में रोहिणी के अधिकार वाली ६६ वीं ढल में लिखा है कि -

"मुह पत्तिए मुख बांधी-नेरे" तुमे बेसो छो जेम,
तिम मुखे डुंचो देइनेरे, बीजे वेसाए केम ॥३॥

अर्थात रोहिणी कहती है कि हे गुराणी जी! जिस प्रकार

मुख वस्त्रिका मुख पर बांधकर तुम बैठती हो, उस प्रकार मुख पर डुंचा देकर दूसरे से कैसे बेठा जाय।

यहीं तक नहीं स्थानक वासी साधुओं के समान ही मूर्ति पूजक आचार्यों ने भी मृतक साधु के मुख पर भी मुख वस्त्रिका बांधने का स्पष्ट आदेश दिया है। साधू समाचारी में लिखा है कि--

मयग कलेवर इ वित्त कुकुं माइहिं विलिं पित्ता य अवंगं थोल पइ' परि हाविय, "पुत्ति मुखे बंधीय" आदि

इन सब प्रमाणों के आधार पर यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि मुख वस्त्रिका जैन साधु का अपरिहार्य लिंग या चिन्ह है।

जैनेतर शास्त्र या विद्वान् भी जहाँ-जहाँ जैन साधु का वर्णन करते हैं वहां उसकी सबसे बड़ी विशेषता यही बताते हैं कि उनके मुख पर मुख वस्त्रिका बन्धी रहती है। शिवपुराण ज्ञान संहिता अध्याय २१ के २५ वें श्लोक में जैन साधुओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

हस्ते पात्रं दधानाश्च तुंडे वस्त्रस्य धारकाः।
मलिनान्येव च वासांसि धारयन्तोऽल्पभाषिणः।

इन सब प्रमाणों से आशा है अब यह तो भली-भाँति समझ में आ गया होगा कि शास्त्रों में सर्वत्र मुखपत्ति को मुख पर बांधने का ही उल्लेख है, हाथ में रखने का कहीं नहीं।

मुखपत्ति के लाभ—

मुँह पर मुख वस्त्रिका बान्धने का उद्देश्य, प्रयोजन या लाभ तो स्पष्ट ही है कि जैन साधुओं के लिए पंच महाव्रतों का पालन परमावश्यक है। उनमें सर्वप्रथम अहिंसाव्रत के पालन के लिए मुख वस्त्रिका परम सहायक है। वायुकाय जीवों का शस्त्र वायु ही है, मुख से निकली हुई पूवास वायु के द्वारा उन वायुकाय जीवों की

हत्या न हो इसीलिए जैन साधु अहर्निश अपने मुख पर मुख वस्त्रिका बाँधे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त मुख वस्त्रिका जैन साधुओं का प्रधान लिंग या चिन्ह भी है। सभी साधुओं का अपना-अपना कोई न कोई चिन्ह होता है। और जैन साधुओं का यही चिन्ह है।

इस प्रकार पूज्य श्री ने बतलाया कि सभी जैन साधु चाहें वे किसी भी सम्प्रदाय के हो पहले मुखपत्ति बान्धते थे। मूर्तिपूजक साधुओं के अनेक प्राचीन चित्र उपलब्ध होते है, जिनके मुखों पर मुख वस्त्रिका बन्धी हुई है। 'मुँहपत्ति चर्चा सार' नामक पुस्तक में वे चित्र प्रकाशित हुए हैं।

इतना होने पर भी कुछ लोग यह कुतर्क करते हैं कि 'शास्त्रों में 'मुख पत्ति' को कानों में धागा पिरो कर बान्धना कहीं नहीं लिखा।

सो यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध बात है। जब मुँहपत्ति को मुख पर बान्धना प्रमाणित हो गया तो उसमें सबसे सरल और सुविधा-जनक उपाय धागे में बान्धने के सिवाय और काई नहीं है। धागे को कानों में पिरोकर मुँहपत्ति बान्धने से अनेक लाभ हैं, जैसे कि इस प्रकार बान्धने से वायुकाय जीवों की विराधना भी नहीं होती और भाषण बात-चीत या प्रवचन आदि कार्य भी स्वाभाविक रूप से हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त पानी आदि पीते समय बार-बार खोलने या बान्धने का झगड़ा भी नहीं रहता।

अतः जैन साधुओं को मुख वस्त्रिका अवश्य बान्धनी ही चाहिए। हाथ में वस्त्र तो श्रावक या साधारण लोगों को भी रखना ही चाहिए। ऐसा करने से वायुकाय जीवों की विराधना से रक्षा तो होती ही है साथ ही अपने मुख की श्वास वायु द्वारा

कीटाणुओं का दूसरे व्यक्ति पर आक्रमण या मुख से थूक के छींटें आदि पड़ने का भय भी नहीं रहता। बाहरी दूषित वायुकण या कीटाणु भी हमारे मुख में प्रविष्ट नहीं हो सकते।

यदि कोई कहे कि श्वासोच्छ्वास तो नासिका के द्वारा भी होता है, उससे भी वायुकाय जीवों की हिंसा हो जायगी तो यह कहना भी तर्क संगत नहीं प्रतीत होता। क्योंकि प्राकृतिक वायु और विशेष रूप से प्रवाहित वायु की गति में बड़ा अन्तर होता है। नासिका द्वारा निसृत वायु से वायुकाय जीवों की हिंसा का भय उतना नहीं रहता जितना कि मुख वायु से। साथ ही श्वासोच्छ्वास से नहीं प्रत्युत नंगे मुख भाषा बोलने से वायुकायजीवों की हिंसा होती है, ऐसा भगवान् का कथन है।

भगवती शास्त्र में प्रश्न का उत्तर देते हुये भगवान् ने कहा कि इन्द्र भी जब खुले मुख बोलता है तो सावद्य भाषा बोलता है और मुख ढक कर बोलता है तो निरवद्य भाषा बोलता है।

अतः शास्त्र अनुमान और प्रत्यक्ष तीनों प्रमाणों से यह भली-भाँति सिद्ध होता है कि मुख वस्त्रिका जैन साधुओं का परमावश्यक चिन्ह है। मूर्ति पूजक या स्थानकवासी आदि सभी जैन साधु पहले अपने मुखों पर मुख वस्त्रिका बान्धते थे। यही कारण है कि सभी जैन साधु जो दुराग्रह या पक्ष-पात से हीन हैं, वे चाहें मुहपत्ति बान्धे या न बान्धे परन्तु यह स्वीकार अवश्य करते हैं कि जैन साधुओं को मुहपत्ति अवश्य बान्धनी चाहिए।

आत्माराम जी या बिजयानन्द जी सूरी नामक मूर्तिपूजक आचार्य ने तो आलमचन्द जी के नाम लिखे पत्र में स्पष्ट लिखा था कि—

'मुहपत्ति विशे हमारा कहना इतना ही है कि मुहपत्ति बान्धनी

अच्छी है और घणे दिनों से परम्परा चली आई है। इसको लोपना अच्छा नहीं है हम बान्धनी अच्छी जाणते हैं परन्तु हम ढूँढिये लोक में से मुह पत्ति तोड़ के निकले हैं इस वास्ते हम बान्ध नहीं सकते आदि।

अब तो मुहपत्ति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई शंका या सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

पूज्य श्री के ऐसे शास्त्रीय युक्ति व तर्कसङ्गत मुखपत्ति के समर्थन करने से सब लोगों ने सत्य तत्व को ग्रहण कर धन्य-धन्य कहते हुए पूज्य श्री के प्रति असीम श्रद्धाभाव प्रकट किये।

संवत १९९८ का चातुर्मास राजकोट में ही हुआ। यह चातुर्मास कानजी के मत खंडन के लिए बड़ा सफल और प्रभावशाली रहा। बड़े भारी सभा भवन में प्रतिदिन प्रवचन होते थे। हजारों की संख्या में नर-नारी व्याख्यान सुनने के लिए उपस्थित होते। यहाँ पर प्रथम पूज्य श्री प्रवचन करते और उनके पश्चात् वर्त्तमान युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज का बड़ा जोशीला और हृदयस्पर्शी व्याख्यान होता। परिणाम स्वरूप यहाँ धर्म ध्यान का खूब ठाठ लगा रहा। यहाँ के श्रावक गणों ने भी स्पृहणीय श्रद्धा दिखाई।

राजकोट में सिद्धान्तशाला की स्थापना—

पूज्य श्री के उपदेशों का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि तत्त्व प्रचार तथा मिथ्या विचारों के निवारण के लिए एक सिद्धान्तशाला की स्थापना की गई। यह सिद्धान्तशाला अब भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। यहाँ पर वृद्ध हो या युवक सभी धर्मानुरागी श्रावकगण शास्त्रों का मनन, अध्ययन एवं पारायण करते हैं।

उन्हीं दिनों चोटीला ग्राम में तेरापन्थी साधुओं ने चातुर्मास किया बात तो यह है कि जब साधुओं की न्यूनता के कारण अनेक क्षेत्र स्थानकवासी मुनिराजों की कृपा के बिना कोरे ही रह जाते हैं, तो जिस किसी भी सम्प्रदाय का जो कोई भी साधु लोगों की धार्मिक प्रवृत्ति का लाभ उठाकर अपना अड्डा जमा लेता है। इसके अतिरिक्त जो मुनिराज हैं, उनमें भी क्षेत्र ममत्व की भावना बहुत अधिक है। वे अपने पूर्वपरिचित तथा ऐसे क्षेत्रों को छोड़ कर जहाँ उनका खूब स्वागत-सत्कार हो दूसरे क्षेत्रों को परसना ही नहीं चाहते। काठियावाड़ में एक भी तेरापन्थी घर नहीं था, पर दो श्रावकों को मून्ड कर कुछ साधु अहमदाबाद से चोटीला ग्राम में आ पहुँचे। और वहीं अपना चातुर्मास किया। पर 'पंजाबकेसरी' की सिंह गर्जना के आगे विभिन्न मत मातान्तरों के अनुयायी इन साम्प्रदायिक लोगों की दाल बिल्कुल नहीं गल पाई। पूज्य श्री ने अपने व्याख्यानों में लोगों को यह स्पष्ट समझा दिया कि तेरा पन्थ भी कानजी के मत की भाँति एकान्तवाद का मिथ्या प्रचारक है। यहाँ प्राणजीवन मुरार जी देसाई नामक स्कूलों के इन्सपैक्टर जैन धर्म के एक अच्छे ज्ञाता स्थानकवासी श्रावक थे। वे बड़े दीर्घदर्शी और विद्वज्जनों के तात्कालिक परीक्षक थे। उन्हीं ने पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज को तथा पूज्य पंजाब केसरी को राजकाट पधारने के लिए अत्यधिक प्रेरित किया था। उन्होंने पूज्य श्री को एक परमोच्चकोटि का संत बताते हुए अपने हार्दिक उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये थे—

'पंजाबी' मुनि जब से पधारे हैं, उनकी चरित्र सम्बन्धी परीक्षा हमने (छिपकर और प्रकट दोनों रूप से) की। अपनी क्रिया पालने में वे दृढ़ प्रतीत हुए। हमें विश्वास हो गया कि पंजाबी आचार्य और दूसरे सब मुनिगणों का आचार दूसरे सभी

प्रान्तों के साधुओं से ऊंचा है। सरलता भी जैसी इनके हृदय में है वैसी ही बाहर झलकती है।,'

यहाँ पर पंडितरत्न श्रीशुक्लचन्द्र जी महाराज के व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव रहा। इस प्रकार राजकोट का यह चातुर्मास काठियावाड़ी भाईयों के लिए बड़ा ही लाभदायक रहा। चौमासे के समाप्त होने पर पूज्य श्री ने यहाँ से विहार कर दिया।

हजारों नर-नारियों ने इस विहार में भाग लिया। यहाँ जाम नगर के श्रीसंघ ने पूज्य श्री को प्रार्थना की कि आप दो वर्ष तक यहीं विराजकर लोगों की श्रद्धा को ठीक करने के लिए धर्म प्रचार कीजिए। किन्तु पूज्य श्री इस प्राथेना को स्वीकार न कर सके।

मोरवी श्रीसंघ की ओर से मगनलाल भाई आदि कई भाईयों ने राजकोट में आकर पूज्य श्री से मोरवी परसने की प्रार्थना की थी। तदनुसार आप मोरवी पधारे, यहाँ पर सेठ हीरालाल जी भाई शास्त्र और स्तोक के अच्छे जानकार थे, वे अवधान प्रयोग भी करते थे। आप क्रियापात्र योग्य सयंमी के सिवा किसी दूसरे को वन्दना नमस्कार नहीं करते थे। व्याख्यान में बात-बात में तर्क करने की इनकी प्रवृत्ति थी। प्रश्न भी इनके इतने गम्भीर होते थे कि कोई साधारण व्यक्ति उनका उत्तर नहीं दे सकता। पर पूज्य श्री ने उनकी शंकाओं का इस प्रकार समाधान किया कि वह सर्वथा सन्तुष्ट हो गये। इस पर सब लोग कहने लगे कि हीरालाल जी भाई का आज तक किसी ने समाधान नहीं किया था, पूज्य श्री ने ही उन्हें सन्तुष्ट किया है। यहाँ पर कवि-रायचन्द जी के अनुयायी भी थे, वे अपना व्याख्यान आदि अलग ही करते थे। मोरवी में ७०० के लगभग स्थानक वासी जैन घर हैं, यहाँ आपके वैज्ञानिक व्याख्यानों का बड़ा प्रभाव हुआ।

मौरवी से विहार कर आप ध्रांगधरा पधारे। वहां से पाटन की ओर विहार हुआ। पाटन से सिद्धपुर और पालनपुर पधारे। यहाँ के सेठ अमृतलाल जी भाई बड़े समाज सेवक उत्साही कार्य कर्ता थे। वे पूज्य श्री का स्वागत करने के लिए बम्बई से पालनपुर आये थे, पर उनकी यह मनोकामना पूर्ण न हो सकी, पूज्य श्री के पालनपुर में पदार्पण के पूर्व ही हृदय गति रुक जाने से उनका स्वर्ग वास हो गया। उनकी धर्मपत्नी केसरबाई ने पूज्य श्री का अपूर्व स्वागत किया, और सेवा का लाभ लिया। यहाँ के श्रीसंघ ने तथा अन्य लोगों ने भी पूज्य श्री के उपदेशों से पर्याप्त लाभ उठाया। राजकोट के भाई पालनपुर तक पूज्य श्री के साथ पधारे थे।

पालनपुर से प्रस्थान कर पूज्य श्री पंजाव केसरी ग्रामानुग्राम विचरते हुए लम्बा मार्ग पार कर देलवाड़ा पधारे। यहाँ देवराज भाई की दीक्षा हुई। यहाँ के पुलिस इन्सपेक्टर मजीठा निवासी लाला काशीराम जी पंजाबी ने महाराज श्री के प्रति बड़ी भक्ति दिखलाई। और भक्तिवश दो पुलिस कांस्टेबलों को शिवगंज तक आपके साथ भेज दिया। देलवाड़ा से चलकर पूज्य श्री आबू व अचलगढ़ पधारे। आबू के मन्दिर अपनी अनुपम कला-कौशल के कारण विश्व भर में विख्यात हैं।

अचलगढ़ में विराजमान मूर्ति पूजक संत श्री शान्ति विजय जी ने पूज्य श्री की सेवा में आबू में कहलाया था कि मेरे पैर में चोट आई हुई है, अतः मैं आपकी सेवा में उपस्थित होने में विवश हूँ। पूज्य श्री स्वयं अचलगढ़ पधार कर दर्शनों से अनुग्रहीत करें तो मैं अपना सौभाग्य मानूंगा। इस पर पूज्य श्री ने श्री शुक्लचन्द जी महाराज आदि संतों को उनके पास भेजा। इन संतों का उन्होंने बड़े भक्तिभाव से स्वागत सत्कार किया।

दिगम्बरों की विचित्र मान्यताएँ

जैसा कि पहले कहा गया है कानजी की रुझान दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर अधिक थी। अतः यहाँ पर पूज्य श्री ने दिगम्बर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए बताया कि—

यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदाय भी जैनधर्म ही की एक शाखा है पर फिर भी उसकी बहुत सी मान्यताएँ विचित्र हैं। जैसा कि—

जैन साधुओं को नग्न ही रहना चाहिये, स्त्री की मुक्ति नहीं होती, केवली आहार नहीं करते आदि दिगम्बरों की ये मान्यताएँ सर्वथा निर्मूल है। सर्व प्रथम दिगम्बरों की प्रमुख मान्यता साधुओं के नग्न रहने के विषय में पूज्य श्री ने बताया कि—

भगवान् महावीर के श्रमण संघ में और दो मुनि संघ आकर सम्मिलित हुए थे। पहला भगवान् पार्श्वनाथ का मुनि संघ जो चतुर्याम अर्थात् चार महा व्रत वाला था, यह विविध रङ्ग वाले वस्त्रों का धारक था। इस संघ के आचार्य केशीकुमार थे, जिन्होंने गणधर गौतम स्वामी से परामर्श कर भगवान् महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश किया। दूसरा मंखली पुत्र गोशाल का मुनि संघ था, यह भगवान् महावीर के छद्मस्थ

अवस्था के एक शिष्य का संघ है, जो प्रधानतया नग्न ही रहा करता था। इसका आचार्य लोहार्य्य या अन्य कोई था, जिन्होंने अपने गुरु की आज्ञा स्वीकार कर अपने गुरु के भी गुरु भगवान् महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश किया था।

श्री सूत्र कृताङ्ग और भगवती सूत्र में इस मुनि संघ का विस्तृत वर्णन मिलता है।

'एनसाईक्लोपीडिया आफ रीलिजियन एन्ड एथिक्स' वोल्यूम १ पृष्ठ २५६ में ए. एफ. आर. होअरनल साहब ने इस मुनि संघ का परिचय देते हुए लिखा है कि—

उसके मत में १ शीतोदक २ बीजकाय ३ आधाकर्म और ४ स्त्री सेवन की मना नहीं है। (सूत्रकृताङ्ग) ये अचेलक हैं मुक्ताचार हैं हस्तावलेपन (करपात्र) हैं। एकागारिक (एक घर से आधा कर्मी भिक्षा लेने वाले) हैं। (मज्झिमनिकाय पृ० १४४ व ४८) यह मत पुरुषार्थ, पराक्रम का निषेध करता है और नीयति को ही प्रधान मानता है। इस संघ की मुनि परम्परा आजीवक त्रैराशिक दिगम्बर आदि नामों से विख्यात हैं।

आरम्भ में यह श्रमण संघ अविभक्त था। उसमें न वस्त्र का एकान्त आग्रह था न नग्नता का ही, इसी प्रकार छः सौ वर्ष तक अविभक्तता बनी रही। पर बाद में दिगम्बरत्व को प्रधानता देकर आजीवक संघ अलग हो गया। उस समय उसके आचार्य शिवभूति और कुन्दकुन्द आदि थे।

दिगम्बर साधु नग्नता के लिये यह तर्क उपस्थित करते हैं कि पंच महाव्रतधारी साधु को परिग्रह नहीं रखना चाहिये, वस्त्र, पात्र आदि का त्याग करना चाहिये। पर स्मरण रखना चाहिये कि दिगम्बर शास्त्रों में भी मूर्छा अर्थात् ममत्व को परिग्रह कहा

है। दिगम्बर साधु भी मोर के पंखों की पिच्छी, कमंडल, पुसताक आदि उपाधि रखते हैं, पर उनमें मूर्छा न होने के कारण ही उन्हें अपरिग्रही कहा जाता है तो क्या कारण है कि श्वेताम्बर आदि साधु वस्त्र आदि उपाधि रखने से अपरिग्रही न कहलाएँ। साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द ने पाँच प्रकार के वस्त्रों का निषेध किया है। इसका अर्थ यह है कि उन पाँचों के अतिरिक्त अन्य वस्त्रों को साधु धारण कर सकता है। दिगम्बरों का कथन है कि 'श्री उमा स्वामी जी महाराज भी नग्न माने अचेल परिषह मानते हैं। इससे सिद्ध होता है कि साधु का नग्न ही रहना चाहिये।'

किन्तु इस परिषह से तो नग्नता की नहीं प्रत्युत वस्त्रों की ही सिद्धि होती है। क्योंकि जिस प्रकार क्षुधा और पिपासा के सद्भाव में आहार और पानी की आवश्यकता होने पर भी अप्रासुकता आदि के कारण आहार पानी न मिले, या कम मिले तो भी काम चला लेवें दुःख न माने और सन्तुष्ट रहे। इस परिस्थिति में वहाँ क्षुत् पिपासा परिषह माने जाते हैं। जो संवर-रूप है। और आहार पानी को छोड़कर बैठ जाना तपस्या मानी जाती है जो निर्जरा का कारण रूप है, इसी प्रकार वस्त्र की अवश्यकता होने पर भी निर्दोष न मिलने के कारण अल्प वस्त्र से चलना पड़े या बिना वस्त्र रहना पड़े, उस अवस्था में अचेल परिषह माना जाता है। जो संवर रूप है। और वस्त्र को छोड़ बैठ जाना काय-क्लेश रूप तपस्या है। स्मरण रखना चाहिए कि मुनि धर्म में संवर अनिवार्य है और तपस्या यथेच्छ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुनियों के लिये आहार पानी जैसे अनिवार्य हैं, वैसे ही वस्त्र भी। अतः सिद्ध होता है कि क्षुत् परिषह से मुनियों के आहार का समर्थन होता है और अचेल

परिषह से मुनियों के वस्त्र का ही समर्थन होता है। हाँ तपस्या के लिए कोई मुनि कुछ समय तक वस्त्रों का परित्याग कर दे यह बात दूसरी है।

इन सब बातों को देखते हुए कहा जा सकता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के सम्प्रदाय के मुनि विविध रंगवाले वस्त्रों को धारण करने वाले थे। और भगवान महावीर स्वामी के अनुयायी मुनि श्वेत वस्त्र-धारी थे। यह अचेलक दिगम्बर सम्प्रदाय वस्तुतः आगम वर्णित सिद्धान्तों का अनुयायी न होकर कपोल कल्पित सिद्धान्तों पर ही आधारित है। क्योंकि साधु के लिए सदा नंगे रहने का कहीं विधान नहीं है।

इस के अतिरिक्त नंगे रहने से अनेक प्रकार की हानियाँ भी होती हैं। यहाँ तक कि दिगम्बर मुनि मुनीन्द्र सागर के साथ के तीन मुनियों की जबलपुर में कूपपतन आदि जैसी भयङ्कर शोचनीय दुर्दशा हुई थी, यह जैन जगत् से छिपा हुवा नहीं है। किन्तु वे बिचारे भी क्या करते। मनुष्य को नवम गुण स्थान तक वेदोदय होता है. जो दिगम्बर होने मात्र में दबता नहीं। दिगम्बरो के प्रायश्चित ग्रन्थ भी दिगम्बरी दशा में चतुर्थ व्रत दूषण को स्वीकार करते हैं।

सर्दियों में दिगम्बर मुनि घास में लेट जाते हैं और उनके सेवक चारों तरफ आग सुलगा देते हैं, ताकि मुनि राज को ठंड न लगे। पर ऐसी अवस्था में कई बार कई घास में आग लग जाने से मुनियों के झुलसकर प्राणों का अंत होते देखा है। अतः यह निश्चित होता है कि अनेकान्त जैन दर्शन का नग्नता या वस्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं। जैनमुनि नंगा हो या वस्त्र-धारक हो किन्तु वह भेख साधु अर्थात् मूर्छा रहित अवश्य होना चाहिए, वही मोक्ष का अधिकारी हो सकता है।

इसके पश्चात् दिगम्बरों की दूसरी मान्यता 'स्त्रियों की मुक्ति नहीं होती' इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए पूज्य श्री ने फरमाया कि दिगम्बर लोग स्त्री जाति में अनेक प्रकार की त्रुटियां बताकर कहते हैं कि स्त्री की कभी मुक्ति नहीं हो सकती आचार्य कुन्द-कुन्द कृत सूत्र प्राभृत की २६ वीं गाथा इस प्रकार है—

चित्ता सोहि ण सोसिं, दिल्लं भावं तहा सहावेण ।
विज्जादि मा तेसिं, इत्थोसु ण संकया झाण ॥

साथ ही यह भी कहा गया कि स्त्री के पहले के तीन संहनन का अभाव है, अतः मोक्ष नहीं मिलता। जैसा कि गोम्मटसार कर्म-काण्ड गाथा ३१-३२ में लिखा है कि—

सन्ती छ स्संहडणे, वज्जदि मेघं तदोपरं चापि ।
सेवट्टादि रहितो, पण पण च दुरेग संहडणो ॥

अंतिम तिग संहडण स्सुदय पुण कम्म भूमि महिलाणं ।
आदिम तिग संहडणं, णथितति जिणेहिं णिदिट्ठं ॥

अर्थात् स्त्रियों को युगलियक काल में पहले के तीन संहनन होते हैं, पीछे को तीन संहनन नहीं होते। बाद में कर्म-भूमि होते ही स्त्रियों के पहले तीन संहनन नहीं रहते। किन्तु अंत के तीन ही रहते हैं।

दिगम्बरों का यह कथन सर्वथा कपोल कल्पित है। क्योंकि जैसी त्रुटियाँ स्त्रियों में हैं, वैसी मनुष्यों में भी हैं। अतः त्रुटि के कारण स्त्रियों को मुक्ति का अधिकारी न मानना ठीक नहीं।

शेष रही तीन संहननों की बात सो भी दिगम्बरों की कपोल कल्पना मात्र है। यूं दिगम्बरियों के मान्य ग्रन्थ गोम्मट सार

की उक्त ३१ वीं गाथा में स्त्रियों के ६ संहनन की सत्ता भी स्वीकार की गई है--

वीसानपुंसगवेया, इत्थीवेया य हुंति चालीसा।
पुंवेदा अड्याला, सिद्धा इक्कम्भि समयम्मा॥

अर्थात् एक समय में एक साथ २० नपुंसक ४० स्त्री और पुरुष ४८ सिद्ध होते हैं अर्थात् मोक्ष में जाते हैं इन दिगम्बरों के मान्य प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि स्त्री की मुक्ति अवश्य हो सकती है, फिर भी क्योंकि दिगम्बर समाज नग्नता का समर्थक है, इसीलिए उसे क्रमशः वस्त्रधारी की मुक्ति और इसी सम्बन्ध में स्त्री मुक्ति का निषेध करना पड़ता है। यदि नग्नता की एकान्त मान्यता हट जाय तो स्त्रीमुक्ति के निषेध की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। यही कारण है कि अनेकान्त वाद के ज्ञाता कई दिगम्बर आचार्यों ने भी जैसा कि पहले बताया गया है स्त्री मुक्ति का यत्र-तत्र उल्लेख किया है।

इससे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि स्त्रियों की मुक्ति नहीं होती, दिगम्बरियों की यह मान्यता भी भ्रममूलक ही है। अब दिगम्बरियों के इस मन्तव्य पर विचार करना है कि जिन्हें केवल ज्ञान हो जाता है, उन्हें भूख प्यास आदि नहीं लगती और वे खाते-पीते नहीं हैं। इनका कहना है कि भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता आदि के साथ भूख प्यास भी केवली भगवान् के दूषण हैं। ये अठारह दूषण केवली भगवान् में नहीं रहते। जैसा कि बोध प्राभृत में लिखा है—

जर वाहि जम्म मरणं चउगइगमणं च पुण्ण पलं च।
हंतूण दोस कम्मे, हुओ णाणमयं च अरिहंतो॥
जर वाहि दुःख रहियं, आहार निहार वज्जियं विमलं।
सिहाणं खेल से दो, सात्थि दुगंद्दा य दोसो य॥

किन्तु दिगम्बरों की यह मान्यता भी सर्वथा कल्पित है। क्योंकि केवली भगवान के १८ दूषण भूख प्यास आदि नहीं प्रत्युत, अज्ञान, क्रोध, मद, मान माया, लोभ, हास्य, रति, अरति भय, शोक, निद्रा, हिंसा, भूठ, चोरी, प्रेम, क्रीड़ा, और ईर्ष्या हैं। केवली भगवान् में ये १८ दूषण नहीं रहते।

इससे सिद्ध होता है कि केवलज्ञानी आहार करते हैं उन्हें भूख प्यास आदि भी लगती है। अतः दिगम्बरियों का यह कहना कि केवली भगवान् नौ कर्म आहार लेते हैं और मनुष्य मनुष्य व तीयचं कवलाहार लेते हैं भी अप्रामाणिक है। क्योंकि केवली भगवान् भी तो मनुष्य ही हैं, जैसे बिना दीपक के तेल नहीं जलता उसी प्रकार बिना आहार के शरीर नहीं टिकता। केवली भगवान् का औदरिक शरीर है बड़ा मनुष्य है असाता वेदनीय है, भूख है आहार पर्याप्ती है और लाभान्तराय आदि का अभाव है, फिर क्या कारण है कि वे आहार न करें।

यदि कहो कि अनन्त ज्ञान के कारण वे आहार नहीं करते, या उन्हें भूख नहीं लगती। तो यह बात ठीक नहीं क्योंकि ज्ञान के होने से भूख नष्ट नहीं होती। ज्ञान वैराग्य कर्म और भूख का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। अतः यह कहना भ्रम है कि खाने से ज्ञान दब जायगा।

अनन्त दर्शन होने से भी केवली भगवान् को भूख नहीं लगती, यह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि दर्शनावरणीय कर्म और भूख का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। केवली भगवान अनन्त वीर्य वाले होते हैं। अतः क्षुधा को दबा लेते हैं ऐसा कहना भी उचित नहीं, क्योंकि जैसे वे आयुष्य को न बढ़ा सकते, और न घटा सकते हैं, वैसे ही क्षुधा को भी नहीं दबा

सकते। अतः सिद्ध होता है कि केवली भगवान शरीर संयम, धर्म और शुक्ल ध्यान आदि के कारण आहार लेते हैं। और आहार त्याग भी करते हैं। बोधप्राभृत षट् खन्डागम सूत्र, गोम्मट सार आदि दिगम्बरों के मान्य ग्रन्थों में भी केवल ज्ञानी के लिए कवलाहार ग्रहण का विधान है।

इन सब बातों से सिद्ध होता है कि दिगम्बरियों का यह कहना कि केवल ज्ञानी आहार नहीं लेते कल्पना मात्र है।

इस प्रकार पूज्य श्री ने यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि साधु की नग्नता, स्त्री का मोक्षमें न जाना, और केवल ज्ञानी का आहार न लेना दिगम्बरों की ये कल्पनाएँ अप्रामाणिक हैं। वास्तव में साधु के लिये तपस्या के समय अवस्था विशेष में या परिषह के रूप में अचेलक का विधान है। जैन शास्त्र स्त्रियों की भी वैसे ही मुक्ति स्वीकार करते हैं जैसे कि पुरुषों की। और केवल ज्ञान के प्राप्त हो जाने के पश्चात भी मनुष्य को भूख लगती है वह आहार लेता है यही सत्य सिद्धन्त है।

इस प्रकार पूज्य श्री जहाँ भी जाते वहीं पर धर्म की विविध गम्भीरतम निगूढ़ ग्रन्थियों का उद्घाटन करते हुए जनता को कृतार्थ करसरोहा की ओर विहार कर दिया।

मारवाड़ में

सिरोही सिरोही राज्य की राजधानी थी। यद्यपि यहाँ अधिकतर घर मन्दिर मार्गियों के ही थे, फिर भी उन लोगों ने आपका अभूतपूर्व स्वागत किया। आपके प्रवचनों में राजकर्मचारी भी बड़े उत्साह से भाग लेते थे। यहाँ स्थानक वासी संत बहुत कम पधारते हैं। अतः आप के पधारने से लोगों में एक आनन्द और उत्साह की लहर छागई। सिरोही से आप शिवगँज पधारे। मार्ग में विकट पर्वत पंक्तियों को पार करना पड़ा। यहाँ के पथरीले पथ को पार करते हुए पूज्य श्री के पाँवों में प्रखर पीड़ा होने लगी थी, चलते हुए बड़े बड़े पत्थर के टुकडे इधर से उधर उछलते रहते थे। हिंसकजन्तुओं से भरा हुआ मार्ग वास्तव में बड़ा ही विकट था। यहाँ पर किसी शेरनी के बच्चे को कोई पकड़ ले गए थे, अतः वह शेरनी क्रुद्ध होकर जंगल में गर्जती हुई इधर उधर घूमा करती और आने जाने वाले लोगों पर आक्रमण कर बैठती थी।

ऐसे हिंसक जंतुओं के भय से ही सुरक्षा के विचार से श्रीला०

काशीराम जी ने दो पुलिस कॉंस्टेबल पूज्य श्री के साथ दे दिए थे। मार्ग में एक स्थान पर सिंहनी की आहट पाकर उन सिपाहियों ने अपनी बन्दूकें सन्नद्ध कर ली। इस पर पूज्य श्री ने यह कह कर कि हमें किसी से कोई भय नहीं है। उनकी बंदूके खाली करवादी।

इसी समय पंजाब के २५ भाई पूज्य श्री की आवभगत के लिए आबू आये और आबू से सिरोही होते हुए शिवगंज पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए। इस प्रकार इन पंजाबी भाईयों ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर पूज्य श्री के पीछे पीछे भटकते हुए बड़ी कठिनाई के कश्चात् पूज्य श्री के दर्शनों का लाभ प्राप्त किया। शिवगंज में यद्यपि नगर के सेठ स्थान वासी जैन हैं श्रावक हैं, पर अधिकतर घर के मन्दिर मार्गियां के ही हैं, फिर भी आप का यहाँ बिना किसी भेद-भाव के हार्दिक स्वागत हुआ।

जोधपुर की ओर—

शिवगंज से पंजाबी भाईयों के साथ इस मुनिमंडल ने पाली की ओर प्रस्थान किया। पाली के श्री संघ के उत्साह का कोई ठिकाना ही न था, वे दो मंजिल आगे से ही स्वागत के लिए आ पहुँचे थे। यहीं पर गुलराज जी आदि सादड़ी के ३०-३५ भाईयों ने पूज्य श्री से सादड़ी परसने की प्रार्थना की, पर पूज्य श्री ने जब उधर जाने में असमर्थता प्रकट की तो वे लोग

सत्याग्रह करके वहीं बैठ गये। इस पर प्रवर्तक श्री भागमल जी महाराज को सादड़ी स्पर्शने का आदेश दे दिया गया। यहीं पर जोधपुर श्री संघ की ओर से जोधपुर में चातुर्मास करने की प्रार्थना के लिए एक डेपुटेशन आ पहुंचा। पूज्य श्री की इच्छा तो यह थी कि शीघ्र से शीघ्र जयपुर पहुंचा जाय, पर जोधपुर की ओर से निरन्तर दो वर्ष से प्रार्थनाएँ हो रही थी।

जोधपुर में दो पार्टियाँ थी। दोनों पार्टियों के मिलकर प्रार्थना करने पर पंजाब केसरी ने वहाँ पधारना स्वीकार कर लिया। यहाँ पेटी के नोहरे में आपको ठहराया गया, और व्याख्यानों का प्रबन्ध आबोर की हवेली में किया गया। श्री संघ ने संयुक्त रूप से पूज्य श्री की सेवा में चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। इस विनती को स्वीकार करते हुए—

संवत् १६६६ का चातुर्मास जोधपुर में किया गया। वहाँ पर बड़ी-बड़ी दूर के मारवाड़ी भाई दर्शनार्थ आते रहे, ताराचन्द जी व जगन्नाथ जी महाराज भी पंजाब से विहार कर यहाँ पधारे और पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए।

सर्व श्री तपस्वीलाल गोलेछा, रंगरूपमल जी भण्डारी, लच्छीराम जी सांड, रायसाहब विमलचन्द्र जी, विजयमल जी कुमठ, शम्भुनाथ जी, विजयराज काकेरिया, विजयमल जी, त्रिलोकचन्द्र जी कानमल्ल जी नाहटा, बिलम चन्द्र जी, विरति-चन्द्र जी, इन्द्रनाथ जी मोदी, नोरतनमल जी आदि यहाँ के धर्मानुरागी मुखिया गणों ने पूज्य श्री के स्वागत सत्कार का

बड़ा ही सुन्दर प्रबन्ध किया।

जोधपुर में एक डेपुटेशन बीकानेर से आया, जिसने पूज्य श्री से बीकानेर परसने की विनती की। यह डेपुटेशन पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज का सन्देश साथ लाया था कि 'मैं शारीरिक व्यथा के कारण विवश हूँ, आपकी सेवा में पहुँच नहीं सकता। मेरी आप से मिलने की प्रबल इच्छा है, अतः आपको कष्ट दे रहा हूं, आप इधर पधारने की कृपा करें तो बहुत अच्छा हो आदि।

यहाँ पर अन्य कई क्षेत्रों से भी डेपुटेशन आ रहे थे। इन सब स्थानों के भाइयों से पूज्य श्री ने कहा कि 'मेरी इच्छा पूज्य श्री जावाहराचार्य जी से मिलने की है, उनसे मिलकर कई सामाजिक और धार्मिक ग्रन्थियों को सुलझाने के मेरे भाव हैं। पूज्य श्री का हृदय मेरे हृदय के साथ है, मैं स्वयं मिलने का अवसर देख रहा हूं शाशनेश उन्हें स्वस्थ बनायें रक्खें, और मुझे भी वहाँ पहुंचाने की सामर्थ्य दें तो मैं बीकानेर जाऊँगा ऐसा विचार है। इसलिये मुझे दूसरे क्षेत्रों के लोग विवश न करें।'

यह सुनकर बीकानेर के भाई परम प्रसन्न हुए, इधर अमृतसर से आये हुए लाला रतनचन्द्र जी, लालूशाह जी, मुन्नीलालजी, मोतीलाल जी, चुन्नीलाल जी, नत्थुशाह जी, प्यारेलाल जी आदि भाइयों की इच्छा पूज्य श्री को पंजाब की ओर खींच ले

जाने की थी। इसके अतिरिक्त जैनधर्म दिवाकर उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज, गणी श्री उदयचन्द जी महाराज, गणावच्छेदक श्री बनवारीलाल जी महाराज आदि सभी संतों की प्रबल इच्छा और मांग थी कि पूज्य श्री अब शीघ्रातिशीघ्र पंजाब पधार जाएँ, तदनुसार आपने बीकानेर स्पर्शकर पँजाब पहुँचने के भाव व्यक्त किये थे।

जोधपुर में व्याख्यान, उपदेश और प्रवचनों की बडी धूम रही। यहाँ प्रति-दिन उपदेशामृत पान करने के लिये चार पाँच हजार लोग एकत्रित होते थे। युवाचार्य श्री शुक्लचन्द जी महाराज अपने मधुर वचनामृतों से जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा शांत करते हुए बड़े प्रभावशाली प्रवचन किया करते थे। धर्म-ध्यान और तपस्या का भी खूब ठाठ लगा रहा श्री ताराचन्द जी महाराज ने १४ श्री जौहरीलाल जी महाराज ने ११ और हरिश्चन्द्र जी मुनि ने २२ व्रत किए।

चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्य श्री ने यहाँ से विहार कर दिया। यह विहार जोधपुर के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा। हजारों नर-नारियों ने विहार में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया, विदाई का यह जुलूस मीलों लम्बा था। प्रायः सभी भक्तगणों के मुख-मण्डल प्रेमाश्रुओं से सिक्त हो रहे थे। जौधपुर से चलकर ३ मील दूर पूज्य श्री ठहरे। जुलूस भी आपके साथ यहाँ तक पहुँच गया। इस रात्रि रायसाहब विमलसिंह जी

भंडारी के बंगले में इस मुनि मंडल का विराजना हुआ। बहुत से सज्जन रात्रि को भी वहीं बने रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल के व्याख्यान में फिर हजारों लोग एकत्रित हुए। जोधपुर का यह चातुर्मास ऐसा भव्य रहा कि इसकी सुखद सुमधुर स्मृति सदा बनी रहेगी। यहां की वेश्याओं तक ने १० व्रत धारण किये।

पूज्य श्री के पेट में पीड़ा का प्रारम्भ—

जोधपुर से ग्रामानुग्राम विचरते हुए आप पीपाड़ की ओर बढ़ रहे थे कि नगर से तीन मील दूर के एक गाँव में पूज्य श्री ने अपनी पिपासा शांत करने के लिये छाछ क प्रयोग किया। वह छाछ अत्यन्त गर्मी और प्यास के समय पी गई थी, अतः उससे प्यास तो शांत हो गई पर पित्ताशय में पीड़ा प्रारम्भ हो गई। दूसरे दिन उसी दर्द की दशा में आप पीपाड़ पधारे। स्थानीय श्री संघ ने बड़े उत्साह के साथ आपका आतिथ्य सत्कार तथा औषधोपचार किया, पर व्यथा शांत न हुई।

श्री पंडितमुनि शुक्लचन्द्र जी का पूज्य श्री जवाहरलाल जी के पास प्रस्थान—

यहाँ पर पूज्य श्री ने श्रीपंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज को आदेश दिया कि आप अपने साथी ताराचन्द्र जी महाराज व सुदर्शन मुनि जी के साथ पूज्य श्री जवाहरलाल जी से मिलने के लिए बीकानेर की ओर विहार करदें। यदि मेरा कष्ट शांत हो गया तो मैं स्वयं भी उधर आने का प्रयत्न करूंगा ही, अन्यथा अजमेर की ओर विहार कर दूंगा। क्योंकि अजमेर अपेक्षाकृत निकट है। पंजाब केसरी की उक्त आज्ञानुसार तीनों संत पूज्य श्री

जवाहरलाल जी महाराज की सेवा में भीनासर पधारे। इधर से जींद (पंजाब का) चातुर्मास समाप्त कर मुनि श्री राजेन्द्र मुनि जी, सुरेन्द्र मुनि जी व महेन्द्र मुनि जी फरीदकोट, भटिन्डा, सँगरिया व सूरतगढ़ होते हुए श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज की सेवा में भीनासर पहुँच गये।

इधर पीपाड़ के भाइयों ने जोधपुर से डाक्टर बुला के औषधोपचार करने की प्रार्थना की। पर पूज्य श्री ने बाहर से मँगाई हुई औषधि का प्रयोग करना अस्वीकार कर दिया। यहाँ पर पीड़ा को कुछ भी लाभ न हुआ। अतः आचार्य श्री ने अजमेर से आये हुए गणेशीलाल जी श्रावक की विनती को स्वीकार करते हुए अजमेर की ओर विहार कर दिया।

गोविन्दगढ़ व पुष्कर परसते हुए पूज्य श्री ने बड़ी कठिनाई से अजमेर में पदार्पण किया।

नियम पालन में अपूर्व दृढ़ता—

अत्यधिक पीड़ा को देखकर तथा और अधिक विलम्ब करना अनुचित जानकर सेठ गणेशीलाल जी ने पूज्य श्री से औषधोपचार की प्रार्थना की। 'इस पर पूज्य श्री ने स्पष्ट कहा कि 'भाई गणेशीलाल जी यदि आप मेरी सेवा-भक्ति हृदय से और श्रद्धा से करना चाहते हैं' तो मेरे संयम में किसी प्रकार की त्रुटि या दोष मत आने देना। मेरे लिए किसी डाक्टर या वैद्य को कोई फीस न देना। कोई औषधि मोल मत खरीदना, कोई नई औषधि तैयार भी मत करना, पथ्य और अनुपान में मेरे नियमो में शिथिलता आ जाय, ऐसा किसी आहार-पानी का प्रयोग न होना चाहिए। आप इन बातों को ध्यान में रखते हुए औषधि करना चाहें तो करें, अन्यथा मुझे किसी औषधि की आवश्यकता

नहीं। यह तो व्यावहारिक साधन है, वास्तव में तो असाता वेदनीय होने से ही पीड़ा है, साता वेदनीय का उदय होने पर इसका नाश हो जायगा।

सेठ गणेशीलाल जी ने पूज्य श्री के आदेशानुसार सेवा करना स्वीकार कर पूज्य श्री का औषधोपचार आरम्भ करा दिया। आप अस्वस्थ होते हुए भी लोगों को उपदेश देते रहते थे, ढ़ाई या पौने तीन मास तक आपको अन्न नहीं दिया गया। केवल दूध का फटा पानी देकर ही आपके पित्ताशय की पीड़ा को दूर किया गया, परिणाम स्वरूप दुर्बलता और शिथिलता अत्यधिक बढ़ गई। पंडित शुक्लचन्द जी महाराज भी पूज्य श्री की अस्वस्थता को सुनकर नागौर, मेड़ता, पुष्कर होते हुए अजमेर पधार गये। यहाँ पर मेवाड़, मारवाड़ आदि दूर-दूर के दर्शनार्थियों का तांता सा लगा रहता था, दुर्बलता दूर करने के लिये एक वैद्य जी की औषधि चालू थी।

इसी समय प्रवर्त्तक मुनि श्री भागचन्द जी महाराज को डबल निमोनिया हो गया। साता वेदनीय के उदय से वह व्यवथा भी शांत हो गई।

पंजाब के ५५ श्रावकों का डेपुटेशन—

अजमेर में पूज्य श्री की सेवा में पंजाब के सभी प्रमुख नगरों के ५५ भाईयों का एक डेपुटेशन उपस्थित हुआ। इस डेपुटेशन के मुखिया निम्न सज्जन थे—

सर्वश्री रायसाहब लाला टेकचन्द जी जंडियाला, श्री हंसराज जी, शादीलाल जी, आदि अमृतसर, लाला त्रिभुवन-नाथ जी कपूरथला, बा० किशनचन्द जी, लाला टेकचन्द जी आदि स्यालकोट, लाला लक्ष्मीचन्द जी, बाबूराम जी अम्बाला,

सभी सज्जनों ने शीघ्रातिशीघ्र पंजाब पधारने के लिए पूज्य श्री से अत्यन्त आग्रह पूर्वक प्रार्थना की। इस पर पूज्य श्री ने फरमाया कि शारीरिक अवस्था दुर्बल होने के कारण कुछ कहा नहीं जा सकता, किन्तु अजमेर से पंजाब की ओर आने के भाव हैं। इस के कुछ दिनों बाद श्री सेठ भँवरलाल जी मूसल, सेठ केसरीमल जी लाल हाथी वाले, सेठ रतनलाल जी सलेचा आदि के नेतृत्व में जयपुर श्री संघ की ओर से आये हुए प्रतिनिधि मंडल ने जयपुर स्पर्शने की प्रार्थना की।

तदनुसार कुछ शक्ति आने पर पूज्य श्री किशनगढ़ आदि अनेक नगरों व ग्रामों में विचरते हुए जयपुर पधारे। अजमेर में औषधोपचार से जो थोड़ा बहुत बल आगया था। जयपुर आते आते ही शक्ति क्षीण हो गई।

पूज्य श्री का संवत् २००० का चातुर्मास जयपुर में हुआ।

जयपुरसंघ ने आचार्य श्री की अमूल्य सेवा का लाभ लिया। वैद्य श्री जयरामदास मधुसूदन जी ने बड़ी तत्परता से पूज्य श्री का औषधोपचार किया। इस पर पूज्य श्री का शरीर तो निरोग होगया, पर दुर्बलता बनी रही। यहाँ पर फिर पंजाब से एक डेपुटेशन उपस्थित हुआ। जयपुर चातुर्मास में धर्म ध्यान की झड़ी लगी रही। मुनि श्री जोहरी लाल जी महाराज ने १५ दिन का व्रत किया। चातुर्मास समाप्त हो जाने पर वैद्य लोगों ने निवेदन किया कि अभी दुर्बलता बहुत है अत: अभी विहार न किया जाय। पर पंजाब केसरी पूज्य श्री ने वहाँ से अलवर की ओर प्रस्थान कर ही दिया। वैराट के मार्ग से आचार्य श्री अजमेर से अलवर पधारे। मार्ग बड़ा विकट था, शेर चीते आदि हिंसक जन्तुओं का भय पदे-पदे बना रहता था, पूज्य श्री दुर्बल भी बहुत थे, तो भी सौ मील की पैदल यात्रा कर जयपुर से अलवर पहुंच गये।

पूज्य श्री के पधारने से जयपुर और अलवर के बीच वैराट का नया मार्ग खुल गया। इस समय अलवर श्रीसंघ में पारस्परिक फूट पड़ी हुई थी। पूज्य श्री पंजाब केसरी ने अपने प्रभावशाली प्रवचनों तथा अपूर्व प्रयत्नों के द्वारा इस फूट के बीज को उखाड़ फेंका। जिस से वहाँ एकता और प्रेम की मधुर फल-दायिनी सरस बेल लहलहा उठी। यहाँ से सर्व श्री जोहरीलाल जी महाराज, सुरेन्द्र मुनि जी महाराज, हरिश्चन्द्र जी महाराज इन तीनों को आगरे की ओर भेज दिया।

पूज्य श्री का दिल्ली की ओर विहार—

अलवर में औपधोपचार अनुकूल न होने से यहाँ पूज्य श्री की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई। दुर्बलता इतनी बढ़ गई कि विहार करते समय दूसरे संतो के कन्धों का सहारा लेकर चलना पड़ता। फिर भी आप ने यहाँ से दिल्ली की ओर विहार कर दिया। मार्ग में गुड़गाँवा व महरोली में आपको तकलीफ अधिक होगई। चिराग दिल्ली में मरोड़ व दस्तों के साथ पेचिश की शिकायत शुरू होगई। चक्कर भी आने लगे। ऐसी दुर्बलता की अवस्था में ही आप दिल्ली की ओर बढ़ रहे थे।

पूज्य श्री के सोना गाँव में जाते समय बादशाहपुर में होशियारपुर निवासी लाला मोती लाल जी, व फरीदकोट वाले लाला रूपलाल जी ने दर्शन किये तथा पंजाब कान्फ्रेंस की ओर से श्री सेवा में निवेदन किया कि दिल्ली पहुंचने की तिथि फरमावें ताकि पंजाब के सब श्रद्धालु भक्त पूज्य श्री का दर्शन कर सकें। पंजाब के सभी प्रमुख नगरों के भक्त गण दिल्ली आने की सोच रहे हैं।

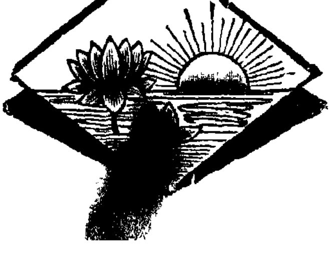
पूज्य श्री ने फरमाया कि मुझे तारीख नियत करने की आव-

श्यकता नहीं है और आडम्बर भी मैं नहीं चाहता। पंजाब में सूचना पहुँचाने की आवश्यकता भी मैं अनुभव नहीं कर रहा हूं। जब मेरी स्पर्शना होगी, पहुंच जाऊँगा।

वास्तव में पूज्य श्री के विचार ऐसे ही थे। वे अपनी ओर से विहार और प्रवेश की सूचना कभी न देते थे। इसमें वे बाह्य आडम्बर का पोषण मानते थे। फिर भी उक्त सज्जनों ने श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज से बात करते हुए दिल्ली पहुँचने की तिथि का अनुमान से पता लगा लिया था।

बादशाहपुर में गुड़गाँवा के भाई मेहरचन्द जी वकील आदि विनती के लिये आये। पूज्य श्री की इच्छा झाड़सा होकर जाने की थी, किन्तु गुड़गाँवा के भाइयों की विनती को स्वीकार कर गुड़गाँवा छावनी पधारे और वहाँ की धर्मशाला में ठहरे। यहीं पर महरौली के लाला फूलचन्द जी आदि की विनती को स्वीकार कर महरौली पधारे।

चिरागदिल्ली के उद्यमीलाल जी आदि भाइयों की प्रार्थना को ध्यान में रखते हुए ऐसी रुग्ण और दुर्बल अवस्था में भी तीन मील का चक्कर काट कर पूज्य श्री चिरागदिल्ली पधारे। सुरेन्द्र मुनि जी आदि तीनों संत आगरा की ओर प्रचार करते हुए यहाँ पर आ मिले।



भारतकेसरी आचार्य पूज्य श्री काशीराम जी महाराज

नरो योगभ्रष्टो मुहुरतनुयोगाय यतते

भवं भोगभ्रष्टोऽप्यहह भगभोगाय भजते।

जनःस्पष्टस्वेष्टोऽनुकलितकुचेष्टोऽतिकृपणो

यथा कृष्णः कीटोंऽगुलिवृतचपेटो लुठति कौ ॥

श्रीमदाचार्य अमृतवाग्भव विरचित-

अमृतसूक्तिपंचाशिका

जो महापुरुष पिछले जन्मों में योगमार्ग में प्रवृत्त रहे होते हैं, वे इस जन्म में और अगले जन्मों में भी बार-बार महान् योग की साधना के लिए ही प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत अत्यन्त कृपण और कुचेष्टाओं वाले जीव उसी प्रकार बार-बार सांसारिक भोगविलासों या विषय वासनाओं के जंजाल में फंसते रहते हैं—हटाने पर भी वे उनसे पराङ् मुख नहीं होते—जैसे मकोड़े को अंगुली से कितनी बार दूर हटाओ पर वह बार-बार लौट कर वहीं वापस आ जाता है।

पूज्य श्री का देहली में पदार्पण और अपूर्व स्वागत

चिरागदिल्ली से पूज्य श्री नई देहली पधारे और यहाँ बिरला मन्दिर में एक सप्ताह तक ठहरे।

आपके स्वागतार्थ देहली के हजारों नर-नारियों के अतिरिक्त श्री व्याख्यान वाचस्पति धर्म भूषण श्री मदनलाल जी महाराज, जैन धर्म भूषण श्री प्रेमचन्द जी महाराज आदि संत भी देहली पधारे हुए थे। गणी श्री उदयचन्द जी महाराज वृद्धावस्था-जन्य निर्बलता के कारण पहले ही दिल्ली में विराज रहे थे। इस प्रकार अड़तीस संतों तथा पंजाब से आये हुए सभी नगरों के प्रमुख प्रतिनिधियों के साथ स्थानीय विशाल जन-समूह ने जय-जयकार की ध्वनियों से दिङ्मंडल को गुंजाते हुए लम्बे जुलूस के रूप में नई दिल्ली से दिल्ली में पूज्य श्री का पदार्पण करवाया। इस समय अत्यधिक दुर्बल और कृश होते हुए भी पूज्य श्री के मुख-मण्डल पर अपूर्व प्रसन्नता और अलौकिक तेज झलक रहा था। आचार्य प्रवर के स्वागत का यह विशाल जुलूस दिल्ली के प्रमुख बाजारों में होता हुआ तेलीवाड़े में आकर समाप्त हुआ।

इस जुलूस में पूज्य श्री के साथ वादीमानमर्दक गणी श्री उदयचन्द जी महाराज भी चल रहे थे। इन दोनों संतों के पीछे-पीछे ३६-३७ दूसरे संत चले आ रहे थे। दुग्ध धवल निर्मल-वस्त्र धारी मुनि मण्डली के आगे-आगे अपने समय की उन दो विभूतियों को आगे बढ़ते देख ऐसा प्रतीत होता था, मानो अट्ठाईस नक्षत्र और आठ ग्रहों से युक्त सूर्य चन्द्र ही मुनि वेश धारणकर पृथ्वीपर उतर आये हों। इनके जैसे उदात्त चरित्र निर्मल थे, वैसे ही शरीराकृतियां भी अत्यन्त गौर और तेजो-विभूषित थी। गौर वर्ण दिव्य देहों तथा निमल चारित्र के समान ही आपके शुभ वस्त्र भी सर्वथा निर्मल और बेदाग थे। इस मुनि मण्डल को अपने मध्य पाकर देहली और पंजाब से आये हुए नर-नारियों के हृदयकमल विकसित हो उठे। अपार हर्ष और आनन्द के साथ जुलूस में भाग लेने वाले हजारों भाइयों और बाइयों ने पूज्य श्री का स्वागत-सभा की भव्य आयोजन कर डाला। वास्तव में यह जुलूस ही एक विशाल सभा के रूप में परिवर्तित हो गया था।

माघ सं० २००० ता० ६ फरवरी सन् १९४४ का यह दिन दिल्ली श्री संघ के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा। इस दिन की इस अभूतपूर्व स्वागतसभा में पूज्य श्री की शुभ सेवा में श्री मदनलाल जी महाराज तथा दिल्ली सदर एवं अखिल पंजाब प्रांतीय श्री संघ की ओर से अनेक मान पत्र भेंट किये गए। पूज्य श्री के गुणानुवाद में अनेक भावगर्भित सरस सुन्दर कविताएँ, स्तुतियाँ तथा गायन भी सुनाये गये, जिनको सुनते-सुनते श्रोतागण आनन्द विभोर हो उठे।

मुख्य मानपत्र श्री मदनलाल जी महाराज ने तथा पंजाब श्रीसंघ की ओर से मुद्रित मानपत्र देहली सदर की ओर से

श्री फूलचन्द जी ने मान पत्र पढ़ सुनाया। इस अवसर पर फूलचन्द जी का एक अत्यन्त प्रभावशाली ओजस्वी भाषण भी हुआ। जिसमें पूज्य श्री के विविध लोक कल्याणकारी कार्यों का हृदयस्पर्शी शब्दों में विवेचन किया गया।

इस सभा में जैन धर्मभूषण श्री प्रेमचन्द जी महाराज का भी बड़ा मर्म स्पर्शी भाषण हुआ। इस अवसर पर पूज्य श्री ने एक संक्षिप्त किन्तु मार्मिक भाषण भी दिया और कहा कि—

'आप लोगों ने मेरा जो यह अपूर्व स्वागत सत्कार किया है, उससे तथा आपकी श्रद्धा भक्ति देख कर मुझे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई है। दिल्ली श्री संघ के प्रति तथा पंजाबी भाइयों व अन्य श्रावकों के प्रति मेरे हृदय में समान आदर के भाव हैं। मेरे देहली पहुँचने से पूर्व तथा यहाँ आने के पश्चात् मेरे कानों में पंजाब का विषवाद भरा गया, किन्तु मैं आपसे कहता हूँ कि जो होना है वह होकर ही रहता है. भविष्य को कोई टाल नहीं सकता। अतः अब तक जो भी कुछ हुआ उसे भूल जाना चाहिए। अपनी बिखरी हुई हृदय की मणियों को प्रेम के गुणों से फिर से माला के रूप में पिरो लेने चाहिये। त्रुटियाँ भी मनुष्यों से ही होती हैं, पर समझदार मनुष्य वह है जो उन त्रुटियों के ज्ञात होने पर उनका सुधार कर लेता है। अपने मुख से किसी का विषवाद करने से उसका सुधार नहीं होता, सुधार तो आत्म-ग्लानी से होगा।

साधुओं और श्रावकों !

यदि आपके हृदय में मेरे प्रति सच्ची श्रद्धाभक्ति है तो अपने हृदयों से पारस्परिक वैमनस्य को तत्काल निकाल दीजिये और सदा यह ध्यान रक्खें कि यह समय पारस्परिक वैर-विरोध

का नहीं है। भूल जाइये अपनी सभी क्लेशकारी बातों को प्रेम से एक दूसरे के गले से इस प्रकार मिल कर संगठित होकर धर्म तथा शासन की उन्नति के लिए अग्रसर हो जाइये।'

पूज्य श्री के इन मर्मस्पर्शी शब्दों का अलौकिक प्रभाव हुआ।

पूज्य श्री यहाँ बहुत दिनों तक विराजे और यहाँ के श्रीसंघ की प्रबल भावना को ध्यान में रखते हुए—
संवत् २००१ का चातुर्मास दिल्ली में किया। सर्व श्री लाला शादीलाल जी कुन्ज लाल जी, दिवानचन्द जी, फूलचन्द जी आदि ने सेवा का भार उठाया।

डिप्टीगंज में व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज के बड़े ही आकर्षक भाषण होते थे। और सब्जीमंडी में श्री प्रेमचन्द जी माहाराज व अन्य संतों के भाषण होते रहे। यहाँ पर प्रति दिन बाहर से आये हुए सैंकड़ों दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। पूज्य श्री पृथ्वीचन्द जी महाराज के शिष्य पं० मुनि अमरचन्द जी महाराज ने भी पूज्य श्री के यहाँ दर्शन किये।

युवाचार्य के लिए विचारणा—

पूज्य श्री की शारीरिक दशा दिन दिन दुर्बल होती जा रही थी। अतः श्री संघ के भावी संघ संचालक के विषय में चिन्ताएँ उत्पन्न होने लगी थीं। पूज्य श्री के हृदय में युवाचार्य की नियुक्ति के सम्बन्ध में विचार कई दिनों से उठने लगे थ।

पूज्य श्री इस विषय में अमृतसर निवासी श्री लाला रत्नचन्द्र जी से भी जोधपुर में अपने विचार व्यक्त कर चुके थे। लाला जी ने कहा था कि युवाचार्य पद के सम्बन्ध में तथा सिद्धान्त शाला की स्थापना के लिए आप के दिल्ली पधारने

पर निश्चित विचार कर लिया जायगा। पूज्य श्री के देहली पधारने से पूर्व ही लाला रत्नचन्द जी का स्वर्गवास होगया। रत्नचन्द्र जी वास्तव में एक बड़े ही परम उदार दानी श्रावक थे। आप के सत्प्रयत्नों एवं उदार विचारों से पंजाब श्रीसंघ परम लाभा-न्वित हुआ था। अब इस सम्बन्ध में आपने गणी जी महाराज से विचार विनिमय किया। तत्पश्चात् व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी को फर्माया कि मेरा शरीर अत्यन्त दुर्बल होगया है, अतः मेरी इच्छा है कि मेरा कार्य भार सम्हालने के लिए किसी योग्य मुनि को युवाचार्य का पद प्रदान कर दिया जाय। अब आयुष्य कर्म अधिक शेष नहीं है। आप के हृदय में समाज सेवा की सच्ची लगन है, अतः आप मुझे इस कार्य में सत्परामर्श दें।

श्री मदन मुनि जी ने इस कार्य के लिए कुछ समय मांगा और उचित परामर्श कर उत्तर देने को कहा।

कुछ दिनों पश्चात् आचार्य श्री ने वर्त्तमान युवाचार्य श्री पंडित शुक्लचन्द्र जी महाराज को उनके पास भेज कर कहलाया कि जिस व्यक्ति को ढूंढने का भार आप को सौंपा गय था, उसके सम्बन्ध में महाराज श्री से निवेदन कीजिए।

'आपको पता है कैसा भाई किस लिए चाहिये ? श्री मदन मुनि ने पूछा।

श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज ने कहा कि मुझे कुछ नहीं पता।'

श्री मदनलाल जी महाराज ने फरमाया कि पूज्य श्री को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो लुधयाने में उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज, स्यालकोट में गणावच्छेदक श्री गोकुलचन्द्र जी महाराज, मोणक में गणावच्छेदक बनवारी-लाल जी महाराज तथा जालन्धर में सती राजमती जी के पास

आकर उनसे सम्मति लाएँ। गणी जी महाराज की सम्मति तो यहाँ पर ही प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार सर्व सम्मति से उस श्रेष्ठ पदाधिकारी का निर्णय किया जा सकता है।

जिस व्यक्ति को भेजा जाय, वह पंजाब निवासी नहीं होना चाहिये। और न उसके हृदय में कोई पक्षपात ही हो। वह लाभ हानि को पहचानने वाला योग्य और विज्ञ व्यक्ति होना चाहिये। मेरी दृष्टि इस सम्बन्ध में इस समय संगरूर वाले बाबू खूबचन्द जी की ओर है।

तब श्री शुक्लचन्द जी महाराज ने कहा कि आप उन्हें समझा कर पूज्य श्री की सेवा में भेज दीजिए।

तदनुसार खूबचन्द्र जी आचार्य चरणों में आ पहुंचे। उन्हें उक्त सब संतों से सम्मति लाने के लिये कहा गया तो उन्होंने निवेदन किया कि आप मुझे एक पत्र लिख दीजिये ताकि उस पत्र के आधार पर सब संतों की लिखित स्वीकृति या सम्मति ले आऊँ। मौखिक बात का उतना मूल्य नहीं होता और उसमें अन्तर भी पड़ सकता है।

तदनुसार पूज्य श्री ने श्री पं मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज से कहा कि लाला कुन्जीलालजी से इस आशय का पत्र लिखवा लें। पूज्य श्री की आज्ञानुसार श्री लाला कुंजालाल जीसे पत्र लिखवाया गया और निचली मंजिल में जाकर वह पत्र गणी जी महाराज को सुनाया गया।

पत्र सुनकर गणी जी महाराज ने कहा कि 'अभी समय बहुत है, जब आवश्यकता समझेंगे सम्मतियाँ मंगा लेंगे।'

लाला कुंजलाल जी ने गणी जी का उक्त कथन ज्यों का त्यों पूज्य श्री की सेवा में निवेदन कर दिया।

इस पर पूज्य श्री चुप हो रहे।

प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि में पूज्य श्री और गणी जी में गुप्त मन्त्रणा हुई। बाद में श्री पं शुक्लचन्द जी महाराज को भी बुलाया गया। अन्त में गणी जी की सम्मति से यह निर्णय हुआ कि इस प्रकार सम्मतियाँ मंगाने से कोई किसी का नाम लिखेगा, तो दूसरा किसी अन्य का। इस प्रकार परस्पर खींचा तानी हो जायगी। इसलिये उचित तो यही है कि आप सब संतों से यह लिखित स्वीकृति मंगलें कि जिस संत को आप इस पद के लिये उचित समझ कर जिसका नाम सुझाएँ सब उसे स्वीकार करलें। इस प्रकार सब संतों से यह लिखित आ जाने पर कि 'आप जिसे उचित समझे मुनिराज पद देदें। हम सब को वह स्वीकार है' बाद में नाम प्रकट कर दिया जाय।

आचार्य श्री ने उस समय इस विषय को विचारार्थ भविष्य के लिये स्थगित कर दिया। आचार्य श्री ने चातुर्मास के लिये सब्जीमण्डी भी रखली थी, क्योंकि वहाँ का जल-वायु विशेष अनुकूल रहता था, अतः सदर और चाँदनीचौक की बारादरी में विराजते हुए भी बीच-बीच में सब्जीमण्डी भी पधार जाया करते थे।

पूज्य श्री के साथ चाँदनीचौक दिल्ली के इस चातुर्मास में श्री १०८ प्रवर्त्तक भागमल जी महाराज, कविरत्न श्री हरिश्चन्द्र जी महाराज, श्री पंडित रत्न त्रिलोकचन्द जी महाराज, कवि श्री जौहरीमल जी महाराज का चातुर्मास भी था। पंडित रत्न जी की शास्त्रों की रहस्योद्घाटिनी वाणी से श्री संघ को परम आल्हाद प्राप्त होत था। पूज्य श्री की भी आप पर अपार कृपा दृष्टि थी।

पूज्य श्री के प्रवास के समय पीछे से स्थानीय श्री संघ में साम्प्रदायिक वैमनस्य के भाव उदय हो गये थे। श्री पंडित

शुक्लचन्द्र जी महाराज व व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज के प्रयत्नों से वह वैमनस्य शांत हो गया।

आचार्य श्री को 'भारतकेसरी' की पदवी—

इसी समय सब्जीमण्डी में सम्पन्न हुए दीक्षोत्सव के अवसर पर पूज्य श्री पंजाब केसरी श्री १००८ काशीराम जी महाराज को 'भारत केसरी' की उपाधि से विभूषित किया गया। जैसा कि पूर्वोक्त विवरण से स्पष्ट है, अब तक आप भारत भर का भ्रमण कर धार्मिक दिग्विजय के द्वारा अपने आपको 'भारत केसरी' की उपाधि का पूर्ण अधिकारी सिद्ध कर चुके थे। भारत भर के श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों ने निर्विवाद और निर्भ्रान्त रूप से आपके व्यक्तित्व की सर्वोच्चता को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया था। आपके इस महान् व्यक्तित्व को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'भारत केसरी' की उपाधि आपके लिये सर्वथा उपयुक्त ही थी।

इस चातुर्मास में पंजाब के नर-नारियों ने पूज्य श्री के दर्शनों का खूब लाभ लिया। चातुर्मास के बाद यहाँ के श्रावकों ने यहीं विराज कर औषधोपचार करने की विनती की और शेष आयु को स्थविर रूप से पूर्ण करने की प्रार्थना की। इस पर पूज्य श्री ने स्वास्थ्य ठीक होने तक यहीं रहने का विचार व्यक्त किया। फिर भी हृदय में ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में विहार कर धर्म प्रचार की इच्छा प्रबल हो रही थी। इसलिए वर्तमान युवाचार्य श्री पंडित शुक्लचन्द जी महाराज को यू. पी. की ओर विहार करने को भेजा। उनका चातुर्मास भी कांधला में करवाया। पूज्य श्री की दिल्ली में चिकित्सा हो रही थी। हकीम प्रेमराज

जी और डाक्टर लज्जाराम जी ने इस समय आपकी तन-मन से सेवा की।

स्थानीय श्री संघ के

लाला दलेलसिंह जी (प्रधान)
लाला कुंदनलाल जी
लाला जंगी लाल जी
लाला मिलापचन्द जी
लाला रत्नचन्द जी पारख
लाला मिश्रीलाला जी जौहरी
लाला शादीलाल जी अमृतसर
लाला हंसराज जी सुरेन्द्रनाथ जी
लाला माणकचन्द जी
लाला दीपचन्द जी पदमचन्द जी
लाला बनारसीदास जी
लाला टीकमचन्द जी
लाला कस्तूरचन्द जी
लाला गोकुलचन्द जी
लाला ऋषभदास जी
लाला मोतीचन्द जी
लाला करोड़ीमल जी

आदि महानुभावों ने अत्यधिक उत्साह के साथ पूज्य श्री की सेवा सुश्रुषा का लाभ प्राप्त किया।

देहली से प्रस्थान

जब पूज्य श्री ने अपने विहार करने के विचार की सूचना श्री पंडित शुक्लचन्द जी महाराज के पास भेजी तो वह तत्काल दिल्ली की ओर चल पड़े। और ६ दिन में दिल्ली पहुँच गये। इस वार फिर डाक्टरों की सम्मति से यहाँ के भक्त जनों की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए पंजाब केसरी ने दो मास के लिये और देहली विराजना स्वीकार कर लिया। इस अवधि में पंडित रत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज को प्रचारार्थ फिर बाहर भेज दिया। पर डेढ़ मास के पश्चात् उन्हें वापिस बुलाकर कहा कि 'यहाँ रहते हुए तेरह महिने हो गये, पर मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ, इसलिये दिल्ली से विहार कर देना ही उचित प्रतीत होता है। इससे शायद स्वास्थ्य भी सुधर जाय। जल वायु का परिवर्तन आवश्यक है, मेरी इच्छा कांधला स्पर्श ने की है। डोली में यदि कच्चे रास्ते से ले चलो तो जा सकता हूं, अन्यथा पैदल तो चला नहीं जायगा। अम्बाला के मार्ग चलना चाहिए, इधर पक्की सड़क है। गणावच्छेदक बनवारीलाल जी महाराज ने भी याद किया है, मेरी अपनी भी मणोक जाने की भावना है। किन्तु उधर कच्चा रास्ता है, इसलिए सड़क का मर्ग अम्बाला ही ठीक रहेगा।'

श्री पंडित शुक्लचन्द जी महाराज ने निवेदन किया कि दिल्ली के भाई प्रार्थना करते हैं कि जब तक आप का स्वास्थ्य ठीक हो जाय, तब तक दिल्ली विराजें। यदि आपको जलवायु परिवर्तन करना हो तो यहां भी महरोली, चिराग दिल्ली बिरला मन्दिर, झण्डे वालान आदि अनेक स्थान हैं, वहाँ पधार सकते हैं। अभी दिल्ली में ही विराजना ठीक रहेगा।

बेशक सभी श्रावकों का प्रेम है और उक्त स्थानों के श्रावक चाहते हैं, किन्तु अब यहाँ से विहार करने के ही भाव हैं, ऐसा आचार्य श्री ने उत्तर दिया। आगे और कहा कि खेवड़े विहार करने की पक्की सड़क है, अतः यहां से खेवड़ा तक चलें, आगे कच्चे रास्ते में तीन कोस डोली चल सकेगी तो कांधले चलेंगे, नहीं तो अम्बाला स्पर्शेंगे ऐसा विचार है।

श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज ने वहाँ दर्शनार्थ आये हुए लाला दलेलसिंह जी से कहा कि पूज्य श्री अम्बाला पधारने की सोच रहे हैं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि हमारी इच्छा तो यही है कि पूज्य श्री यहीं विराजें पर फिर भी जिस ओर जानेसे साता उपजे उधर ही विहार कर देना चाहिए। विहार करने से स्वास्थ्य ठीक होजाय तो अच्छा है। तब पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज ने तथा माणकचन्दजी महाराज ने गणी जी महाराज के पास जाकर निवेदन किया कि आप की आज्ञा हो तो हम पूज्य श्री को अम्बाला ले जावें। पूज्य श्री बीमार हैं और हम छोटे साधु सब अजान हैं, वे पैदल चलने में असमर्थ हैं डोली में जा सकेंगे। इसमें कुछ हर्ज न हो तो आप ऊँचनीच सोचकर आज्ञा दे सकते हैं। आपकी सम्मति हो तो हम ले जाएँ। जैसी आपकी आज्ञा होगी तदनुसार आचरण किया जायगा।

श्री गणी जी महाराज ने फरमाया कि जितनी जल्दी हो

रुके ले जाइये, क्योंकि फिर मौसम गर्मी का आने वाला है।

दिल्ली से विहार—

श्रीमान् गणी जी महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्री पंडित शुक्लचन्द जी व माणकचन्द जी आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए। पूज्य श्री बारादरी चाँदनी चौक से सब्जी मंडी पधारे, यहाँ देहली के भाईयों ने पूज्य श्री की शारीरिक निर्बलता देखते हुए आग्रह किया कि ऐसी अवस्था में हम विहार न करने । इन भाईयों को बड़ी मुश्किल से समझा बुझा कर पूज्य श्री पंजाब केसरी ने २२-२-४५ ईस्वी को दिल्ली सब्जी मंडी से पंजाब की ओर विहार कर दिया।

यहाँ से तीन मील दूरी पर एक कोठी में पूज्य श्री विराजे। दिल्ली के और पंजाब के अनेक श्रावक इस समय आप के साथ थे।

खेवड़ा में श्री पंडित अमीलाल जी महाराज तपस्वी श्री नेकचन्द जी महाराज श्री शिखरचन्द जी महाराज आदि संत आचार्य श्री के स्वागतार्थ आगे आए। और डोली को कंधों पर लेकर खेवड़ा में लिवा लाये। यहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने तथा बड़ी भारी संख्या में उपस्थित जन समूह ने बड़े उत्साह के साथ आपका स्वागत किया।

यहाँ से कच्चे रास्ते डोली न चल सकने का अनुभव हो जाने से कांधले न जाकर पीपली खेड़ा होते हुए गनोर मंडी पधारे। यहाँ आप का सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। यहां पर विराजित कस्तूरचन्द जी व अमृतलाल जी महाराज ने आचार्य श्री की सेवा की, और पानीपत तक सेवा के लिए साथ रहे।

पानीपत में अपूर्व स्वागत—

देहली से विहार करने के पश्चात् पूज्य श्री जहाँ जहाँ भी जिस-जिस मार्ग से पधारते वहीं पर दर्शनार्थियों की अपार भीड़ उमड़ पड़ती। पानिपत के दिगम्बर जैन भाईयों ने जब सुना कि आचार्य श्री शिष्य मंडली सहित पानिपत की ओर पधार रहें हैं, तो वे बड़े उत्साह से अपने झंडे लेकर स्वागतार्थ सामने आये। 'जैन धर्म की जय' 'आचार्य श्री की जय' 'पंजाब केसरी की जय' आदि जयघोषों से आकाश मंडल को गुंजाते हुए बड़े भारी जुलूस के साथ पूज्य श्री का पानीपत में पदार्पण कराया गया। यहां आपको दिगम्बरों की धर्मशाला में ठहराया गया। यहां के दिगम्बर भाईयों के हृदय में अटूट धर्म प्रेम था, उनमें दूसरे सम्प्रदाय के आचार्य की भेद भावना नहीं थी। अम्बाला और अमृतसर के भाई भी दर्शनार्थ आ पहुंचे। यहां उन भाईयों की तथा पूज्य श्री की हृदय से आतिथ्य सेवा की गई। यहां के लोगों के अगाध सेवा भाव देखकर पूज्य श्री ने यहाँ एक दिन की अपेक्षा दो दिन ठहरकर स्थानीय जनता को कृतार्थ किया। यहाँ पर पूज्य श्री की उपस्थिति में एक विराट सभा हुई। जिसमें सर्व सम्मति से यह पास किया गया कि हम श्वेताम्बर, दिगम्बर और स्थानकवासी के भेद-भाव को छोड़कर तीनों सम्प्रदाय जैनत्व के नाते एक बनकर रहेंगे। और पारस्परिक वैर विरोध, और वैमनस्य की भावना का परित्याग करते हैं।

यहाँ के दिगम्बर भाइयों ने इस प्रस्ताव को क्रियात्मक रूप देकर जिस उदारता का परिचय दिया, वह वास्तव में अवर्णनीय है। पानीपत में दिगम्बरों ने एक वीर दल स्थापित किया था, जिसका उद्देश्य समस्त साम्प्रदायिक भेद-भावों को मिटाकर जैन धर्म क

चार तथा संघ की शक्ति को बढ़ाना था। इसके अतिरिक्त व्यायाम आदि के द्वारा संघ में वीरता के भाव जागृत करते हुए, आततायियों से धर्म और धार्मिकों की रक्षा करना भी संघ का प्रमुख उद्देश्य था।

वीरदल की प्रार्थना पर पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज व्यायामशाला में पधारे, और वहाँ आपने एक बड़ा प्रभाव शाली व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में आपने पुरातन इतिहास का उल्लेख करते हुए श्रवकों के नित्यकर्मों पर बड़े ही मनोहर ढंग से प्रकाश डाला। इस प्रकार यहां तीन प्रवचन हुए और तीनों में जनता ने खूब लाभ उठाया। यदि भारत भर के दिगम्बर भाई पानीपत के भाइयों का अनुकरण कर संगठित हो जाय तो जैन धर्म थोड़े दिनों में ही उन्नति के शिखर पर जा पहुंचे। यहाँ पर बाबू भगवानदास जी वकील, रूपचन्द गार्गीय, तथा सुन्दरलाल जी आदि प्रतिष्ठित धर्मानुरागी उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। यहाँ के भाइयों ने बाहर से आये हुए दर्शनार्थियों की भी दिल खोल कर सेवा की।

पानीपत से चलकर पूज्य श्री गरौंडा मण्डी पधारे। यहाँ पर ध्यान पूज्य श्री मग्न ही रहते थे, पर आपके दिव्य दर्शनों से ही अनुपम तृप्ति और शांति प्राप्त होती थी। अधिकतर प्रवचनादिकार्य श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज ही करते थे आपके प्रवचनों से भी जनता परम प्रमुदित हो आनन्द विभोर हो जाती थी गरोण्डा मंडी में भी आपका एक बड़ा हृदयस्पर्शी

व्याख्यान हुआ ।

यहाँ से आचार्य श्री करनाल पधारे। यहाँ के दिगम्बर भाइयों ने भी पानीपत के भाइयों के समान पूज्य श्री पंजाब केसरी का हार्दिक स्वागत- सत्कार किया। लाला विश्वम्भरनाथ जी आदि सज्जनों ने अपूर्व सेवा लाभ लिया। यहाँ पर प्रवर्त्तक मुनि श्री भागचन्द जी महाराज, पंडित त्रिलोकचन्द जी महाराज श्री ताराचन्द जी महाराज व श्री हुक्मीचन्द जी महाराज विराजते थे। आपने पूज्य श्री की सेवा का लाभ लिया, श्री ताराचन्द जी महाराज व कपूरचन्द जी महाराज अम्बाले तक साथ पधारे ।

सर्व श्री तपस्वी मुनि सुदर्शन जी महाराज, मुनि राजेन्द्र जी महाराज, रवीन्द्र जी महाराज, महेन्द्र जी महाराज 'इन पाँचों मुनिराजों ने पूज्य श्री की सेवा में तन-मन रात-दिन एक कर दिया। आचार्य श्री की डोली के साथ रहना, और विहार की ठीक व्यवस्था करना आदि सम्पूर्ण भार आपही के कंधों पर था।

यहाँ से आप थानेसर पधारे। लाला आत्माराम जी, वेणीराम जी आदि प्रमुख श्रावकों ने यहाँ भी पूज्य श्री की स्मरणीय सेवा की। मुनि श्री हेमचन्द्र जी महाराज, मुनि श्री पद्मचन्द्जी व मुनि रत्नलाल जी यहाँ पर विराजित इन तीनों मुनिराजों ने आपकी तन-मन से सेवा की। लाला रामलाल जी आदि अम्बाला के कई भाई संतों के साथ चले आ रहे थे। थानेसर

में और भी कई भाई आ पहुंचे, जो अम्बाला तक साथ चलते रहे।

थानेसर से शाहाबाद पहुंचे। यहाँ मुनि श्री विमलचन्द जी महाराज व मुनि श्री जगदीश जी महाराज पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए।

शाहबाद से पूज्य श्री अपनी मुनि मंडली और श्रावक गणों के साथ अम्बाला छावनी पधारे। यहाँ पर आप आर्य-स्कूल में विराजे। यहाँ व्याख्यन धर्मशाला में हुए। स्थानीय दिगम्बर भाइयों का प्रेम भी दर्शनीय था।



अम्बाला में प्रवेश

पूज्य श्री के शुभगमन का समाचार सुनकर अम्बाला निवासियों के मानस-सरोज विकसित हो उठे। क्या जैन क्या अजैन क्या श्वेताम्बर क्या दिगम्बर क्या स्थानकवासी सभी के हृदयों में अपूर्व उत्साह की लहरें तरंगित हो रही थी। सब लोगों ने मिलकर अम्बाला नगरी को आज दिव्य रूप से सुसज्जित कर दिया था। स्थान-स्थान पर बन्दरवारों से सुसज्जित द्वार बने हुए थे। जुलूस के मार्ग में प्रत्येक घर-बार और दुकानों को बड़े सुन्दर ढंग से सजाया गया था। पूज्य श्री का पदार्पण इस नगरी में ता०-१४ ३-४५ को प्रातःकाल की शुभवेला में बड़े उत्साह के साथ हुआ।

पंजाब भर के विभिन्न नगरों से इस समय तक पूज्य श्री के दर्शनार्थ यहाँ सैकड़ों नर-नारी आ पहुंचे थे। उन सब ने तथा स्थानीय हजारों नर-नारियों ने विशाल जुलूस के रूप में पूज्य श्री का अम्बाले में बड़े उत्साह के साथ पदार्पण कराया। सबसे आगे डोली में पूज्य श्री विराजमान थे, उनके पीछे हजारों नर-नारी जय-जयकार की ध्वनि से दिशा विदिशाएँ प्रतिध्वनित करते हुए चल आ रहे थे। पूज्य श्री नगर के पास आकर स्वयं पैदल चलने लगे। अम्बाला प्रवेश के समय के

इस भव्य जुलूस की शोभा दर्शनीय एवं स्मरणीय थी। इस दृश्य को देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि अम्बाला नगरी का बच्चा-बच्चा आपका अनन्य भक्त हो और सभी लोग आप ही के अनुयायी हों।

बात तो यह है कि बालब्रह्मचारी तप और तेज के पुंज विद्या-वयोवृद्ध पावनचरित्र संतशिरामणि के दर्शनों से प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको कृतार्थकर अहोभाग्य शाली मान रहा था। उस ऋषितुल्य महामानव का प्रभाव ही कुछ ऐसा दिव्य था कि उनकी शांत स्निग्ध और वात्सल्य भरी दृष्टि के पड़ते ही मनुष्य अपने सब साम्प्रदायिक आग्रहों का त्याग कर बरबस उन्हीं का हो जाता था। वहाँ जैन वैष्णव या सिक्ख का कोई प्रश्न ही नहीं रहता था।

इस प्रकार इस अभूतपूर्व जुलूस के साथ पूज्य श्री का पदार्पण लाला सुखलाल कुन्दनलाल जैन धर्मशाला में कराया। मंगल गान के पश्चात् पूज्य श्री पंजाब केसरी १००८ काशीराम जी महाराज की सेवा में मानपत्र भेंट किया गया।

इस अवसर पर श्री विमलचन्द जी मुनि ने (गुरु महिमा) विषय पर बड़ा सारगर्भित भाषण दिया।

देहली से अम्बाला तक के इस ऐतिहासिक विहार में अत्यन्त वृद्ध और अस्वस्थ होते हुए भी पूज्य श्री और उनके साथी संतों ने साधु नियमों के पालन में जिस अपूर्व संयम का परिचय दिया, उसका वर्णन करते हुए श्री पंडित मुनि शुक्ल-चन्द जी महाराज ने बताया कि—

देहली से अम्बाला तक १२५ मील के विहार में जो भाई साथ रहे, उनका आहार-पानी किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं किया

गया। मुनिराज स्वयं अगले गाँव में जाकर गाँव में से आहार पानी ले आते थे। मुनिराजों के हृदयों में इतना उत्साह और सेवा-भाव था, कि वे लोग सोलह-सालह और १८-१८ मील तक निरन्तर पूज्य श्री की डोली उठाये चले जाते थे। इस अनुपम उत्साह का शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता। पूज्य श्री और उनके शिष्यगण संयमी जीवन के बिताने तथा नियम के पालन में किस प्रकार तत्पर रहते थे, इसका एक प्रमाण निम्न लिखित घटना से मिल सकता है—

एक बार मार्ग में एक ग्रामीण भाई डोली के साथ चलने वाले वश्राकों के लिए एक बाल्टी भर दूध लाया और सब भाइयों को पिलाने के बाद जो दूध बच गया उसे पूज्य श्री तथा मुनिराजों को ग्रहण करने का आग्रह करने लगा। पूज्य श्री ने इस प्रकार विशेष उद्देश्य से लाये गये दूध को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। वह बचा हुआ दूध किसी के हिस्से का नहीं था, फिर भी पूज्य श्री को अपने नियमों की शृंखला को दृढ़ बनाने के लिये ऐसा करना पड़ा था।

इसी प्रकार अनेक घटनाओं के द्वारा पूज्य श्री के संयमी जीवन पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया।

इस अवसर पर पूज्य श्री की ओर से एकता का एक संदेश श्री रवीन्द्र मुनि जी ने पढ़ सुनाया। उस संदेश में कहा गया था कि सन् १९३६ का चातुर्मास जब मैंने यहाँ किया था, तब जो एकता और प्रेम का संदेश मैंने दिया था, वही अब भी देना चाहता हूँ। आप लोग श्वेताम्बर दिगम्बर स्थानक वासी होते हुये भी अपने आपको एक जैन धर्म का अंग समझते हुये सदा एकता के सूत्र में बन्धे रहो। आप खरबूजे के समान बनो, संतरे के समान नहीं। खरबूजे में ऊपर से भले ही अलग-

अलग फाड़ियाँ दिखाई देती हों, पर अन्दर से वह एक ही होता है। इसके विपरीत संतरा ऊपर से एक होते हुये भी अन्दर से उसकी फाड़ियाँ बिलकुल अलग हो जाती हैं। आज संसार में सर्वत्र फूट की बेल लह-लहा रही है। पर आप लोगों का कर्त्तव्य है कि आप उस बेल को उखाड़ फेकें। और उसके स्थान पर पारस्परिक प्रीति की मधुर लता को पल्लवित और पुष्पित बनादें, ताकि श्री संघ उन्नति के शिखर पर पहुंच जाय।

इस अवसर पर देहली से अम्बाला तक के विहार का वर्णन करते हुये अमृतसर निवासी लाला शादीलाल जी ने कहा कि—

'हम लोग सच्ची तीर्थ यात्र करने को निकले थे। और आज हमारे अहोभाग्य हैं कि वह सफल हुई। हम लोग आज तक कभी पैदल नहीं चले थे, किन्तु आचार्य श्री की कृपा से डोली के साथ-साथ चलने में हमें कोई भी कष्ट नहीं हुआ। प्रातःकाल के सुन्दर समय में आचार्य श्री व अन्य मुनिराजों के दुर्लभ दर्शनों का लाभ प्राप्त करते हुये साथ-साथ चलने का उत्साह हृदय में अपूर्व आनन्द का संचार करता था।

पूर्वकृत पुण्यों के परिणाम स्वरूप ही हमें यह अवसर प्राप्त हुआ था। हम इस विहार को जीवन भर नहीं भूल सकते। मार्ग में कठिन उपसर्गों को आचार्य श्री की छत्र छाया में रहते हुये सब मुनिराजों ने किस प्रकार साहसपूर्वक सहन किया, यह तो कहने सुनने का नहीं प्रत्युत अनुभव का ही विषय है। तप और त्याग के अनुपम आदर्श संत शिरोमणि हे पूज्य श्री, आपके गुणों का हम साधारण संसारी भला किस प्रकार वर्णन कर सकते हैं।'

स्यालकोट, जम्मू, रावलपिण्डी, अमृतसर, लाहौर, होशियारपुर, गुजरांवाला आदि बड़े-बड़े नगरों के डेपुटेशन पूज्य चरणों में उक्त क्षेत्रों में पधारने के लिये प्राथना करने लगे। किन्तु अम्बाला शहर के समस्त स्थानकवासी सम्प्रदाय के आग्रह करने और श्वेताम्बरी, आर्यसमाजी, या सनातनधर्मी भाइयों के अत्यन्त उत्साह के साथ निवेदन करने पर पूज्य श्री ने अम्बाला का चातुर्मास स्वीकार कर लिया। इस पर प्रसन्न होकर अन्य मतावलम्बियों ने कहा, भगवान भी भक्तों के अधीन हो जाते हैं।

आचार्य श्री यहाँ का भक्ति-भाव देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। उधर बाहर के आये हुए सब लोग अपने-अपने नगर की सुविधाओं का वर्णन करते हुये पूज्य श्री के चरणों से लिपट गये। इस पर पूज्य श्री ने चातुर्मास के निर्णय के सम्बन्ध में पंडित रत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज से परामर्श करने के लिये कह दिया। इस पर श्री पं मुनि शुक्लचन्द जी महाराज बड़े असमंजस में पड़े कि आज तक चातुर्मास के निर्णय का भार मुझ पर कभी नहीं डाला गया था, आज इस कठिन प्रश्न को सुलझाने का भार मुझ पर क्यों दिया गया है। अन्त में आपने पूज्य श्री से एकान्त में जाकर सब भाइयों की विनय का जंडियाला, होशियारपुर, और अमृतसर की विशेष विनति का बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में समर्थन किया। वहाँ की सब सुख सुविधायें भी बताईं, जैसे कि—होशियारपुर में और जंडियाले में गर्मी उतनी नहीं है, जंगल की जगह भी अधिक है। जलवायु भी वहाँ के बड़े अनुकूल और अच्छे हैं आदि।

इसके अतिरिक्त अमृतसर में तो स्वर्गीय आचार्य श्री की सेवा में कई वर्षों तक रहने के कारण अनुकूल रहेगा ही।

आचार्य श्री ने उत्तर दिया 'किन्तु गर्मी अधिक पड़ने लगी है, अतः डोली उठाने वाले संतों को तकलीफ होगी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आयुष्यकर्म भी अब शीघ्र समाप्त होने जा रहे हैं। अम्बालावासियों की अत्यधिक सेवा व अत्यधिक उत्साहपूर्ण भक्ति-भावना के रहते उनका दिल दुखाना भी ठीक नहीं है। इन सब बतों को ध्यान में रखते आप चातुर्मास की स्वीकृति दे देना।'

श्री पंडित मुनि ने १५ दिन बाद विचार कर स्वीकृति देने के लिये फरमाया और कहा कि १५ दिनों में पूज्य श्री के स्वास्थ्य और अन्य बातों का ध्यान बन्ध जायगा। अतः १५ दिन बाद स्वीकृति देना ही उचित प्रतीत होता है।

अम्बाल संघ की अत्यन्त आग्रह भरी विनति के कारण १५ दिन पश्चात भी वहीं पर चातुर्मास करने की स्वीकृति देते हुये श्री पण्डित शुक्लचन्द जी महाराज ने समस्त संघ के समक्ष फरमाया कि—भाइयो! पूज्य श्री को किसी विशेष औषधोपचार के लिये बाहर जाना पड़े तो उसका आगार है, अन्यथा पूज्य श्री अम्बाला श्रीसंघ का दिल दुखा कर आगे नहीं बढ़ेगें।

इस वर्ष का चातुर्मास अम्बाले में ही करने का निर्णय किया गया है।

तदनुसार सं० २००२ का चातुर्मास अंबाला शहर ही में

करने का निश्चय रहा। आचार्य श्री ने व्याख्यान वाचस्पति जैन धर्म भूषण प्रेमचन्द जी महाराज को अम्बाला बुलाने के लिये पत्र भिजवाया। इस पत्र का उत्तर आया कि क्षेत्रों को स्पर्शता हुआ आऊँ या सीधा आऊँ? आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि आप शीघ्र सीधे बलाचोर, रोपड़ व खरड़ स्पर्शते हुये अम्बाला आ जावें। किन्तु प्रेमचन्द जी महाराज पधार न सके।

एक पत्र मलोक में विराजित व्याख्यानवाचस्पति धर्म भूषण मदनलाल जी महाराज को दिया। उस समय मदनलाल जी महाराज का स्वास्थ्य ठीक न था, अतः वे भी न आ सके।

———

समाणा में १३पंथियों को ललकार

समाणा के भाइयो की विनति से आचार्य श्री ने पण्डित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज को समाणा स्पर्श ने की आज्ञा दी। तदनुसार श्री पंडित शुक्लचन्द जी महाराज समाणा पधारे। इसी समय श्री मदनलाल जी महाराज भी समाणा पहुंच गये। दोनों पंडित मुनियों के एक साथ समाणा पधारने से एक विशेष महत्व पूर्ण कार्य हुआ।

यहाँ पर १३ पंथी साधुओं ने अपना माया जाल फैलाया हुआ था। उस समय भी मुनि चन्दनलाल भोले जीवों को अपने जाल में फँसाकर पतित करना चाह रहा चाह रहा था। वह शास्त्रार्थ का चैलेंज भी दे रहा था। इस बात के अम्बाला पहुंचने पर ही आचार्य श्री ने पंडित श्री को वहाँ भेजा था।

शास्त्रार्थ की तैयारी होने लगी। तेरह पंथी साधुओं ने अपने बागड़ी भाइयों को बुला लिया। इधर शास्त्रार्थ का रस लूटने के लिये अम्बाला के भाई भी वहाँ आ पहुंचे। व्याकरणाचार्य पंडित दशरथ जी को भी अम्बाला से बुला लिया गया। किन्तु ठीक समय पर चन्दनलाल मुनि ने कहा—हम शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। यह तो वही बात हुई कि खोदा पहाड़ निकली चूही।

चन्दनलाल मुनि ने सोचा था कि मैं अपनी गीदड़ भभकी से सारे पंजाब को गुंजा दूंगा। पर पंजाबी शेरों का नाम सुनते ही सब हेंकड़ी हवा हो गई। कहने लगे कि हम ने शास्त्रार्थ का कोई चैलेंज नहीं दिया और दिया भी हो तो नहीं करते। बात तो यह है कि श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज के पधारने से पहले ही उन्होंने इतनी उछल-कूद मचा रखी थी, उनके पहुंचते ही चन्दनलाल जी को वह सब टाँय-टाँय फिस हो गई।

यहाँ १३ पंथियों के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का परिचय देना अप्रासङ्गिक न होगा। अतः पाठकों के मनोविनोदार्थ १३ पंथियों के कुछ सिद्धान्तों का दिग्दर्श कराते हैं—

१३ पंथियों के कुछ अटपटे सिद्धान्त

पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज ने १३ पंथियों के सिद्धान्तों का भांडा फोड़ करते हुये बताया कि इन लोगों के सिद्धान्त बड़े अटपटे हैं। जैसे कि—

१—माता पिता की सेवा करना पाप है।

२ – बाड़े में लगी हुई आग से गौओं को बचाने में अट्ठा ह पाप लगते हैं।

३—ऊँचे मकान से गिरते बच्चे को बचाना पाप है।

४—किसी तपस्वी साधु को कोई अनार्य फाँसी लगा कर मारना चाहता है और कोई आर्य पुरुष बचाता है, तो वह पाप करता है।

५—मार्ग में पड़े हुये बालक को नहीं उठाना, चाहे वह मोटर गाड़ी के नीचे दबकर मर ही क्यों न जाय। यदि बचाओगे तो एकान्त पाप लगेगा।

६—कसाई से बकरे, गऊ आदि जीवों का बचाना एकांत पाप है।

७—असावधानी से जीव पैर के नीचे] आता हो और कोई बता दे तो वह बताने वाला एकान्त पापी होता है।

८—१३ पंथियों के सिवाय अन्य किसी को दान देना उतना ही पाप है जितना मांस खाने में, मदिरा पीने में, वेश्या गमन आदि कार्यों में।

९—किसी घर में आग लग जाने पर जलते हुये स्त्री, पुरुष व बालक को बचाना एकान्त पाप है।

भला ऐसे मिथ्या जाल को फैलाने वाले और दूषित सिद्धान्तों का प्रचार करने वाले क्या किसी विद्वान् मुनि के सम्मुख टिक सकते हैं? कभी नहीं? ऐसे मिथ्या जालों में तो अज्ञानी और अभागे लोग ही फँस सकते हैं।

इस विजय के कार्य में व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज तथा श्री शांति स्वरूप जी महाराज ने पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज को पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

जेजों में भी १३ पंथियों ने ऐसा ही जाल फैला रक्खा था। अतः वहाँ पर स्थानक वासी मुनि की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसलिये पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज ने श्री टेकचन्द जी महाराज, तपस्वी श्री सुदर्शन जी महाराज, व श्री शान्तिस्वरूपजी महाराज का चौमासा जेजों करवा दिया। जिससे वहाँ बड़े भारी धर्मजागृति हुई।

अम्बाला छावनी के दिगम्बर भाइयों के आग्रह से आचार्य श्री ने तपस्वी श्री सुदर्शन जी महाराज श्री राजेन्द्र जी महाराज, श्री रवीन्द्र जी महाराज को वहाँ व्याख्यानार्थ भेजा।

वहाँ मन्दिर के सामने चार दिन तक इन मुनिराजों के बड़े प्रभाव शाली सार्वजनिक व्याख्यान हुए ।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन महावीर जयन्ती का उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया ।

पूज्य श्री के विराजने से यहाँ जैनियों के पारस्परिक भेद-भाव नष्ट से हो गये थे, सभी जैनी आचार्य श्री को अपना गुरु मानते थे । तथा बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उनकी सेवा सुश्रुषा किया करते थे । दिगम्बरी भाइयों का प्रेम भी बड़ा सराहनीय था । वे तो अपने साधुओं से भी बढ़कर भक्ति से आचार्य श्री की सेवा करते थे । यहां पूज्य श्री का स्वास्थ्य भी धीरे-धीरे सुधर रहा था, आप दो दो मील तक जंगल जाने लग गये थे । यद्यपि प्रमुख व्याख्यान व्याख्यानवाचस्पति श्री रवीन्द्र मुनि जी तथा सुरेन्द्र मुनि जी दिया करते थे, तो भी पूज्य श्री दर्शनार्थ आये हुए श्रावकों को आधे-आधे घण्टे तक उपदेश देते रहते थे । आपके सुमधुर उपदेशों का पान कर तथा मृदुल मन्द मनोहर मुस्कानसे मंडित मुख मण्डल की दिव्य आभा का दर्शन कर भक्त गण आनन्द विभोर हो जाते थे ।

श्री खजानचन्द जी महाराज का स्वर्गवास

श्री खजानचन्द जी महाराज चातुर्मास करने के लिये पसरूर पहुंच गये थे । कि वहां पर जेष्ठ कृष्णा तृतीया बुधवार को आप अचानक स्वर्ग सिधार गये । यह समाचार समस्त श्री संघ ने बडे शोक के साथ सुना । आप उत्साही कार्यकर्त्ता और प्रसिद्ध व्याख्याता थे । जंगल देश में भ्रमण कर आपने कई अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित किया था । भाटिन्डा जिले के विवाली गांव के जैन सिक्ख प्रसिद्ध हैं । लुधियाने की

जैन कन्या पाठशाला आप ही की कृपा का फल है। रावल-पिण्ड का हाईस्कूल जिसका एक लाख रुपये का फंड था, तथा औषधालय आदि अनेक संस्थायें आपके सदुत्साह से पनपी और बढ़ रही थीं। आप रावलपिन्डी के ओसवाल कुलोत्पन्न लाला मनोहर शाह के सुपुत्र थे। आप जैसे सेवाव्रती मुनिराज के उठ जाने से श्रीसंघ को ऐसी हानि हुई कि जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में नहीं की जा सकती।

आपके स्वर्ग सिधार जाने की सूचना पा कर पूज्य श्री के हृदय पर एक बड़ा भारी आघात पहुंचा।

आचार्य श्री का स्वर्गारोहण तथा पीछे के समाज की अवस्था का दिग्दर्शन

कायस्स वियाघाए एस संगामसीसे वु पारंगमे मुणी, अविहम्ममाणे फलग गाव यट्ठी कालो वणीए कँखिज कालं जाव शरीर भेऊ त्ति बेमि ।

—देह-नाश के भय पर विजय प्राप्त करना यह (आत्मिक) संग्राम का अग्रभाग है। जो मुनि मृत्यु से घबराता नहीं है, वही संसार का पार पा सकता है। मुनि साधक आने वाले कष्टों से नहीं डरते हुए लकड़ी के पाटिये की तरह अचल रहे और मृत्युकाल आने पर जब तक जीव और शरीर भिन्न-भिन्न न हो जाय तब तक मृत्यु का स्वागत करने के लिए सहर्ष तैय्यार रहे, ऐसा मैं कहता हूँ।

प्रिय पाठक वृन्द,

आप ने अब तक पूज्य श्री के साथ विचरण करते हुए नान देशदेशान्तरों का दर्शन किया। हजारों भावुक भक्तगणों के भव्य भावनाओं के प्रवाह में अन्तर्तम को आप्लावित कर परम पावन किया। युवाचार्य प्रदानोत्सव, आचार्य पद-प्रप्ति का समारोह, अजमेर साधु सम्मेलन के दिव्य दर्शन, पूज्यश्री को 'पंजाब केसरी' पद की प्राप्ति आदि विविध आनन्द-दायक दृश्यों का साक्षात्कार कर अपने भाग्यों को सराहा।

इस प्रकार आरम्भ से अब तक आगे से आगे एक से एक

बढ़कर सुखद एवं उत्साह पूर्ण वातावरण में ही विचरण करते रहे। पर अब आपको अपने हृदय थाम कर अत्यन्त करुण प्रसंग-पूज्य श्री की अनन्त विरह-वेदना सहन करने के लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये। यह तो अब तक के विवेचन से सुविदित ही है कि पूज्य श्री जोधपुर से विहार कर पीपाड़ पधारे थे कि मार्ग ही में पेट की पीड़ा से पीड़ित हो गये थे। तब से लेकर आज तक आपका स्वास्थ्य कभी बनता और बिगड़ता रहा। देहली में आपकी दुर्बलता विशेष बढ़ गई, यहां तक कि पैदल विहार की भी सामर्थ्य न रही।

अम्बाले में आपका स्वास्थ्य अपेक्षा कृत कुछ सुधारता प्रतीत होने लगा। आप स्वयं पैदल चलकर दो-दो तीन-तीन मील दूर दिशा जंगल जाने लग पड़े थे। इससे पञ्जाब भर के श्री संघ के हृदय में एक अपूर्व आशा उत्साह और आनन्द की लहर सी छागई। लुधियाना, होशियारपुर, अमृतसर, लाहौर, रावलपिण्डी आदि के भक्त गणों के हृदय में यह आशा पल्लवित होने लगी कि चातुर्मास के पश्चात् पूज्य श्री के पदार्पण से हमारे नगर अवश्य पावन होंगे।

इन्हीं शुभ-लक्षणों को देखते हुए पूज्य श्री ने सदा छाया के समान साथ रहने वाले अपने परम-प्रिय विद्वान् शिष्य संत श्री पण्डित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज को भी इधर-उधर घूम कर धर्म-प्रचार की आज्ञा दे दी थी।

किन्तु काल की गति को कौन जान सकता है। मनुष्य सोचता कुछ और है और हो कुछ जाता है क्षण भर पूर्व मनुष्य जिस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता दूसरे ही क्षण वही घटना प्रत्यक्ष उपस्थित हो जाती है।

जैसा कि पहले कहा गया है, उत्साही नवयुवक मुनिराज श्री खजानचन्द जी महाराज के अकस्मात् स्वर्ग चले जाने से पूज्य श्री को एक विशेष मानसिक आघात पहुंचा था, अपने मन ही मन सोचा कि जाना तो हम जैसे दुर्बल वृद्ध और अस्वस्थ व्यक्तियों को चाहिये था, पर चलो वह वीर नवयुवक गया। इस प्रकार मार्मिक आघात से प्रभावित होकर पूज्य श्री ने देखा कि अब अपना भी आयुष्यकर्म समाप्त होने को है, अतः अब औषधोपचार आदि की कोई आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार निर्णय कर पूज्य श्री ने औषधि लेना छोड़ दिया और साथ ही आहार का भी सर्वथा परित्याग कर दिया।

अम्बाले में विराजमान इस वृद्ध संत शिरोमणि पंजाब केसरी के इस प्रकार औषधोपचर एवं आहार त्याग के समाचार बात की बात में सर्वत्र फैल गये।

इधर पूज्य श्री ने आहार आदि सांसारिक व्यवहारों से मुँह मोड़ कर पूर्ण विरक्ति का भाव ग्रहण कर लिया और प्रायः ध्यानावस्थित होकर दिन-दिन भर मौन रहने लगे।

पूज्य श्री की ऐसी अवस्था को देख कर भक्तगणों के हृदय चिन्तातुर हो उठे। सैकड़ों श्रावक गण चौबीस घण्टे दिन-रात आपको घेरे रहने लगे। पर यह वृद्ध भारत केसरी तो ध्यान में ऐसा मग्न था कि हाथ में माला और हृदय में वीर प्रभु के सिवा और किसी की कुछ सुनता ही न था।

पूज्य श्री ध्यानावस्था को ग्रहण करने से पूर्व भावी संघ संचालन के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गये थे। आपको यह पूर्ण विश्वास था कि मेरे पश्चात् उपाध्याय श्री आत्माराम जी

महाराज तथा गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज जैसे परम अनु-भवी विद्या वयोवृद्ध तेजस्वी मुनिराज के देख-रेख में श्री पं मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज जैसे उत्साही युवक संत संघ की नाव को सफलता पूर्वक खे सकेंगे।

पूज्य श्री ने श्री पण्डित शुक्लचन्द्र जी महाराज को निरन्तर २६ वर्ष तक अपनी या स्वर्गीय पूज्य श्री सोहनलाल जी महा-राज की सेवा में रखकर उनके अपूर्व चारित्र्य बल, दृढ़ संयम वैराग्य गुरु भक्ति विनय एवं लोकरंजन आदि गुणों की पूर्ण परीक्षा करली थी। इसी आधार पर पूज्य श्री ने उन्हें भावी संघ शासक के पद पर बैठाने का संकेत देकर इस ओर की चिन्ता से मुक्त हो गये थे। अब आपका और कोई कर्त्तव्य शेष ही नहीं रह गया था।

इस प्रकार सब कर्त्तव्यों से निश्चिन्त होकर पूज्य श्री ने एक प्रकार से समाधि की सी अवस्था ग्रहण करली थी। अब पूज्य श्री अत्यन्त आवश्यकता होने पर ही किसी से कुछ बोल लेते थे।

पर भक्त गण तो प्रति पल आपकी ऐसी अवस्था देखकर चिन्तातुर होते जा रहे थे।

चौबीस घण्टे रात-दिन उपाश्रय में जमें रहने वाले श्रावक श्राविकाओं को इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल होते देख पूज्य श्री ने फरमाया कि—

'आप लोग इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं? इसमें चिन्ता या व्याकुल होने की क्या बात है, आप लोग घबराते क्यों हैं। जो बात होने वाली है वह होकर रहेगी, आपके या मेरे किए नियत कर्म नहीं टल सकते।'

पूज्य श्री के इन बचनों को सुनकर श्रावक गणों के नेत्रों से

बरबस अश्रुधारा वह निकली और पूज्य श्री फिर ध्यानमग्न हो गये।

अपूर्व देश-प्रेम

इस अंतिम समय में जब कि पूज्य श्री का मन अहर्निश प्रभु के ध्यान में मग्न रहता था और आहार आदि सब सांसारिक कार्य कलापों का परित्याग कर दिया था। तो भी देश का प्रेम यथापूर्ण आपके हृदय में हिलोरें लेता रहा। ऐसी अवस्था में आपने अपने अंतिम संस्कार के सम्बन्ध में जो सूचना दी थी वह सदा स्मरणीय रहेगी।

पूज्य श्री ने लाला लक्ष्मीचन्द जी को अपने पास बुलाकर कहा कि—

'अब मेरा अन्त समय निकट है, मैं दो एक दिन का ही मेहमान हूँ। यदि मैं सदा के लिए आप लोगों से विदा हो जाऊँ तो मेरे शरीर पर खद्दर के कपड़े के सिवा दुशाले आदि कुछ भी मत डालना।'

ऐसी थी पूज्य श्री की अपने देशस्वदेशी और खादी के प्रति अटल निष्ठा कि मृत्यु के निकट पहुँच कर भी आपको अपने देश के गौरव का ध्यान यथापूर्व बना रहा।

महाप्रयाण की ओर द्रुत गति

ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी शनिवार को पूज्य श्री की शारीरिक अवस्था अत्यन्त शिथिल हो गई। पर आप नहीं चाहते थे कि मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के धर्म प्रचार कार्य में बाधा हो. फिर भी अपना अंतिम समय निकट जानकर आपने पण्डित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के पास सूचना भेज

गई कि 'पूज्य श्री की दशा अत्यन्त दुर्बल हो गई। आहार लेना औषधि ग्रहण करना या बात चीत करना बिल्कुल बन्द कर दिया है, अतः आप शीघ्र पधारें।'

उक्त समाचार मिलते ही पंडित रत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज ने पटियाला से विहार कर दिया।

इधर पंजाब भर के श्रावकों के झुंड के झुंड पूज्य श्री के दर्शनार्थ अम्बाले में एकत्रित होते जा रहे थे। चार-पाँच दिन पूर्व ही पसरूर के जो भाई पूज्य श्री को परम प्रसन्न और स्वस्थ रूप में देख गये थे, आज उन्हें इस अवस्था में देख सन्न से रह गये। देखते ही देखते पूज्य श्री की शिथिलता इतनी बढ़ गई कि ऊपर चढ़ने की शक्ति भी नहीं रही। साधुओं ने चौकी पर बैठाकर आपको ऊपर की मंजिल में पहुंचाया। वहाँ पहुंचते ही आपकी श्वास की गति बहुत बढ़ गई, अतः आपको पाट पर लेटा दिया गया।

नियम पालन में अपूर्व दृढ़ता

ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी पड़ रही थी। अम्बाले में उस गर्मी का प्रकोप और भी असह्य हो रहा था, पर पूज्य श्री को अब बाहर की गर्मी और सर्दी से कुछ प्रयोजन नहीं था। वे तो अविचल ध्यान में मग्न थे। ज्यूं-त्यूं करके दिन बीत गया और रात्रि के अंधकार ने जगत् को अपनी काली चादर में ढक लेने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया।

इस समय चारों ओर हवा का कहीं नमोनिशान भी दिखाई न देता था। उमस के मारे प्राणिमात्र का दम घुटा सा जा रहा था। सभी लोग बिजली के पंखों की हवा में या ऊँची-ऊँची

खुली छतों पर हाथों में पंखे लिये हुए अथवा खुले मैदानों में बैठकर पंखे झलते और रात भर बर्फ का शीतल जल पी पीकर भी व्याकुल हो रहे थे। पर यह दिव्य तपस्वी पंजाब केसरी पूज्य मुनिराज ऐसी गर्मी और उमस से भरी भयंकर कालरात्रि में भी उस गर्मी की पर्वाह किये बिना छत के नीचे कमरे में शान्त भाव से ध्यानावस्थित बैठा है। आहार का तो कई दिन पूर्व परित्याग कर दिया था, पर कभी-कभी पानी ले लेते थे। रात्रि के इस भयङ्कर दमघोटू गर्म वातावरण में प्यास के कारण बार-बार होठ और गला सूख रहा है, दो बूंद पानी से मरणासन्न शरीर में चेतना का संचार हो सकता था, पर रात्रि में पानी कैसे लिया जा सकता था। भले ही प्राण कल निकलते अभी निकल जाएँ, पर नियम पालन का दृढ़व्रती यह मुनिराज क्या नियम भङ्ग कर अपने प्राणों की रक्षा का स्वप्न में भी विचार कर सकता है? कदापि नहीं।

यह रात सचमुच पहाड़ बन गई थी। पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित सैंकड़ों श्रावकों के लिये एक-एक पल युग के समान भारी हो रहा था। उनके मुखों पर एक भाव आता और दूसरा जाता था। कब क्या होने वाला है, किसी को कुछ मालूम नहीं था। सभी के हृदय अवर्णनीय चिन्ता और शोक के सागर में गोते लगा रहे थे।

उपस्थित सब संत पूज्य श्री को चारों ओर से घेरे हुए थे। गर्मी और पिपासा-जन्य वेदना के कारण पूज्य श्री की व्याकुलता क्षण पर क्षण बढ़ती जा रही थी। पर वे अपनी उस असह्य वेदना को अपने अन्तर ही में लीन किये हुए थे। बाहर से उनके मुख-मंडल पर अनुपम शक्ति और दिव्य तेज की अलौकिक

आभा झलक रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मुनिराज के रूप में परम शांति ने स्वयं शरीर धारण कर लिया हो।

इसी प्रकार पल-पल करके समय बीतता गया और रात्रि के दो बज गये।

इस समय श्री लाला लक्ष्मीचन्द जी ने पूज्य श्री के हाथों और पैरों की नाड़ियों की परीक्षा की। नाड़ी देख लेने के पश्चात् उपस्थि तसंतों तथा श्रावकों द्वारामहाराजकी अवस्था पूछने पर लक्ष्मीचन्द जी कुछ बोल न सके। उनकी आँखों की अश्रु-धारा ने उपस्थित भक्तवर्ग को सूचित कर दिया कि पूज्य श्री की दशा अत्यन्त शोचनीय है।

इस पर पंजाब भर के श्रीसंघो को तत्काल एक्सप्रेस तारों द्वारा सूचना दे दी गई कि 'पूज्य श्री संसार लीला समप्ति की तैयारी कर रहे हैं, उनकी अवस्था चिन्तनीय हो गई है।'

तारों के मिलते ही हजारों भक्त गणों के पांव अम्बाला की ओर बढ़ गये। इधर बड़ी कठनाई से बीतता हुआ रात्रि का एक-एक मिनट स्मरण करा रहा था कि—

खुशी की तो गुजर जाती है नक्काद सौ रातेंगें।
घड़ी भी इक मुसीबत की बशर मुश्किल से होती है॥

येन केन प्रकारे एक-एक क्षण करके यह काल रात्रि बीत गई। प्रभात होते ही पराकाष्ठा की दुर्बलता जन्य वेदना और शिथिलता के रहते हुए भी पूज्य श्री ने प्रातःकाल का प्रतिक्रमण स्वयं किया।

रात भर को पिपासाकुलता को देख मुनियों ने प्रार्थना की कि—

'गुरुदेव सूर्य निकल आया है, पानी ग्रहण कर लीजिये।'

पर आचार्य श्री तो अंतिम समय तक अपने नियम पालन से तिलमात्र भी विचलित नहीं होना चाहते थे।

अन्तिम क्षण में भी अपनी अटल धैर्यवृत्ति एवं दृढ़ विचार धारा को व्यक्त करते हुए बोले कि—

'अभी नवकारसी (दो घड़ी) दिन नहीं चढ़ा है'

धन्य है पंजाब केसरी की नियम-परायणता। नियमपालन में ऐसी अद्‌भुत दृढ़ता को देखकर सभी चकित रह गए। संसार में भला ऐसे कितने सन्त होंगे जो इस प्रकार अपने नियम पालन में शीथलता आने देने की अपेक्षा मृत्यु से आलिंगन करना श्रेयस्कर समझते हों। पर पूज्य श्री का तो जीवन ही इस प्रकार के कठोर कर्तव्य पालन के लिए निर्मित हुआ था। साधु-नियमों की रक्षा करते हुए हंसते-हंसते अपने प्राणों की बलि दे देना आप के लिए साधारण सी बात थी।

यदि शनिवार की भयंकर गर्मी की काल रात्रि में पूज्य श्री कुछ औषध पथ्य अथवा पानी ही लेना स्वीकार कर लेते तो संभव था कि पूज्य श्री हमारे मध्य और कुछ समय तक बने रह जाते। यद्यपि यह भी ठीक है कि काल की गति को कोई टाल नहीं सकता, पर मनुष्य को औषधोपचार कर देने से आत्म-संतोष अवश्य प्राप्त हो जाता है, ऐसी कइयों की भावना रहती है। पूज्य श्री ने रात भर पिपासाकुल होने के कारण प्राणों के कंठगत हो जाने पर भी दो घड़ी दिन चढ़ जाने के पश्चात् ही पानी ग्रहण किया। पर तब तक तो आप की अवस्था क्षीणतर हो चुकी थी।

आचार्य श्री की ऐसी अवस्था को देखकर श्रद्धालु भक्तजनों ने हाथ जोड़ कर विनति की कि पूज्य श्री औषधोपचार के लिए

हकीम, डाक्टर और वैद्य गण श्री सेवा में उपस्थित हैं, आज्ञा हो तो कुछ औषधोपचार किया जाय।

पर पूज्य श्री ने ध्यान मग्न रहते हुए हाथ हिला कर मौन भाव से नकारात्मक उत्तर दिया। मानो दिव्य भाषा में कह रहे हों कि—

उन हकीमों से कहो यूं बोल कर
करते थे दावे किताबें खोल कर
यह दवा हरगिज न खाली जायगी
जर सिकन्दर का यहीं सब रह गया
मरते दम लुकमान भी यह कहगया
यह घड़ी हरगिज न टाली जायगी

इस समय तक पंजाब के प्राय: प्रत्येका प्रमुख नगर से आये हुए श्रद्धालु दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ी चली आ रही थी। पूज्य श्री के उपाश्रय तथा उसके आस-पास दर्शनार्थियों के झुंड इस प्रकार एकत्रित हो रहे थे कि कहीं तिल धरने को भी स्थान नहीं रह गया था।

वे लोग सचमुच बड़े अहो भाग्यशाली थे जिन्होंने अपनी आंखों को पूज्य श्री के अन्तिम दर्शनों से कृतार्थ कर लिया था।

देश-देशान्तरों से आये हुए श्रावक गण पूज्य श्री की जीवन रक्षा के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत थे, लाखों करोड़ों रुपया लुटाने को तैयार थे। पर पूज्य श्री तो अब समस्त श्री संघ को शोक सागर में निमग्न कर स्वयं संसार से पार होने की तैयारी कर चुके थे। अब भला उन्हें इस अनन्त यात्रा के पथ से कौन लौटा सकता था। जब उपस्थित साधु संतों तथ श्रद्धालु श्रावकों ने देखा कि पूज्य श्री ने हम से मुँह मोड़ कर

प्रभु के चरणों में चित्त लगा लिया है तो रविवार को प्रातः संथारा करा दिया गया।

उस समय पूज्य श्री की ध्यानावस्थित मूर्ति के दर्शन अत्यन्त भव्य प्रतीत हो रहे थे, मुखमंडल पर अनिर्वचनीय शांति का साम्राज्य छाया हुआ था। शरीर के अंग-अंग से दिव्य तेज की आभ झलक रही थी। चित्त तो प्रभु चरणों में लीन था ही।

ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी रविवार सं २००२ की इस पुण्यतिथि को समग्र उपस्थित मुनि वृन्द प्रातःकाल से ही चकित से-चित्रित से एक-टक पूज्य श्री के दर्शन-दिव्यानन्द का पान कर रहे थे। अपलक भाव से एक-टक निहारते हुए अपनी सुध-बुध से हीन से हो गये थे। पूज्य श्री तो समाधिस्थ थे ही पर सन्त गण भी किसी अज्ञात भाव से प्रभावित हो स्तब्ध से हो रहे थे।

इधर श्रावक गण सकरुण नेत्रों से पूज्य श्री के अंतिम दर्शन कर हर्ष, शोक, आनन्द और वेदना के महान् सागर में गोते लगा रहे थे। वे कभी सोचते कि हमारा यहाँ पहुँचना सार्थक होगया जो पूज्य श्री के अंतिम दर्शन का दुर्लभ अवसर प्राप्त होगया। पर दूसरे ही क्षण जब उन्हें यह भान आता कि पूज्य श्री हमें सदा के लिये विरह व्याकुल बना कर प्रस्थान कर रहे हैं तो बरबस उनके नेत्रों से अश्रु धारा बह निकलती। इसी प्रकार ज्यूं-ज्यूं क्षण बीतते जा रहे थे कि उधर मानव समुद्र का प्रवाह भी उमड़ता जा रहा था। साथ ही साथ भक्त गणों के हृदय की धड़कन भी प्रतिपल बढ़ती जा रही थी कि न जाने किस क्षण क्या सूचना मिल जाय।

इसी प्रकार शोक और सन्देहों में घिरा हुआ मानव-महासागर अत्यन्त शांत और निश्चल भाव से अपने हृदयों के

सम्राट् के अंतिम दर्शनामृत का पान कर रहा था कि सूर्यदेव ठीक लोगों के सिर पर आ पहुंचे।

मानो सूर्यदेव भी इस संत-शिरोमणि पूज्य श्री के दर्शनों से अपने आपको कृतार्थ करने के लिये आकाश के मध्य तक ऊपर उठ आये हों।

ऐसे ही समय में दिन के ठीक १२ बजे पूज्य श्री समस्त श्री संघ को रोता बिलखता छोड़ स्वर्ग सिधार गये।

इस समय सभी भक्त गणों ने पूज्य श्री के शरीर के पास जाकर देह स्थिति का देखा कि यद्यपि शरीर शुष्कपत्र के समान हो गया है, फिर भी मुख-मंडल पर एक अलौकिक कांति की आभा चमक रही है। उस दिव्य आभा को देखते हुए किसी को सहसा विश्वास ही नहीं हो रहा था कि पूज्य श्री अब हमारे मध्य नहीं रहे हैं।

इस दृश्य को देखते ही चारों ओर भयङ्कर करुण-क्रन्दन और मर्मभेदिनी चीत्कारों से संपूर्ण वातावरण व्याप्त हो गया।

वहाँ कौन किसे सांत्वना देता या शांत करता। सभी के हृदयों में एक दूसरे से बढ़कर दुःख का सागर लहरा रहा था। सभी लोग फूट-फूट कर रो रहे थे मानो उनका सर्वस्व प्राणाधार ही उनसे रूठ कर मुँह मोड़ कर चला गया हो।

पूज्य श्री के स्वर्ग सिधारने की सूचना दावानल की भांति क्षण भर में सारे प्रान्त और देश भर में फैल गई। सभी भक्त गण अपने काम-काज को जहाँ का तहाँ छोड़ अम्बाले की ओर चल पड़े।

ऐसे शोक के समय में पूज्य श्री की छाया के समान प्रति रूप पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज की अनुपस्थिति से

भक्तों के हृदय और भी अधिक शोकातुर हो रहे थे। श्री पण्डित शुक्लचन्द्र जी महाराज को शनिवार की रात्रि को पूज्य श्री की अस्वस्थता का समाचार मिला था और आप प्रातःकाल ही पटियाला से अम्बाले की ओर चल पड़े थे। मोटर कार के लिये पटियाले से अम्बाले तक १ घण्टे का मार्ग था पर मुनिश्री को तो साधु-नियमों का पालन करते हुए पैदल ही पहुंचना था। यह लम्बा पैदल मार्ग दिन भर चल कर भी डेढ़ दिन से कम में पूरा नहीं हो सकता था। इस पर भी विशेषता यह है कि सन्ध्या समय के पश्चात् चलना नहीं। पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज अपनी देह की सुध-बुध विसार वायु वेग से बढ़े जा रहे हैं।

ज्येष्ठ की भयंकर लू और गर्मी पड़ रही है। सड़क पर बिछा हुआ तारकोल भी मारे गर्मी से पिघल कर बह निकला है। सड़क अंगारे की भाँति तप रही है। ऊपर से सूर्य अपनी हजार किरणों से ज्वाल-मालाओं की वर्षा कर रहा है। प्राणीमात्र को झुलस देने वाली ऐसी भयंकर गर्मी में भी यह गुरु का अनन्य भक्त सन्त बेसुध की भाँति लम्बे लम्बे डग भरता हुआ नंगे सिर नंगे पांव आगे बढ़ता ही जा रहा है। इस को न गर्मी की पर्वाह है न धूप की। इस संत प्रवर के हृदय में एक मात्र यही लालसा बलवती हो रही है कि किसी प्रकार अंबाले पहुँच कर पूज्य श्री के अन्तिम दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करलूं।

पंचासों मोटरें कारें तथा ट्रेनें इनके सामने से आती और सर्र से धूँआ उड़ाती हुई निकलजाती हैं, जो उन्हें पलक झपकते ही पूज्य श्री के चरण कमलों में पहुंचा सकती थीं, पर साधु-जीवन की कठोरता की परीक्षा तो ऐसे अवसरों पर ही हो सकती है।

पूज्य गुरुदेव के अन्तिम-दर्शनों जैसा फिर कभी हाथ में न आने वाला दुर्लभ अवसर हाथ से निकल रहा है और अंबाले में वे केवल ६ मील दूर रह गए हैं कि सूर्य धोखा देकर अस्त हो जाता है। आप विवश से हताश से हो वहीं जंगल में एक वृक्ष के नीचे रात्रि बिता कर दूसरे दिन सोमवार को प्रातः ६ बजे अंबाले पहुंच कर पूज्य गुरुदेव के शरीर मात्र का दर्शन कर पाते हैं। इस प्रसंग में सहसा महावीर प्रभु और गौतम स्वामी का स्मरण हो आता है।

जिस प्रकार क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजर्षि वीर प्रभु के अनन्यतम शिष्य गौतम स्वामी ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे, वैसे ही क्षत्रिय शरीरधारी पूज्य श्री १००८ पंजाब केसरी श्री काशीराम जी महाराज के अनन्य भक्त शिष्य सन्तप्रवर पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज भी ब्राह्मण शरीरधारी हैं। जैसे वीर प्रभु ने जीवन भर छाया के समान साथ रहने वाले गौतम स्वामी को अपने अन्तिम समय धर्म प्रचार के लिए बाहर भेज दिया था और इस प्रकार वे वीर प्रभु के अन्तिम दर्शनों से वंचित रहे, ठीक उसी प्रकार पूज्य श्री ने भी सुख में दुःख में सम्पत्ति में विपति में सदा दिन-रात साथ रहने वाले अपने अनन्य सेवा-व्रती शिष्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज को धर्म प्रचारार्थ बाहर भेज दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो घटना जिस रूप में तीर्थंकर वीर प्रभु और उनके गणधर के साथ अन्तिम समय घटित हुई, ठीक वही घटना उसी रूप में तर्थ के पालक पूज्य श्री और उनके कार्यवाहक पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी के साथ इस समय घटित हुई।

वास्तव में यह साम्य आश्चर्यजनक है।

राजपुरा में पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार पाकर श्री पंडितमुनि शुक्लचन्द्रजी महाराज सन्न से रह गये। इतनी दौड़ धूप कर भूख, प्यास धूप गर्मी सहकर जिन गुरुदेव के दर्शनों के लिये सिर पर पांव धरे हुए मीलों से भागे चले आ रहे थे, वे पूज्य श्री आचार्य चरण अपने शिष्य शिरोमणि को अपनी अन्तिम मधुर मन्द-मुस्कान की झलक दिखाये बिना ही चले गये।

इसी शोकावेग में पूरित भारी हृदय को लिए हुए श्री पं० शुक्ल चन्द्र जी महाराज वीरतगति से पथ पर बढ़ते जा रहे हैं।

पटाक्षेप

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गीकरोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥*

मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज अम्बाला पहुँच कर दूर-दूर के नगरान्तरों से आये हुए मलिनवदन उदास भक्त गणों को शोकावेग के अपार पारावार में निमग्न होते देखकर स्वयं भी शोकाश्रु जलों से सिक्त हो गये।

पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज को देखते ही सब भक्तों के हृदयों में शोक की लहरें द्विगुणित रूप में उमड़ पड़ीं और सभी फूट-फूट कर रोने लगे। यहाँ कोई किसी को धैर्य बन्धाने वाला न था, सभी के हृदय एक दूसरे से बढ़कर दुःख भार से दुखित हो रहे थे। पूज्य श्री ने अपने सद्गुणों से लाखों भक्त गणों के हृदयों पर पूर्णाधिकार प्राप्त किया हुआ था। वे किसी के न होकर सब के हो गये थे। वहाँ जैन, अजैन, हिन्दु, सिक्ख, मुसलमान का कोई प्रश्न नहीं था। ऐसा भला कौन हो सकता था जो सत्य, दया, और प्रेम के साक्षात् मूर्त-स्वरूप सन्त शिरोमणि के प्रेम का प्रसाद पाकर आत्म-तृप्ति प्राप्त न करना चाहता हो। जिस किसी ने पूज्य श्री के जीवन में एक बार भी दर्शन कर लिये वही उन्हें अपना समझने लग जाता

---

* यह काल की भी कैसी क्रूरता है कि वह पहले तो संपूर्ण गुणों के आगार तथा मानवता के शृङ्गार स्वरूप पुरुषरत्न-सर्व श्रेष्ठ महापुरुष-को उत्पन्न करता है और फिर बात की बात में उसे उठा लेता है।

था। वे वास्तव में अनाथों के नाथ मातृ-पितृ हीनों के माता-पिता, दीन हीनों के दीन-बन्धु और सर्वस्व थे। आपके चरणों में बैठकर दुःखी से दुःखी प्राणी को भी एक अनुपम आत्म-शांति ढाढ़स, साहस और धैर्य की प्राप्ति होती थी।

यही कारण था कि आज प्रत्येक भक्त का हृदय इस प्रकार रो रहा था कि मानो उसका सर्वस्व ही छिन गया हो। ऐसे परितः व्याप्त करुणा के वातावरण में वीतरागता की ओर अग्रसर होने वाले पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी जैसे संत का हृदय भी इस विरह-वेदना के भार को न सह सका और वह फूट कर अश्रुधारा के अजस्र प्रवाह में बह निकला।

मोह न होते हुए भी परम विरहासक्ति के कारण ही यह करुण प्रवाह ठीक उसी प्रकार उमड़ रहा था, जैसे कि महावीर प्रभु के मोक्ष पधारने का पता लगने पर गौतम स्वामी शोक के वेग को रोक न सके और फूट-फूट कर रोने लगे थे। यह करुणामय धारा परम-पावन प्रेम की परिचायिका थी, न कि किसी स्वार्थान्ध मोह की।

ज्यों-त्यों करके शोक विकल भक्त जन श्री पं शुक्लचन्द्र जी महाराज के पहुंच जाने पर पूज्यश्री के अन्त्येष्ठिसंस्कार तथा शव यात्रा का प्रबन्ध करने लगे। आचार्य श्री का शरीर पहले ही साधुओं ने निचली मंजिल में लाकर श्रावकों को सौंप दिया था।

आज नगर के प्रायः सभी प्रमुख बाजार, स्कूल-कालेज आदि सार्वजनिक संस्थाएँ महाराज के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा भक्ति प्रकट करने के लिये बन्द हो गई थीं। भारत भर के अनेक प्रमुख पत्रों में इस परम प्रतापी पूज्य श्री के निधन के शोक समाचार प्रकाशित हो चुके थे। अम्बाला नगरी में आज चारों ओर

से शोकार्त नर-नारियों का पारावार उमड़ता आ रहा था। पूज्यश्री की शव यात्रा में भाग लेने के लिये दूर-दूर से लोग रेल मोटर ताँगे बस आदि सवारियों में तथा आस-पास के लोग पैदल ही चले आ रहे थे।

शव यात्रा का प्रारम्भ

मध्यान्ह दो बजे तक ३०-४० हजार भक्त गण एकत्रित हो चुके थे। जिधर देखो उधर ही मनुष्यों के नग्न सिर ही नग्न सिर दिखाई देते थे। सभी लोगों ने शोकसूचक श्याम चिन्ह धारण किये हुए थे। ऐसी अपार भीड़ के मध्य पूज्य श्री काशीराम जी महाराज की जय जैन धर्म की जय, भगवान् महावीर स्वामी का जय, आदि गगनभेदी जयकारों के साथ पूज्य श्री के पार्थिव देह को एक अत्यन्त सुसज्जित अलंकृत विमान में रक्खा गया। जय-जय की ध्वनि के साथ इस देवोपम विमान को सैंकड़ों भक्तगणों ने अपने कन्धों पर उठा लिया। और इस प्रकार तुमुल जय घोषों के साथ पूज्य श्री के पार्थिव देह की शोभा यात्रा ने प्रस्थान किया।

इस समय भी पूज्य श्री के मुख-मंडल पर अपूर्व शांति और तेज झलक रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि आचार्य श्री प्रगाढ़ योग निद्रा में सुख पूर्वक सो रहे हों। पर वास्तव में तो वे अनन्त सुख की नींद की गोद में समाये हुए थे।

इस शान्ति के सन्देशवाहक पंजाबकेसरी के विमान ने ज्योंही प्रस्थान किया कि अनेक बेण्ड एक साथ ही बज उठे।

इस शोक-सनी शव यात्रा के भव्य जुलूस को देखकर आज से ४७ वर्ष पूर्व कांधला नगरी में पूज्य श्री के दीक्षोत्सव के राज-

सिक जुलूस का स्मरण हो आ रहा था। उस समय भी आपकी बड़े ठाट-बाट से सवारी निकाली गई थी और आज उस से कहीं अधिक शान से शव यात्रा निकल रही है। तब आपने लोक कल्याण तथा आत्मोद्धार के लिये सांसारिक माया, ममता, मोह के बन्धनों को त्याग कर दीक्षा व्रत लिया था और अपने जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति में अग्रसर हुये थे और आज उस लक्ष्य में यथासम्भव सफलता प्राप्त कर इस संसार से सगर्व विजय यात्रा कर रहे हैं।

पटियाला का राजकीय बैंड और लुधियाना के बैंडों की तड़क-भड़क और साज-सज्जा सबसे निराली थी। आगे-पीछे और बीच में अनेक स्कूलों की छात्र-छात्रओं की टोलियां पंक्ति-बद्ध होकर चल रही थीं। साथ में अनेक भजन मंडलियां वैराग्यपूर्ण भजन गाती जा रही थीं। अमृतसर, जालंधर, रवलपिंडी, पसरूर, स्यालकोट, जम्मू, पटियाला, दिल्ली, होशियारपुर, गुजरांवाला आदि के भक्त गण अपने-अपने नगरों के माटो लिये बड़ी भक्ति व शांति के साथ आगे बढ़ रहे थे।

विमान पर रुपये, पैसे, अठन्नी, चवन्नी, दुवन्नी तथा मेवों आदि के ढेर उछाले जा रहे थे और चाँदी के अचित पुष्पों की वर्षा हो रही थी। पूज्य श्री का यह भव्य जुलूस धीरे-धीरे प्रमुख बाजारों गली मार्गों से होता हुआ जैन कालिज के विशाल आंगन में आ पहुंचा।

यहाँ पर विमान नीचे उतारा गया। और भिन्न-भिन्न संस्थाओं नगरों व श्रावकों की ओर से १६३ कमख्वाब के बहु-मूल्य दुशाले ओढ़ाये गए। ६० मन चन्दन की चिता बनाई गई।

इस समय सूर्य भगवान् भी मानो इस करुण दृश्य को न देख सकने के कारण कुछ देर के लिये बादलों में घिर अस्त होने की तैयारी करने लगा। अथवा यूं कहें कि जब जैन जगत् का एक सूर्य अस्त हो रहा हो और दूसरा सूर्य चमकता रहे, यह अति अनुचित है, ऐसा जानकर गगन-विहारी सूर्य भी अस्ताचल की ओर जा रहा था। किंवा शोकार्त विरह ताप से सन्तप्त नर-नारियों को अपने प्रचंड ताप से और अधिक तपाना उचित न समझ कर ही सूर्य पश्चिम की ओर हो दुःखी भक्तजनों पर ठंडी छाया करने लग पड़ा था। कुछ भी हो, इस प्रकार सहसा सूर्य के छिप जाने से ५० हजार के लगभग नर-नारियों को आतप के संताप से कुछ शांति मिली। और भक्त गणों ने बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ पूज्य श्री की देह को चन्दन निर्मित चिता पर ला धरा।

चिता पर रखे हुए शांताकृति परम पूज्य पंजाब केसरी श्री१००८ काशीराम जी महाराज के भौतिक देह को उपस्थित सब जन समूह ने बड़ी श्रद्धा भक्ति से नतमस्तक हो अन्तिम नमस्कार किया। सभी लगों के मस्तक अनायास ही आदर के साथ झुक गये।

'पूज्य श्री पंजाब केसरी काशीराम जी महाराज की जय, आदि के साथ गगन मंडल गूँज उठा।'

इस प्रकार पूज्य श्री के अन्तिम दर्शन पाकर और यह जान कर कि पूज्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य अब हमें फिर कभी प्राप्त न हो सकेगा जनसमूह बड़े चीत्कार के साथ करुण-क्रन्दन कर उठा। लोगों के नेत्रों से बहती हुई अश्रुधारा रोके न रुकती थी। इसी समय कुछ विज्ञ श्रावकों ने धैर्य धरकर पंडित मुनि श्री शुक्ल-

चन्द्र जी महाराज से प्रार्थना की कि आप कुछ ऐसा उपदेश दीजिए कि शोक-विह्वल लोगों को कुछ धैर्य बंध सके।

मुनि श्री तो स्वयं ही दुःख के पारावार के कारण अधीर हो रहे थे फिर भी यथाकथंचित् प्रकृतिस्थ होकर जनता को सम्बोधित करते हुए कहने लगे कि—

समुपस्थित श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों,

आज परम शोक का अवसर है कि पूज्य श्री हमें असहाय अवस्था में छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए। कुछ दिनों पूर्व जब पूज्यश्री ने मुझे पटियाला, समाणा आदि जाकर धर्म-प्रचार का आदेश दिया था और स्वयं दो-दो मील दूर तक जाने, आने लगे थे, तो उस समय किसी के मन में यह कल्पना भी नहीं आ सकती थी कि पूज्य श्री इतनी जल्दी हम से बिछुड़ जाएंगे।

अमृतसर, रावलपिंडी, लाहौर, पसरूर होशियारपुर और जंडियाला आदि नगरों के भाइ बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हुए दिन काट रहे थे कि कब चातुर्मास समाप्त हो और कब पूज्यश्री हमारे नगरों को अपने चरणकमलों की पावन रज से पवित्र करें। जब ये भाई अपने अपने नगरों में चातुर्मास की विनति के लिए यहाँ पर पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए तो पूज्य श्री ने चातुर्मास के निर्णय का भार मेरे कंधों पर ही डाल दिया और सब बातों को देखते हुए अंबाले ही का निर्णय किया गया था। पर सहसा पूज्य श्री के स्वर्ग सिधार जाने की सूचना मिली तो सब आशाओं पर पानी फिर गया और सब भक्तगणों व शिष्य समुदाय को काठ मार गया।

जो होनी है सो होकर रहती है। काल की गति के आगे किसी का कुछ वश नहीं चलता।

आया है सो जायगा, राजा रङ्क फकीर ।
इक सिंहासन चढ़ि चले दूजे बंधे जंजीर ॥

अथवा

'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च'

के अनुसार जन्म धारण करने वाले प्रत्येक प्राणी को शरीर त्याग करना ही होगा। पर अन्तर इतना ही है कि महापुरुष अपने शुभ कर्मों के द्वारा ऐसी गति पाते हैं कि वे संसार से विदा होते हुए भी कर्म बन्धनों से छुटकारे के मार्ग की ओर बढ़ते हैं तथा सिंहासन में बैठकर जाते हैं, पर संसारी लोग बन्धे हुए जाते हैं। तदनुसार आप देखते हैं कि पूज्य श्री गुरुदेव ने ऐसे शुभ कर्म किये कि वे सिंहासन में चढ़कर जा रहे हैं।

कबीरा जब हम आए जग हँसा हम रोये।
ऐसी करनी कर जा हम हँसे जग रोये ॥

पूज्य श्री ने अपने अनुपम चरित्रबल और लोकोपकार की भावना के द्वारा इस उक्ति को अक्षरशः चरितार्थ कर दिखाया है। आज वे अपने कर्त्तव्य का पालन कर संसार से सहर्ष विदा हो गये हैं। वे हँसते-हँसते चले गये हैं पर हम लाखों-लाखों नर-नारी उनके लिये रो रहे हैं। आज भारत भर के चतुर्विध श्रीसंघ को और विशेषतः पंजाब के श्रीसंघ को जो दुःख हो रहा है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पूज्य श्री के उपकारों का स्मरण आते ही हृदय गद्गद् हो जाता है। पंजाब तो आपके उपकारों से कभी उऋण नहीं हो सकता। पंजाब के अतिरिक्त मेवाड़, मारवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, संयुक्तप्रांत, दिल्ली आदि अनेक प्रान्तों के

श्री संघ आज पूज्य श्री के उपकारों का स्मरण कर उनके असह्य वियोग के कारण परम कातर हो रहे हैं।

पूज्य श्री पंजाब केसरी के स्वर्ग सिधार जाने से श्री संघ में जो स्थान रिक्त हुआ है, इसकी पुनः पूर्ति असम्भव ही प्रतीत होती है। जैसे पूज्य श्री १००८ सोहनलाल जी महाराज का तेज और प्रताप तो पूज्य श्री १००८ पंजाब केसरी काशीराम जी महाराज के रूप में फिर प्रकाशित हो गया था पर अब जो यह दिव्य तेज अस्त हुआ है, उसके पुनः प्रकाशित होने की कोई आशा नहीं।

चारों ओर आंखों के आगे अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ दिखाई देता है। कुछ भी समझ में नहीं आता कि अब मझधार में पड़ी हुई हमारी नौका को पार कौन लगायेगा।

पर फिर भी हमें भगवान् वीर प्रभु की अपार कृपा तथा स्वर्गीय पूज्य आचार्य श्री की सद्भावनाओं का भरोसा रखते हुये श्रीसंघ को समुन्नत करने के लिये उत्साहित होना चाहिये।

मुझे विश्वास है कि इस निराशा के अन्धकार में भी पूज्य श्री का अलक्ष्य प्रताप और सद्भाव सदा हमारा मार्ग-प्रदर्शन करता रहेगा।

भाइयो!

यदि आपके हृदय में पूज्य श्री के प्रति सच्ची श्रद्धा है तो उस श्रद्धा को क्रियात्मक रूप में परिणत कर उसकी सत्यता को सिद्ध कीजिये। हम उनके सच्चे भक्त तो तभी कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे, जब कि पूज्य श्री के दिखाये हुए मार्ग पर चल कर श्रीसंघ की उन्नति के लिये कमर कस लेंगे।

पूज्य श्री श्रीसंघ की एकता और उन्नति के लिये जिए और मरे। आपके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न संघ में एकता स्थापित करना था। पूज्य श्री का आदेश था कि वीतराग श्री वीर प्रभु के बताये हुए दया धर्म और सत्य के मार्ग पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुए समाज में प्रेम एवं सौहार्द आदि गुणों की वृद्धि करते हुये निस्स्वार्थ भाव से संघ सेवा करते रहें।

अहिंसा, सत्य, तप व संयम की आराधना में चित्त लगाकर धर्म की उन्नति में योग दें।

इस प्रकार पूज्य श्री के दिखाये हुए मार्ग पर चलते हुये उनके उपदेशों को कार्य रूप में परिणत करने से ही हम पूज्य श्री के सच्चे सेवक कहलाने के पात्र हो सकेगें और अपने को व श्रीसंघ को समुन्नत कर सकेगें।

इसलिये हम सब के सिर पर पड़े हुये इस भयंकर दुःख के समय में हमें धैर्य और उत्साह से काम लेते हुए अपने कर्त्तव्य पालन की प्रतिज्ञा करना चाहिये ताकि पूज्यश्री की स्वर्गस्थ आत्मा को हमारे शुभ कृत्य और ऐक्यभाव को देखकर प्रसन्नता प्राप्त हो।

अब सन्ध्या समय हो रहा है और मुनि कर्त्तव्य पालन करने के नाते मुझे उपाश्रय में लौटना है, अतः मैं आपसे यही निवेदन करना चाहता हूं कि यद्यपि पूज्य श्री के उठ जाने से हम पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है, कुछ भी नहीं सूझता कि क्या करें और क्या न करें, पर यदि हिम्मत और उत्साह को न छोड़कर अपने धर्म पालन के कर्त्तव्य में लग गये, श्रीसंघ की उन्नति के लिये कमर कस ली तो पूज्य श्री का अलक्ष्य सद्भाव तथा वीर प्रभु की कृपा से हमें अवश्य अपने उद्देश्य

में सफलता प्राप्त होगी और वह दिव्य आत्मा प्रत्येक अवस्था में हमारा पथ प्रदर्शन करती रहेगी।

इस प्रकार शोक सन्तप्त जनता को कुछ सान्त्वना देकर मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज उपाश्रय में पधार गये।

उधर अग्नि की ज्वाला मालाओं ने देखते ही देखते पूज्य श्री के भौतिक देह को अपनी लपटों में घेर लिया। धांय-धांय करती हुई चिता की ज्वालायें ऊपर उठ-उठ कर कृष्ण पक्ष की नवमी के अन्धकार में भी प्रकाश की किरणें बिखेरती हुई मानो यह सन्देश देने लगीं कि स्वर्ग सिधार जाने पर भी पूज्य श्री की दिव्य आत्मा अन्धकार में प्रकाश का काम करती रहेगी।

चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों की सुगन्धि दिग्दिगन्तरों में व्याप्त होती हुई कह रही थी कि पूज्य श्री के सद्गुणों की सुगन्धि उनके पश्चात् भी संसार भर में सदा व्याप्त रह कर जन-मन को आमोदित करती रहेगी।

इस प्रकार अपने हृदय सम्राट् पूज्य श्री अखण्ड प्रतापी पंजाब केसरी श्री १००८ गुरुदेव काशीराम जी महाराज का अन्तिम संस्कार कर तथा जैन, अजैन, हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि सभी इस महान् धर्माचार्य को अपने अपने सम्प्रदायों की ओर से अन्तिम हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट कर ४०-५० हजार की यह भीड़ श्रद्धावनत मस्तकों तथा शोक सन्तप्त हृदयों के साथ अपने अपने घरों की ओर लौट आई।

आज इस महापुरुष के शोक को सहन न कर सकने के कारण पृथ्वी भी तीन बार कांप उठी। यह एक विचित्र घटना थी कि आज दिन में तीन बार भूकंप हुआ। पूज्यश्री का विमान उठते ही प्रथम बार भूकम्प हुआ, दूसरी बार मार्ग में बाजार

में जनता में परस्पर कुछ झगड़ा हो जाने पर तथा तीसरी बार पूज्य श्री के शरीर को चिता पर धरते ही भूकम्प का धक्का आया।

मानो एक महान् धर्म के चक्रवर्ती शासक धर्माचार्य के विरह में या यूं कहें कि अपने सब से प्यारे पुत्र के वियोग-शोक में धरतीमाता का कलेजा भी कांप उठा हो।

ऐसे संत प्रवर परम पूज्य पंजाबकेसरी का जीवन और मरण दोनों ही धन्य हैं। जैसा कि पहले कहा गया है पूज्य श्री के स्वर्गारोहण का समाचार सुन कर भारत भर के श्री संघ में शोक की लहर छा गई।

आचार्य-पद निर्णय

पूज्यश्री के स्वर्ग सिधार जाने के पश्चात् ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों धीरे-धीरे श्रावक-श्राविका तथा साधु-साध्वियों के हृदय प्रदेश में उमड़ती घुमड़ती हुई शोक की काली घटाएँ भी प्रवहमान समय रूपी वायु के प्रभाव से धीरे-धीरे विलीन होने लगीं। पर इस समय एक और विषम समस्या समग्र श्रीसंघ के सम्मुख उपस्थित हो गई। श्रावक गण जब अम्बाले में जाते और पूज्य पद के पाट को खाली देखते तो उनके हृदय सहसा एक अवर्णनीय वेदना से आक्रान्त हो जाते। उनकी आँखों के सामने सहसा वे मधुरक्षण नाच उठते, जब उस पाट पर विराजमान परम प्रतापी पूज्य श्री स्वर्गीय १००८ काशीराम जी महाराज अपनी परम पावन तेजस्वी मृदुल मन्द मुस्कान के साथ मधुर उपदेशों से श्रावक गणों के हृदयों को परितृप्त कर देते थे। पर अब खाली पड़ा हुआ वही पाट उन भक्त-गणों के हृदयों में एक मूक वेदना का संचार कर जाता था। अतः चतुर्विध, श्रीसंघ की हार्दिक मनोकामना थी कि पूज्य श्री के पद पर प्रतिष्ठित हो कर कोई योग्य संत श्रावक गणों को और चतुर्विध श्रीसंघ को उसी प्रकार पथ प्रदर्शन कर सके।

स्वर्गीय पूज्य श्री इस सम्बन्ध में अपना संकेत अपने जीवन काल में ही कर गये थे। पर पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के इस समय वहाँ उपस्थित न होने के कारण उक्त

सन्देश को प्रकट नहीं किया गया और न साधु साध्वियों के सम्मत्यर्थ सूचना या संदेश भेजे जा सके।

अब उनके सहसा स्वर्ग सिधार जाने के पश्चात् इस समस्या को सुलझाना परम आवश्यक प्रतीत होने लगा। सब मुनि गण के हृदय भी इसी विचार से आन्दोलित हो रहे थे। इतने में एक दिन देहली श्रीसंघ के प्रतिष्ठित कार्य-कर्त्ता श्री लाला बनारसी दास जी ओसवाल भी अन्य दर्शनार्थियों के साथ मुनिराजों के दर्शन करने केलिए अम्बाला आये हुए थे, उन्हें प्रवर्त्तक पद मुनि श्री माणक चन्द जी महाराज ने कहा कि 'आप दिल्ली जा रहे हैं सो आप स्वर्गस्थ पूज्य श्री के भाव आगामी पूज्य पद पंडित मुनि श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज को देने के लिये प्रकट कर गये हैं ऐसा श्री गणीजी महाराज से निवेदन कर देना।' [पर इस बात का श्री पं०मुनि शुक्लचन्द्र महाराज को कुछ पता नहीं था।]

श्री बनारसीदास जी ओसवाल ने कहा कि 'मैं पहले लुधियाने जाऊँगा, फिर दिल्ली जाकर श्री वादीमानमर्दक गणी श्री उदयचद्र जी महाराज से निवेदन कर दूंगा। और जो उत्तर फरमावेंगे सो मैं वापिस रविवार को आकर निवेदन कर दूंगा अथवा सूचना दे दूँगा।'

इस पर श्री प्रवर्तक मणिक मुनि जी ने कहा कि आप लुधियाने में उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज से भी निवेदन कर दें। यह सुनकर और वन्दना कर बनारसीदास जी वहाँ से चले गये।

इसी समय श्री मुनि मदनलाल जी महाराज ने पुछवाया कि पूज्य श्री स्वर्गवास होने से पूर्व इस सम्बन्ध में कुछ कह गए हों तो उसकी जानकारी हमारे पास भेज दो। इसका उत्तर श्री पंडित शुक्लचन्द्र जी महाराज ने यह दिया कि पूज्य श्री

सन्तों को कह तो गये हैं पर हम अब इसमें कुछ नहीं कहना चाहते।'

इन्हीं दिनों लाला लक्ष्मीचन्द जी सर्राफ आदि श्रावकों के साथ पंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज ने लुधियाने कहला भेजा कि उपाध्याय जी महाराज शासन व्यवस्थापक के लिये जिसे आचार्य पद के लिए चुनेगें उसमें मेरी पूर्ण सम्मति और स्वीकृति है। आपकी व्यवस्था हमें सब प्रकार मे स्वीकार होगी।

इस सम्बन्ध में अमृतसर के बा० हरजसराय जी व अम्बाले के लाला लक्ष्मीचन्द जी सर्राफ से पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज की यह बात हो चुकी थी कि इस विषय को उपाध्याय जी महाराज और गणी जी महाराज के सुपुर्द कर दिया जाय।

कुछ दिनों पश्चात् लाला कुञ्जलाल जी, तथा लाला शादीलाल जी, इन दिनों प्रतिष्ठित महानुभावों का गणी जी महाराज की ओर से एक डेपुटेशन श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। और भावी पूज्य पद के लिये उनसे स्वतन्त्र सम्मति देने की प्रार्थना की।

श्रीमान् पंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज ने फरमाया कि मैंने पहले ही यह विषय उपाध्याय जी महाराज व गणी जी को सौंप देने के लिये अपने भाव प्रकट कर दिये हैं। उपाध्याय जी, गणी जी तथा सब संघ मिलकर जो भी निर्णय करेगा वह मुझे सहर्ष स्वीकार होगा।

यह सुनकर डेपुटेशन ने पूछा कि आप अपनी ओर से किस को आचार्य पद देना चाहते हैं, इस सम्बन्ध में डेपुटेशन

के चले जाने के पश्चात् मोगक से गणावच्छेदक श्री बनवारी लाल जी महाराज ने एक विशेष भाई को भेजकर खबर मंगाई कि पूज्य श्री इस सम्बन्ध में जो कह गये हैं उसकी सूचना इस भाई के साथ हमें भेज दो। तब श्री माणक मुनि जी ने पूज्य श्री का उक्त निदेश श्री पंडित बनवारीलाल जी के पास भेज दिया। और इसी लिये उपाध्याय जी व गणी जी के पास भी उन्होंने उक्त सूचना दे दी।

अपनी स्वतन्त्र सम्मति दीजिये।

इस पर पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज ने कहा कि श्री उपाध्याय जी और श्री गणी जी जैसे दीर्घदर्शी विद्वान् विद्यावयोवृद्ध अनुभवी मुनिराजों के पथ प्रदर्शकत्व में व्याख्यान वाचस्पति धर्मभूषण श्री मुनि मदनलाल जी महाराज संघ संचालन के गुरुतर भार को भली भांति वहन कर सकेंगे। अतः मेरी सम्मति में मदनलाल जी महाराज पूज्य पद को स्वीकार करलेवें तो सर्वोत्तम रहेगा।

इस पर गणी जी, उपाध्याय जी, गणावच्छेदक श्री बनवारीलाल जी महाराज में आने-जाने वाले भाइयों के द्वारा पर्याप्त समय तक विचार विनिमय होता रहा। चातुर्मास के कारण कोई मुनिराज एक दूसरे के पास जाकर मिल नहीं सकते थे। अतः चातुर्मास समाप्त होने के अनन्तर मोणक में गणावच्छेदक श्री बनवारी लाल जी महाराज से परामर्श के पश्चात् लुधियाने में मुनि सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस मुनि सम्मेलन में जैन धर्म दिवाकर उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज, व्याख्यान वाचस्पति धर्म भूषण श्री मदनलाल जी महाराज, मुनि श्री प्रेमचन्द जी महाराज, श्री ताराचन्द जी महाराज, श्री रामसिंहजी

महाराज, श्री अमीलाल जी महाराज आदि मुनिगणों ने तथा श्री चन्दा जी, श्री लज्जावन्ती जी आदि आर्याओं ने भाग लिया।

उक्त मुनिराजों तथा हजारों श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में पंजाब गच्छ के श्रीसंघ के शासक का पूज्य पद—

जैन धर्म दिवाकर श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज को प्रदान किया गया।

इस प्रकार पंजाब केसरी परम प्रतापी स्वर्गीय पूज्य काशीराम जी महाराज के पाट पर श्री १००८ पूज्य आत्माराम जी महाराज को बड़े हर्ष, उत्साह और आनन्द के वातावरण में पूज्य आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

इस पदवी प्रदानोत्सव पर निम्नस्थ मुनिराजों को निम्नलिखित पदवियां प्रदान की गईं—

नाम	पद
१—भूतपूर्व उपाध्याय जैन धर्म दिवाकर, श्री आत्माराम जी महाराज	आचार्य
२—प्रसिद्ध वक्ता श्री पंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज	युवाचार्य
३—श्री जैन धर्म भूषण श्री प्रेमचन्द जी महाराज	उपाध्याय
४—श्री रामसिंह जी महाराज	गणावच्छेदक
५—श्री रघुवरदयाल जी महाराज	गणावच्छेदक
६—श्री दौलतराम जी महाराज	प्रवर्त्तक
७—श्री अमरचन्द जी महाराज	प्रवर्त्तक
८—श्री विमलचन्द्र जी महाराज	प्रसिद्ध वक्ता
९—आर्या जी श्री राजमती महासती जी	प्रवर्त्तिनी

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस पदवी प्रदान में समस्त मुनि मंडल का सहयोग था। पंजाब श्री संघ ने बड़ी सूझ-बूझ त्याग व धैर्य वृत्ति का परिचय दिया। गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज के अनुभवों से पूरा-पूरा लाभ प्राप्त हुआ। श्री मदनलाल जी महाराज की त्याग वृत्ति भी आदर्श और अनुकरणीय प्रमाणित हुई जिन्होंने बार-बार आग्रह करने पर भी आचार्य अथवा युवाचार्य आदि कोई पद ग्रहण नहीं किया, और यही कहते रहे कि स्वर्गीय पूज्य श्री के आदेशों का मैं अक्षरशः पालन करने वाला श्री संघ का तुच्छ सेवक बनकर ही रहना चाहता हूँ।

इसी प्रकार वर्त्तमान युवाचार्य श्री पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज की त्याग वृत्ति की प्रशंसा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। क्योंकि यद्यपि स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ काशीराम जी महाराज स्पष्ट रूप से पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज को पूज्य आचार्य पद प्रदान करने का निर्देश दे गये थे। तो भी आपने उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज जैसे विद्या वय वृद्ध मुनिराज तथा श्री मदनलाल जी के रहते हुए इस पद पर स्वयं प्रतिष्ठित होने की कभी-कल्पना ही नहीं की।

वास्तव में पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज संत जनोचित सरलता और त्यागवृत्ति के परम पावन प्रतीक हैं। इस पदवी प्रदान में उपस्थित मुनिराजों तथा आर्याओं के अतिरिक्त वादीमान-मर्दक गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज के निर्देशानुसार ही यह पदवी प्रदान की गई थी।

इस पदवी प्रदानोत्सव ने यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि वास्तव

में पंजाब में परम पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज से लेकर आज तक एक अखण्ड सम्प्रदाय चली आरही है। एक ही पूज्य की निश्राय में सब कार्य होते रहे और होते रहगें। अद्भुत आदर्श अनुकरणीय ऐक्य की भावना पंजाब सम्प्रदाय की सब से बड़ी विशेषता है।

यह परम हर्ष का विषय है कि जिस एकता की भावना को स्वर्गीय परम पूज्य पंजाब केसरी श्री १००८ अचार्य काशीराम जी महाराज सुदृढ़ और स्थायी बनी देखना चाहते थे, पंजाब केसरी के स्वर्ग सिधार जाने के पश्चात् भी उस एकता में किसी प्रकार की कोई शिथिलता अभी तक न आने पाई प्रत्युत उस में उत्तरोत्तर दृढ़ता ही होती जारही है। इस समय श्री मज्जैनाचार्य पंजाब केसरी पूज्य काशीराम जी महाराज के सम्प्रदाय की बागडोर जैन धर्म दिवाकर पूज्य श्री १००८ आत्माराम जी महारज के हाथों में है ।

पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज एक प्रकार से तीन पीढ़ियों से पंजाब श्री संघ को अपने विद्वत्ता पूर्ण सत्परामर्श और अपने माहन् अनुभवों से कृतार्थ करते आरहे हैं। तथा पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के समय में पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के समय में और आज स्वयं अपने शासन काल में परम योग्यता और दक्षता के साथ श्री संघ को समुन्नत बनाने में सतत प्रयत्न शील रह रहे हैं। यह पंजाब श्री संघ का सौभाग्य है कि आचार्य श्री आत्माराम जी जैसे परम विद्वान् और परम वृद्ध जैन धर्मदिवाकर का प्रकाश प्राप्त कर यह प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा है।

युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज तो स्वर्गीय ने तो पूज्य

श्री पंजाब केसरी काशीराम जी महाराज की छाया के सामन सदा साथ विरचते हुए समस्त श्री संघ के हृदयों में अपना अपूर्व गौरव मय स्थान बना लिया है। आप के प्रशस्तोन्नत ललाट, लम्बी भुजाओं से युक्त विशाल गौराकृति के दर्शन कर तथा सिंहोपम मृदुमन्द्र गम्भीर ओजस्वी ध्वनि से निकते हुए उपदेशामृत का पानकर भक्त गणों के हृदय पटलों तथा नेत्र-तारिकाओं के सम्मुख स्वर्गीय पूज्य श्री पंजाब केसरी का जीता-जगता चित्र अंकित हो जाता है। श्री संघ को आप से बहुत कुछ आशाएँ हैं। स्वर्गीय पूज्य श्री के शुभाशीर्वादों तथा भगवान् वीर प्रभु की कृपा से श्री संघ की यह सुमधुर आशालता ऐक्य और उन्नति के मधुर फलों से फलवती हो यही सब की हार्दिक मनोकामना है।

पंजाब केसरी के अधूरे स्वप्न की पूर्ति

पंजाब केसरी स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ काशीरामजी महाराज के हृदय में सदा यह प्रबल मनोभाव तरङ्गित रहता था कि समग्र भारत का श्रीसंघ एकता के सूत्र में आबद्ध हो जाय। यह जो भारत के स्थानक वासी जैन समाज में विभिन्न ३६ सम्प्रदायों और उनके भिन्न-भिन्न पूज्य आचार्य गणों के कारण श्रीसंघ में अनैक्य के भाव ल क्षत होते हैं, उनका अन्त हो जाय। समग्र भारत का श्रीसंघ एक ही पूज्य आचार्य के नेतृत्व में उन्नति पथ पर अग्रसर होता जाय, यह आपकी प्रबल अभिलाषा थी। अजमेर बृहत् साधु सम्मेलन में तथा उसके पश्चात् बम्बई आदि नगरों में जब-जब भी अन्य मुनिराजों के साथ विचार विनिमय का अवसर आया, पूज्य श्री इस सम्बन्ध में अपने हार्दिक भाव बड़ी तत्परता और सच्चाई से व्यक्त करते रहे। इसके लिये सर्वप्रथम आप अपना पूज्य पद परित्याग करने को प्रस्तुत रहते थे।

हर्ष का विषय है कि भारत भर के मुनिराजों के सम्मिलित प्रयत्नों से पंजाब केसरी का वह अपूर्ण सुखद स्वप्न सादड़ी में सम्पन्न हुए साधु सम्मेलन में साकार रूप में परिणत हो गया। इस सम्मेलन में भारत भर का एक श्रीसंघ एक ही पूज्य आचार्य के नेतृत्व में निर्मित हो गया। यद्यपि इसमें एक आध प्रांत के सम्प्रदाय का सम्मिलित होना अभी तक शेष है, तथापि यह

प्रबल आशा है कि वे सम्प्रदाय भी निकट भविष्य में ही सम्मिलित होकर चतुर्विध श्रीसंघ की चतुर्मुखी उन्नति में सहायक बन जायेगें ।

यह और भी हर्ष का विषय है कि समस्त भारत भर के मुनिराजो ने सर्व सम्मति से इस समय भारत भर के सभी सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्य के पद पर पूज्य श्री १००८ आत्माराम जी महाराज को ही प्रतिष्ठित किया है। उपाचार्य का पद श्री १००८ श्री गणेशीलाल जी महाराज को प्रदान किया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट प्रकट है कि स्वर्गीय पूज्य श्री पंजाब केसरी संघक्य का वह सुखद स्वप्न सभी साधुओं के सम्मलित स्तुत्य प्रयत्नों से सफल होता जा रहा है। भगवान् वीरप्रभु समस्त श्रीसंघ को धर्माचरण के कर्यों में सतत समुन्नति प्रदान करते रहें, यही हार्दिक अभिलाषा है।

——

णमो अरिहन्ताणम्

अथ

पूज्याचार्य श्रीकाशीरामजीवन-चरितम्

आसीत् पञ्चनदप्रान्ते, शुद्धात्मा जैनभिक्षुकः ।
काशीराम इतिख्यातो धर्मात्मा धर्मदीक्षितः ॥ १ ॥

दयार्द्रदृष्ट्या स सर्वं लोकमालोकयन्सदा ।
दयालुपदवीं प्राप जैनधर्मावलम्बिनाम् ॥ २ ॥

सर्वान्संधानेकदृष्ट्या स ददर्श शरीरिणाम् ।
रक्षयामास दयया यथाशक्ति स तान्पुनः ॥ ३ ॥

आषाढकृष्णपक्षस्याऽमावस्यायां शशित्विषि ।
गोविन्दाख्यात्पितुर्जज्ञे राधादेव्यां शशिप्रभः ॥ ४ ॥

प्रत्यहं वर्धते लोके शुक्लपक्षे यथा शशी ।
तथैवाऽयं वर्धते स्म कलाश्च सकला दधत् ॥ ५ ॥

मण्डले शाकलाख्येतु पसरूरे च पत्तने ।
अयं बभूव विख्यातो निजया बाललीलया ॥ ६ ॥

धरावेदग्रहानन्तामिते वर्षेऽथ वैक्रमे ।
जन्मना भूषयामासौसवालानामसौ कुलम् ॥ ७ ॥

सम्बधिनः पिप्रियिरे वालं प्राप्येममद्भुतम् ।
यथा महानिधिं लब्ध्वा तुष्यन्ति निर्धना जनाः ॥ ८ ॥

कौमारेऽपि युवेवायं यौवनेऽपि जरन्निव ।
उत्साह धारयामास, जैनधर्मेऽयमार्हतः ॥ ९ ॥

एकोनविंशतिं यावत्स वर्षाणि निजायुषः ।
यापयामास निर्विण्णो पितुर्वेश्मनि सौख्यदे ॥ १० ॥

एकान्ते चिन्तयामास जगन्नश्वरतामयम् ।
संसारस्य वासनानां त्यागे कल्याणमात्मनः ॥ ११ ॥

सम्यग्विमृश्यासौ मेने दीक्षामेव परां तरिम् ।
संसारसागरस्यान्ततारिणीं क्लेशहरिणीम् ॥ १२ ॥

आकाशरसनन्दोर्वीमिते वर्षेऽथ वैक्रमे ।
दीक्षां जग्राह सानन्दो मुनिधर्मपरायणः ॥ १३ ॥

गृहीत्वा चार्हतीं दीक्षां भिक्षाशी शुक्लवस्त्रकः ।
रजोहरणपूतां सः कृतकृत्योऽभवन्मुनिः ॥ १४ ॥

स मुनिधर्ममास्थाय, बभ्राम पृथिवीतले ।
प्राच्यामवाच्यामौदिच्यां प्रतीच्यां च पुनः पुनः ॥ १५ ॥

भारतं विदधौ चैष जिनधर्मप्रभारतम् ।
जैनशास्त्रोपदेशानां व्याख्यानैरमृतच्छटैः ॥ १६ ॥

ज्ञानाय जैनशास्त्राणामाचार्य्यास्तेन चक्रिरे ।
आर्हताः परमज्ञानाः शान्ता दान्तास्तपस्विनः ॥ १७ ॥

तत्वार्थाधिगमं सूत्रं, नन्दीसूत्रं तथैव च ।
आचाराङ्गं तथा सूत्रं चर्चयामास यत्नतः ॥ १८ ॥

न्यायशास्त्रं शब्दशास्त्रं योगशास्त्रं तथोत्तमम् ।
पाठयामासुरपरे, विद्वांसो गतकल्मषाः ॥ १९ ॥

हेमचन्द्राचार्य्यकृतं तथा वाररुचं महत् ।
तेनाधीतं प्राकृतस्य व्याकरणं शब्दसिद्धये ॥ २० ॥

श्रावस्तीं नगरीं दृष्ट्वा द्रष्टुं जाम्बवतीं ततः ।
श्रावकैरभ्यनुज्ञातामुत्तराभिमुखो ययौ ॥ २१ ॥

स जम्बूनगरीं दृष्ट्वा विद्वज्जनसमावृताम् ।
तुतोषात्मनि विश्वस्तः सोद्यानां साधुसेविताम् ॥ २२ ॥

कदाऽपि काश्मीरभवां शुभांश्रियं
विलोकितुं साधुगणेन संवृतः ॥

चकार मार्ग पदपद्मचिन्हनैः
सुशोभितं श्रीनगरस्य तस्य सः ॥ २४ ॥

शतमापिल दीर्घताधरं ह्यष्टाविंशतिमीलमायतम् ।
काश्मीरपदं निगद्यते त्रिदिवद्योति जनैः खलाकृति ॥२५॥

वाल्हीकजं रामठमाहुरित्थं
काश्मीरजं केशरमामनन्ति ।
त केशरं प्राप्य सुवर्णवर्णो
मुक्तो मुनीन्द्रैः किमु केशरीति ॥ २६ ॥

अत्रेन्द्रभूतिः किल गौतमोऽपि
चिक्रीड धूल्यां धृतबाललीलः ।
इत्यादरादादरणीयधूलीं
बभार भाले मुनिकाशिरामः ॥ २७ ॥

या जन्मभूः कल्हणविल्हणानां
रत्नप्रसूः कैयटजैयटानाम् ।
विलोक्य काश्मीरभुवं मुनि स्तां
भृशं ननन्दात्मनि शान्तचित्तः ॥ २८ ॥

प्रफुल्लवल्लीद्रुमराजिराजितं
नगावलीवेष्टितचारुविग्रहम् ॥
अवाप्य काश्मीर मसाबमन्यत
धरातले खण्डमिवागतं दिवः ॥ २९ ॥

तत्र स्थितस्याऽस्य बहूननेहसः
प्रचार माराज्जनतासु कुर्वतः।
कदाचिदायाच्छदनेन वाहकः
सभीः सभायामजमीढनामतः ॥ ३० ॥

शुक्लाञ्चलैः पिहितपद्ममुखैः समन्ता-
त्संख्यातिगैः क्षपणकैरनुगम्यमानः।
आज्ञाप्य भक्तनिवहं तदनुज्ञयैव
तस्मात्सुधापुरमतोऽजपुरीं प्रतस्थे ॥३१॥

श्वेताम्बराणां द्विविधाश्रितानां
द्वयीमयी यत्र सभा विरेजे ॥
यथाऽस्ति गङ्गायमुनाद्वयस्य
प्रयागमध्येऽनुपमः प्रवाहः ॥ ३२ ॥

अजमेरसभापूज्यमिमं साधुवरं सती
पञ्जाबकेसरी नाम्ना भूषयामास पुङ्गवम् ॥ ३४ ॥

ततो दिल्लीसभाहूतो दिल्लीमैचत गौरवात्
प्राचीनसौधखण्डानां धा बिभर्ति शतं गृहान् ॥३५॥

क्वचित्सभामण्डपमर्जुनस्य
श्रीकृष्णसार्थस्य च पाण्डवानाम् ॥
क्वचित्पुनर्दुर्गनिकेतनानि
लासानी भूमिपतिमुद्गलानि ॥ ३६ ॥

क्वचित्पुनः शिल्पकलाचणानां
द्वाराणि चांग्रेजमहोदयानाम् ॥
निर्माय ये तानि गताः स्वदेशं
स्वजन्मभूमिं प्रति भूरिमानाः ॥ ३७ ॥

कलिन्दकन्याच्छविमेष पीत्वा
ननन्द दृग्भ्यामतिशीतलाभ्याम् ॥
मुखेन कृत्वाऽऽचमनं तदीयं
तुतोष दूरीकृतपङ्कुकेन ॥ ३८ ॥

श्वेताम्बराणां द्विविधाश्रितानां
णमोणमोभाषणतत्पराणाम् ॥
विलोकयामास सभां स भांतीं
मुनीश्वराणां जिनदैवतानाम् ॥ ३९ ॥

समागतं तं प्रविभाव्य सर्वे
सभासदोऽमी प्रणता बभूवुः ॥
उत्थाय च स्वासनतः स मौनं
धृतासनेऽस्मि जगृहुः स्थितिं स्वाम् ॥ ४० ॥

जग्राह चोङ्काररवचोऽभिरामं
सर्वानुमत्या च सभापतित्वम् ॥
अथ प्रसन्नाः सकला बभूवुः
सभासदः संनमितोर्ध्वकायाः ॥ ४१ ॥

काश्मीरवासीत्यपि केचिदूचुः
काशीनिवासीत्यपि केचिदूचुः ॥
काश्मीरकाशीद्वयपीठवासात्
द्वयोरपि श्रीः खलु वस्तुतस्तु ॥ ४२ ॥

तत्राऽमुना संस्कृतशोभितायां
मनोहरं सर्वभवाचि वाचि ॥
क्वचित्क्वचित्प्राकृतभाषयाऽपि
गाथानिबद्धं जगदेऽगदेन ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा यदीयां गिरमद्वितीयां
द्वयीविशिष्टामपि गीर्द्वयेन ॥
ये दूरदेशादुपसेदिवांसः
श्रान्ताः कृतार्थाः मनुजा बभूवुः ॥ ४४ ॥

पश्चाद्ददुस्ते पदवीं दुरापा—
मस्मै जनाः भारतकेशरीति ॥
अनिच्छतेऽप्यात्मविदे विदेशं
गताय सभ्याः सुगताय भव्याः ॥ ४५ ॥

एवं प्रचारं कुर्वाणो वीतरागोऽयमायुषः ।
पवित्रं निखिलं कालं यापयामास धर्मतः ॥४६॥

कंचित्कालमुषित्वाऽसौ, दिल्लीं भारतकेशरी
अम्बालां पावनीचक्रे, निजावासेन दिग्गजाम् ॥ ४७ ॥

श्रावस्ती नगरी दृष्टा दृष्टा च जाम्बवी पुरी ।
आजमीढसभा दृष्टा पुष्करेण विराजिता ॥ ४८ ॥

देहली विश्वविख्याता तेन सम्यग्विलोकिता ।
राजधानीन्दुवंश्यानां कालिन्दीशोभयाऽन्विता ॥ ४९ ॥

काश्मीराः विश्वविख्याताः विशेषीकृतकेशराः ।
सादरं वीक्षितास्तेन भारतीयत्वगौरवाः ॥ ५० ॥

मोहमय्यां तस्य दृष्टिः निपपात ममज्ज च ।
यतोऽत्र सागरो देवः कल्लोलावलिवेल्लितः ॥ ५१ ॥

कालिकाता महाकाली शिक्षिता तेन वीक्षिता ।
धनाढ्या जलपोताढ्या गङ्गासागरसंगमा ॥ ५२ ॥

एवं प्रचारं कुर्वाणो वीतरागोऽयमायुषः ।
पवित्रं सकलं कालं यापयामास धर्मतः ॥ ५३ ॥

स काशीरामोऽयं यमनियमयुक्तः शमदमै
जिनध्यानैर्मानैर्जगति विदितः स्वैर्गुणगणैः ॥
द्वये वर्षे हर्षान्नृपरविसहस्रद्वयमिते
दिवं यातोऽम्बालामधिवसुगज्येष्ठेऽशुचिदले ॥५४॥

गोविन्दनन्दनस्येदं राधेयस्य महात्मनः ।
चरितं परमं दिव्यं श्रवणन्यायवाशनम् ॥ ५५ ॥

मुनीन्द्रभागमल्लस्य,
शुक्लचन्द्रस्य च द्वयोः ।
संमत्या स्वल्पया मत्या
कृतमत्यादरेण च ॥ ५६ ॥

गोविन्दनन्दनस्येदं चरितं रचितं मया ।
स एव प्रीयतां तेन देवो गोविन्दनन्दनः ॥ ५७ ॥

इतिश्रीबीकानेरडूंगरकालेज, दिल्लीहीरालालजैनहाईस्कूल भूतपूर्वसंस्कृतप्रधानाध्यापकेन, बहुग्रन्थनिर्मात्रा, साहित्याचार्य, पण्डित जयराम शास्त्रिणा प्रणीतम् । आचार्य प्रवर श्री काशीरामजीवन-चरितम् समाप्तम् ।

बारह व्रत की संक्षिप्त टीप

अनादि काल से इस जीव के मोह, मिथ्यात्व व अज्ञानाधंकार में फंसा हुआ होने से इसको पूर्णतया सुख, शान्ति एवं सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई, अतः इसे सम्यक्त्व प्राप्त करने की पूर्ण आवश्यकता है, सम्यक्त्व के बिना आत्म-कल्याण कदापि नहीं हो सकता इसलिये मिथ्यात्व को छोड़ सम्यक्त्व प्राप्त करना परमावश्यक है। इसका स्वरूप संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है।

सम्यक्त्व

सुदेव—१२ गुण सहित और १८ दूषण से रहित श्री वीतराग देव ही सुदेव हैं।

सुगुरु—पंच महाव्रतधारी निस्पृही निर्ग्रन्थ सत्य धर्मोपदेशक ही सुगुरु है।

सुधर्म—श्री वीतराग देव कथित (प्ररूपित) धर्म ही सुधर्म है।

इन तीन तत्वों पर पूर्ण श्रद्धा, आस्था और विश्वास रखना ही सम्यक्त्व है। श्रावक को सम्यक्त्व निर्मल कर दृढ़ श्रद्धालु बनना आवश्यक है, जैसे **तमेव सच्चं निसंकं जं जिणेहि हवेइयं।**

श्री जिनेश्वरदेव ने जो प्रतिपादन किया है निशंक-निःसंदेह वही सत्य है।

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पन्नतं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहिअं॥ १॥

यावज्जीव (जीवन पर्यंत) श्री अरिहंत वीतराग देव मेरे देव, सुसाधु मेरे गुरु और श्री वीतराग देव कथित तत्व ही मेरा धर्म है, इस तरह से मैंने सम्यक्त्व ग्रहण किया है इस प्रकार सदा चिन्तन करे।

सम्यक्त्व के पाँच अतिचार (दोष)

१. शंका—श्रीवीतराग देव के वचनों में संदेह करना।

२. आकांक्षा—अन्य मत वालों का अज्ञान कष्ट व चमत्कार देखकर उनके मत की अभिलाषा करना।

३. विचिकित्सा--मैं धर्म कर रहा हूँ उसका फल मुझे मिलेगा या नहीं अथवा साधु साध्वियों को देख कर उनकी निंदा करना उनको बुरी दृष्टि से देखना। इसको जुगुप्सा भी कहते हैं।

४. प्रशंसा--मिथ्यात्विओं और उनके धार्मिक क्रियाकांड की शप्रंसा करना।

५. कुलिंगी-संस्तव-मिथ्यात्विओं का परिचय करना।

बारह व्रत

आत्मकल्याण की इच्छा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को निम्न १२ व्रत या इनमें से जितनी भी हो सके अवश्य धारण करने चाहिए।

१ स्थूल प्राणातिपात विरमण (अहिंसा) व्रत

जीव हिंसा करने से नरक के असह्य दुःख भोगने पड़ते हैं। अतः जीव-हिंसा का त्याग करना चाहिये। यद्यपि गृहस्थ सर्वथा हिंसा का त्याग नहीं कर सकता है, क्योंकि मिट्टी, पानी, अग्नि, वनस्पति आदि की उसे आवश्यकता रहती ही है, तथापि उसे बड़ी हिंसा का त्याग अवश्य करना चाहिये अर्थात् वह किसी

निरपराधी त्रस जीव को (चलते फिरते जीव को) इच्छा पूर्वक मारने की बुद्धि से न मारे हीं।

इस प्रथम व्रत के पाँच अतिचार

१. वध--गौ, बैल, ऊँट घोड़ादि चौपाये जानवरों को निर्दयता से ताड़ना मारना।

२. बंध-- गौ बैल, ऊँट, घोड़ादि को रस्सी आदि से मजबूत (जकड़ कर) बांधना जिससे उनको तकलीफ या कष्ट हो।

३. छविच्छेद--गौ, बैल, आदि पशुओं के कान, नाक, पूंछ, गल कंबल आदि काटना, नत्थ डालना, खस्सी करना।

४. अतिभारारोपण--बैल आदि के ऊपर अधिक उनकी उठाने की शक्ति से ज्यादा बोझ लादना।

५. भत्तपानविच्छेद- समय पर जानवरों को तथा दास दासी नौकर चाकर को खाना पीना न देना। इन अतिचारों (दोषों) को समझना, समझाना परन्तु लगाना नहीं। इस प्रकार सब बातों के अतिचारों को समझ लेना।

२ स्थूल मृषावाद विरमण (सत्य) व्रत

मृषावाद (झूठ) बोलने से विश्वास उठ जाता है, अपयश होता है अतः झूठ नहीं बोलना चाहिये, यद्यपि गृहस्थ सर्वथा मृषावाद (झूठ) का त्याग नहीं कर सकता क्योंकि क्रोध, मान, माया, लोभ के वश होकर थोड़ा या बहुत झूठ बोला जाता है। तथापि बड़े झूठ का त्याग करना चाहिये, वो बड़ा झूठ पांच प्रकार का है।

१. कन्यालीक--(कन्या सम्बन्धी झूठ बोलना) जैसे किसी की सगाई होती हो उस वक्त राग द्वेष से सुशीला को दुःशीला और दुःशीला को सुशीला कहना। छोटी को बड़ी और बड़ी को

छोटी कहना इत्यादि। भाव यह कि राग या द्वेष से कन्या के [उपलक्षण से वर का भी समझ लेना चाहिये] गुणों को अवगुण और अवगुण को गुण के रूप में प्रकट करना। कन्या कहने से दो पैर वाले दास, दासी आदि भी समझ लेना चाहिये।

२. गवालीक--गौ, भैंस आदि जानवरों के सम्बन्ध में झूठ बोलना। जैसे कम दूध देने वाली को अधिक दूध देने वाली बतलाना, अधिक देने वाली को कम देने वाली बतलाना, दूध न देती हो उसको दूध देने वाली बतलाना, छोटी को बड़ी और बड़ी को छोटी बतलना इत्यादि। भाव यह कि राग द्वेष से पशुओं के गुणों को अवगुण तरीके और अवगुणों को गुण तरीके जाहिर बताना।

३. भूम्यलीक—जमीन, मकान, खेत आदि के सम्बन्ध में झूठ बोलना। जैसे दूसरे की भूमि को अपनी कहना और अपनी को दूसरे की कहना या और किसी की जमीन को अन्य किसी की कह देना।

४. न्यासापहार—अमानत में खयानत करना। किसी मनुष्य ने विश्वास से धन या कोई चीज अमानत या गिरवी रखी हो उसको हड़प कर लेना। जैसा रखा हो वैसा ही वापस न देना। मांगने आवे तब इन्कार कर देना।

५. कूटसाक्षी—किसी को भी किसी स्थान में झूठी साक्षी [गवाही) देना। इस प्रकार के बड़े झूठों का तो त्याग होना ही चाहिये, यह इस व्रत का आशय है।

इस द्वितीय व्रत के पाँच अतिचार

१. सहसाभ्याख्यान—सोचे विचारे बिना एक दम वचन बोलना, जैसे किसी पर झूठा आरोप दे देना या किसी को तूं झूठा है, चोर है इत्यादि कहना।

२. रहोभ्याख्यान—झूठा कलंक देना, कई लोग एकांत में बैठ कर कुछ सलाह करते हों उनकी चेष्टा देखकर बिना सोचे अनुमान से ही कह देना कि ये लोग किसी के विरुद्ध सलाह करते हैं।

३. स्वा दारमंत्रभेद—किसी की भी गुप्त बात को प्रकट करना जैसे अपनी स्त्री ने विश्वास से कुछ गुप्त बात कही हो 'या पुरुष ने स्त्री से गुप्त बात कही हो' उसको प्रकट कर देना, उपलक्षण से मित्रआदि की गुप्त बातों को प्रकट कर देना। इससे कभी कभी आप घात करने का भी प्रसंग आ जाता है।

४. मृषोपदेश—असत्य (झठा) उपदेश देना, विषय वासना बढ़े, ऐसा उपदेश देना आदि।

५. कूट लेख—झूठा लेख लिखना, झूठा दस्तावेज बनाना, बनावटी हस्ताक्षर बनाना वगैरह।

३ स्थूल अदत्तादान (अचौर्य) विरमण व्रत

चोरी करने से दुर्गति का भागी बनना पड़ता है। विश्वास उठ जाता है। राज्य दण्ड मिलता है। अतः चोरी का त्याग करना ही चाहिये। यद्यपि गृहस्थ सर्वथा चोरी से बच नहीं सकता तथापि उसे बड़ी चोरी का तो त्याग करना ही चाहिये। जैसे:—

१. किसी के घर सेंध लगाना अथवा चोरी करना।
२. किसी की गांठ खोलना।
३. किसी की जेब कतरना।
४. ताला तोड़ना।
५. लूटना लूट का माल लेना, चोरी का माल लेना।

६. किसी की भी गिरी हुई वस्तु उठा लेना।

७. जिस काम के करने से राजा की तरफ से दंड मिले, लोग चोर कहें, विश्वास उठ जाय ऐसा करना। इस प्रकार की चोरी का तो त्याग होना ही चाहिये यही इस व्रत का आशय है।

इस तृतीय व्रत के पाँच अतिचार

१. स्तेनाहृत–चोर किसी की वस्तु चुरा कर ले आया हो उसको कम दाम में ले लेना।

२. स्तेनप्रयोग–चोर को चोरी करने में प्रेरित करना या सहायता देनी।

३. तत्प्रतिरूप–अच्छे माल में खोटा मिलाकर बेचना।

४. विरुद्ध गमन–राज्यविरुद्ध गमन करना, राजा के निषेध किये हुए काम को करना।

५. कूटतुला कूटमान–तोल, माप में बेईमानी करना, देने में कम और लेने में अधिक लेने का प्रयत्न करना।

४ स्थूल मैथुन विरमण ब्रह्मचर्य व्रत

ब्रह्मचर्य पालना महान् लाभकारी है परन्तु गृहस्थ सर्वथा मैथुन का त्याग नहीं कर सकता है इसलिए उसे अधिक से अधिक स्वस्त्री संतोष, पर-स्त्री का त्याग तो करना ही चाहिये, अर्थात् मर्यादा में रहना चाहिये जैसे स्वस्त्री को छोड़कर पर-स्त्री का त्याग करना। इसमें सधवा, विधवा, कन्या, वेश्या आदि सब समझ लेना चाहिये इसी तरह स्त्री के लिये पर-पुरुष का त्याग है।

नोट—द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा

अमावस्या (एक पक्ष में) इन छः तिथियों को अर्थात् महिने में बारह दिन तथा अन्य पर्वों के दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

इस चतुर्थ व्रत के पाँच अतिचार

१ अपरिगृहिता गमन—विधवा, कन्या ये किसी की स्त्री नहीं हैं, ऐसा विचार कर उनके साथ गमन—(संबंध) करना।

२ इत्वर परिगृहिता गमन—किसी ने वेश्या को धन देकर अमुक दिन तक अपने अधीन रखा हो उसके साथ गमन करना।

३ अनंग क्रीड़ा—पर-स्त्रियों के अंगोपांग देखना, उनके साथ चुंबन, आलिंगन आदि काम चेष्टा करना।

४ तीव्रानुराग—विषयोत्पादक शब्दादि सुन कर काम भोग में तीव्र अभिलाषा करना।

स्थूल परिग्रह परिमाण (अपरिग्रह) व्रत

मूर्च्छा को हटाकर परिग्रह (धन धान्य) का त्याग करना ही कल्याणकारी है परन्तु गृहस्थ सर्वथा परिग्रह का त्याग नहीं कर सकता है, क्योंकि गृहस्थों को धन, धान्यादि हर एक वस्तु की मूर्च्छा इच्छा) रहती है। मूर्च्छा ही संसार चक्र में फँसाने वाली है, इसे कम करना ही इस व्रत का आशय है, इसलिए धन, धान्य, घर, खेत, पशु आभूषण, नकदी आदि सब प्रकार के धन और जायदाद तक की अपनी इच्छानुसार परिमाण (मर्यादा) कर लेना चाहिये, जिससे गृहस्थ संतोषी समताधारी बने और सुखी रहे।

किसी को कुल जायदाद (मिल्कियत) एक ही रखनी हो तो यह विचार ले कि मुझे कुल जायदाद इतने हजार, लाख, करोड़ से अधिक नहीं रखनी। यदि किसी को अलग अलग रखनी हो तो इस प्रकार रखे—

१ धन—नकदी, सोना, चाँदी, जवाहरात, अशरफी आदि (इतना]·····यानी कुल [इतने]······

२. धान्य—[इतने]······ बीघे जमीन या खुली जमान, बाग खेत आदि संख्या·······।

४.वास्तु—घर, गोदाम, हट्टी (दुकान) आदि (इतने)·· ··· संख्या कर लेना चाहिये।

५ रूप्य—(इतने)·····तोले चाँदी या (इतने)······तोले चाँदी की वस्तएँ।

६. सुवर्ण—(इतने)······तोले सोना या सोने की वस्तुएँ (इतने)······तोल।

७. कुप्य—ताँबा, पीतल, लोहा, काँसी, एलुमीनियम, आदि राँगा आदि धातु की वस्तुएँ (इतने····· मण।

८. द्विपद—(दो-पाये) दास, दासी, नौकर, चाकर, आदि (इतने)····· (संख्या नियत कर लेना)।

९. चौपद—(चौपाये) घोड़ा, गाड़ी, गौ, बैल, भैंस, ऊंट, बकरी आदि (इतने)······(संख्या कर लेना) यानी इन सब चीजों का परिमाण कर लेना चाहिये।

भाग्यवश जितना द्रव्य रखा हो उससे अधिक हो जाय तो उस द्रव्य को धर्म कार्य्य में खर्च कर देना चाहिये।

इस पाँचवें व्रत के पाँच अतिचार

१. धन-धान्य परिमाणातिक्रम—धन, धान्यादि का जितना परिमाण रखा हो उससे अधिक हो जाने पर पुत्र आदि के नाम से हिस्सा डाल देना।

२. क्षेत्र वस्तु परिमाणातिक्रम—क्षेत्र, घर, हाट, दुकान आदि नियम से अधिक रखना या नियम भंग के डर से दो क्षेत्रों का एक क्षेत्र कर डालना आदि।

३. रूप्य सुवर्ण परिमाणातिक्रम—चाँदी, सोना नियम से अधिक रखना या स्त्री, पुत्र आदि को दे देना।

४. कुप्य परिमाणातिक्रम—काँसी, ताँबा, लोहा, पीतल, सा वगैरह मर्यादा से अधिक रखना।

५. द्विपद चतुष्पद परिमाणातिक्रम—दास, दासी, गौ, बैल, भैंस, घोड़ा, ऊंट, बकरी आदि परिमाण से अधिक रखना।

३ दिशि परिमाण व्रत

गृहस्थ को सब दिशाओं में जाने आने की छूट होने से लोभ वृत्ति बढ़ती रहती है उसे कम करने के लिए पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं में और विदिशाओं में जाने आने की हद (मर्यादा) बांध लेना चाहिये अर्थात् अमुक दिशा में इतने कोस से अधिक गमनागमन (आना जाना) न करूंगा। धर्म के लिए छूट है। पूर्व में इतने पश्चिम में इतने, दक्षिण में इतने, उत्तर में इतने, अग्निकोण में इतने, वायव्य कोण में इतने, ईशान कोण में इतने, अधोदिशा में नीचे) इतने और ऊर्ध्वदिशा में (ऊचे, ऊपर) इतने कोस। अपनी इच्छा के अनुसार कोस रख लेने चाहिये। डाक, पारसल, अखबार, तार आदि की छूट रख लें।

इस छठे व्रत के पांच अतिचार

१. ऊर्ध्वदिक् परिमाणातिक्रम—नियम से (परिमाण से) अधिक ऊंचे (ऊपर) को जाना

२. अधोदिक परिमाणातिक्रम—नियत परिमाण से अधिक नीचे जाना।

३. तिर्यक् दिक् परिमाणातिक्रम—नियम से चारों दिशाओं में तथा चारों विदिशाओं में अधिक गमन करना अथवा मर्यादा का भङ्ग करना

४. क्षेत्र वृद्धि—सब दिशाओं के कोस इकट्ठे करके एक दिशा में वृद्धि करके परिमाण से अधिक जाना अर्थात् रखे हुए परिमाण में कमोबेशी करना।

५. समृत्यंतधी—नियम, परिमाण याद न रहने से अधिक जाना जैसे कि पूर्व दिशा में १०० कोस से अधिक न जाना ऐसा नियत किया है किन्तु काम की व्याकुलता से या भूल से कोसों के परिमाण में संदेह हो गया हो अर्थात् मेरे २०० कोस का परिमाण है या सौ कोस का इस प्रकार संदेह हो जाने पर १०० कोस से अधिक चला जाय तो उसे अतिचार लगता है अर्थात् किये हुए नियम का विस्मरण हो जाता है।

७ भोगोपभोग विरण व्रत

दुनिया में वस्तुओं या चीजों की अथवा परिमाण नहीं है, सभी चीजें आदमी के काम में नहीं आती हैं तो भी जब तक उन चीजों का त्याग नहीं किया जाता तब तक उसे सब चीजों का पाप [दोष] लगता है इसलिये काम में न आने वाली चीजों की मर्यादा [संख्या] कर लेना चाहिये जिससे गृहस्थ बहुत से पापों से छूट सकता है।

इस व्रत को पक्का [दृढ़] करने के लिये सदा १४ चौदह नियम धार लेने चाहिये।

जो चीज एक ही वार काम में आवे उसे भोग कहते हैं। जैसे दाल, चावल, रोटी, शाक, भाजी, दूध, दही, फल फूल चंदन आदि।

जो चीज बारंबार काम में आवे उसे उपभोग कहते हैं। जैसे वस्त्र, अलङ्कार, घर, हाट, हवेली, स्त्री आदि।

१. पृथ्वी मिट्टी, नमक आदि इससे ज्यादा अपने काम में न लूंगा, वजन या माप रख लें।

२. पानी—पीने तथा स्नान करने में और दूसरे काम के लिये आज मैं इतने पानी से ज्यादा न लूंगा, उसकी बल्टी आदि की संख्या बांध लें या वजन का माप कर लें।

३. अग्नि = चुल्हे, अंगीठी (सिगड़ी] आदि इससे अधिक आज अपने काम में न लूंगा, इनकी संख्या बांध ले।

४. वायु पंखे, हिंडोले आदि की संख्या कर ले।

५. वनस्पति सब्जी करेले, मट, सन्तरे आदि इससे अधिक अपने काम में न लूंगा, इनका वजन या संख्या रख ले।

१. द्रव्य = खाने पीने के पदार्थ चीजें इससे ज्यादा आज मैं अपने काम में न लूंगा।

२. घी, तेल, दूध, दही, गुड़ और कड़ाह विगय अर्थात् तली हुई चीजें, जैसे--मिठाई आदि इन छः विगयों में से १, २, ३, ४ या ५ इनसे ज्यादा मैं आज अपने काम में न लूंगा।

३. महा विगय==मांस, शराब, शहद और मक्खन इन चार महा विगयों का तो त्याग ही होता है।

जिन वस्तुओं की छूट रक्खी जाय उनका पूरा २ ध्यान रखना चाहिये अर्थात् उनसे अधिक अपने काम में न लें।

नोट – इन विगयों का यदि मूल से त्याग किया जाय तो इन विगयों की बनी हुई चीजें भी उपयोग में नहीं लाई जा सकती हैं, यदि कच्ची ही विगय का त्याग किया हो तो ऊपर से कोई विगय नहीं ली जा सकती। बाकी उस बिगय की बनी हुई चीजें ली जा सकती हैं। इन छः विगयों में से कम से कम एक विगय का तो हमेशा त्याग करना ही चाहिये, कदाचित सर्वथा एक वियग का त्याग न कर सके तो उस विगय का निवियाता खुला रखें, जैसे दूध का त्याग किया परन्तु दूध की बनी हुई चीजें खीर, खोया आदि लिया जा सकता है। यदि दूध विगय का मूल से त्याग करें तो उसकी बनी हुई चीजें भी नहीं ली जा सकती हैं।

४. उपाणह—बूट, जूते, मौजे की जोड़ी, चप्पल आदि इतनी जोड़ी से अधिक आज अपने काम में न लूंगा।

५. तँबोल—पानी, सुपारी, इलायची आदि मुखवास की इन चीजों से अधिक मैं अपने काम में न लूंगा। इनकी संख्या या वजन कर लेना चाहिये।

६. वस्त्र--धोती, टोपी, कोट, कमीज, पतलून, बनियान, नेकर, पाजामा, साफा आदि इतने से अधिक मैं अपने काम न लूंगा। इनकी गिनती रख लेना चाहिये।

७. कुसुम—फूल फूलों की शय्या, फूलों का पंखा, गजरा आदि इससे अधिक अपने काम में नहीं लूंगा, इनकी भी गिनती कर लेनी चाहिये।

८. वाहन—गाड़ी, घोड़ा, तांगा, मोटर, रेल, नाव, हवाई जहाज, साइकिल, ऊंट आदि इनसे अधिक अपने काम में न लूंगा, इनकी भी संख्या रख लेना चाहिये।

(वाहन तीन प्रकार के होते हैं--तिरता फिरता, उड़ता।

९. शयन—शय्या तथा अलग-अलग स्थान में बैठने के जो आसन होते हैं जैसे कुर्सी, पाट, पाटला, चारपाई (मांचा), बैञ्च आदि इतने से अधिक अपने काम में न लूंगा, इनकी भी संख्या रख लेना चाहिये।

१०. विलेपन – चंदन, बरास, तेल, साबुन, मेंहदी, आदि इतने से ज्यादा अपने उपयोग मैं न लूंगा।
इनकी तोल या नाप रख लेना चाहिये।

११. ब्रह्मचर्य—परस्त्री (स्त्री के लिए पर पुरुष) का त्याग स्वस्त्री (स्व पुरुष) संतोष, इनकी भी मर्यादा बांध लेनी चाहिये।

१२. दिशि···दस दिशाओं में शरीर से इतने कोस से ज्यादा नहीं जाना।

१३. स्नान–दिन भर में स्नान की गिनती रख लेना चाहिये, हाथ पैर की शुद्धि और लोकाचार का कारण आ पड़े तो छूट है।

१४. भत्त (भोजन)···इतने सेर पानी, इतने सेर दूध शरबत आदि, इसके उपरांत त्याग।

१. असि···तलवार आदि शस्त्र, औजार, कैंची, चाकू आदि की गिनती रख लेना चाहिये।

२. मसि···दवात, कलम, होलडर, पेनसिल, फाउण्टेन पेन आदि की गिनती रख लेना चाहिये।

३. कृषि···इतने बीघे जमीन में खेती करूंगा इससे ज्यादा नहीं करूंगा। ये १४ चौदह नियम सदा प्रातः और सायंकाल धार लेने चाहिये। विस्तार के लिए चौदह नियम लेने की विधि की पुस्तकें देखें।

सातवें व्रत में १५ कर्मादान का अवश्य त्याग करना चाहिये क्योंकि इन कामों से पाप अधिक होता है। कदाचित जिस कार्य के बिना निर्वाह न हो सके उसकी की छूट या मर्यादा रख कर बाकी को त्याग दें।

१. इंगाल कर्म···चूना, ईंट, मिट्टी के बरतन आदि पकाना, निभाड़ादि बनाना।

२. बन कर्म···बन, वृक्ष, पत्र, पुष्पादि तथा जंगलों को कटवाना वगैरह।

३. साडी कर्म···गाड़ी, हल, आदि का व्यापार करना।

४. भाडी कर्म···गाड़े, गाड़ी, बैल, ऊंट आदि के किराये से निर्वाह करना।

५. फोडी कर्म···कुवा, तालाब, बावड़ी आदि खुदवाने का ठेका लेना।

६. दंत वाणिज्य···हाथीदाँत, हंस मयूरादि के पंख आदि का व्यापार करना।

७ लक्ख वाणिज्य… लाख, टकणखार, साबुन, खार आदि का व्यापार करना।

८. रस वाणिज्य… घी, तेल, दूध आदि का व्यापार करना।

९. केश वाणिज्य… दास, दासी, गौ, भैंस तथा पशु, पक्षी के केश, पंख आदि का व्यापार करना।

१०. विष वाणिज्य… अफीम, आदि जहरीली वस्तुओं का व्यापार करना।

११. यंत्र पीलण… मील, जिनिंग, सांचे चक्की, आदि का व्यापार करना।

१२. निर्लञ्छन कर्म… बैल घोड़े आदि को नपुंसक बनाना, इनको दाग देना इत्यादि का व्यापार करना।

१३. दवदान… जङ्गल में अग्निदाह देना, जङ्गल को जलाना आदि। इनको दावानल कहते हैं।

१४. शेषण कर्म… तालाब, सरोवर आदि का पानी सुखाना, सुखवाना।

१५. असती पोषण… क्रीड़ा के लिए कुत्ते बिल्ली, तोता मैना आदि का पालन अथवा व्यापार के लिए पालण पोषण करना।

२२ अभक्ष्य और ३२ अनन्तकाय का श्रावकों को त्याग करना चाहिंये। इनके नाम हैं—

२२ अभक्ष्य

१ बड़ के फल, २. पीपल के ३ पिलंखण पीलु के फल, ४ कठुम्बर के फल, ५ गूलर के फल (इन पाँच जाति के फलों में बहुत सूक्ष्म त्रस होते हैं), ६ मदिरा (शराब) ७ माँस, ८ मधु (शहद), ९ मक्खन, १० बरफ, ११ विषैली चीजें अफीम आदि. १२ ओले (जो बरसात में पड़ते हैं), १३ मट्टी (सचित्त), १४ रात्री

भोजन, १५ बहुबीजे फल, १६ संधान (आचार), १७ द्विदल (कच्चे दूध दही और कच्ची छाँछ के साथ कोठर मुँगी, चने, उड़द या इनकी दाल आदि खाना), १८ बैंगण, १६ तुच्छ फल (जिसमें खाने का भाग कम होवे और फेंकने का अधिक होवे) २० अज्ञात फल (जिसको कोई भी न जानता हो). २१ चलित रस (जिस चीज का स्वाद बिगड़ जाय) जैसे बासी दाल, चावल, पूरी कचौड़ी रोटी सीरा लापसी आदि और २२ अनन्तकाय।

३२ अनन्तकाय

१ सूरणकन्द २ वज्रकन्द ३ हरी हल्दी ४ शतावरी (सतावर बेल यह औषधी के काम में आती है) ५ हरी कचूर ६ अदरक ७ विरयाली कन्द (सोंफ की जड़) ८ कुँवारी (कुँवारपाठा), ६ थोर, १० हरी गिलोय, ११ लहसन, १२ बांसकरेला १३ गाजर १४ लूवी की भाजी।

१५ लोढ़िया की भाजी, १६ गिरीकरनी (कच्छ देश में प्रसिद्ध हैं), १७ पत्तों के कुंपल, १८ खरसुआ कन्द (कसेरू), १६ थेगी २० हरा मोथा, २१ लवण वृक्ष की छाल, २२ बिलहुड़ा, २३ अमृत बेल, २४ कांदा--मूलो, २५ छत्रपोट, (पह बहेड़े) २६ विदल अंकुर, २७ बथवे की भाजी, २८ बाल, २६ पालक, ३० मुलायम इमली, ३१ आलूकन्द और ३२ पिंडालू।

इस सातवें व्रत के २० अतिचार

१. सचित्ताहार—सचित का त्यागी श्रावक अनुपयोग से सचित वस्तु मुख में डाल लेवे या खा लेवे।

२. सचित प्रतिबद्धाहार--सचित से मिश्रित वस्तु मुख में डाल लेवे या खा लेवे।

३. अपक्व औषध्याहार--ठीक न पकी हुई वस्तु मुख में डाले या खा लेवे।

४. दुष्पक्कऔषध्याहार—अध पकी वस्तु आधी पकी या न पकी खा लेवे ।

५. तुच्छौषधी भक्षण—तुच्छ वस्तु को खाना । यह पांच अतिचार और १५ कर्मादान के १५ अतिचार होने से इस व्रत के बीस अतिचार हुए ।

८ अनर्थ दण्ड विरमण व्रत

बिना कारण निरर्थक पाप लगे ऐसे कामों से बचना चाहिये । अपने शरीर या सगे सम्बन्धियों के लिये बिना कारण ही पाप के काम करना (हिंसा आदि के काम बिना प्रयोजन करना) वृक्ष की शाखायें काटना या जहां हिंसा का कार्य होता है वहां देखने के लिये जाना, हिंसक जनों को जान बूझ करके शस्त्रादि का देना मन में बुरे विचार करना ये सब कार्य दण्ड में सम्मिलित हैं इसलिये इन कामों से दूर रहना चाहिये ।

नाटक, चेटक, सिनेमा, हाथी, भैंस, सांड, मुरगे आदि की लड़ाई देखने जाना ये भी अनर्थ दंड में सम्मिलित हैं ।

इस आठवें व्रत के पाँच अतिचार

१. कंदर्प—विषय, विकार बढ़े ऐसे हास्यादिक वचन बोलना या कुचेष्टायें करना ।

२. कौकुच्य—भृकुटि, नेत्र, हाथ, पांव आदि से विट पुरुष भांड़ की भाँति हास्य जनक कामोद्दीपक चेष्टायें करना ।

३. मौखर्य—असभ्य सम्बन्ध रहित यथा तथा बोलना और किसी की गुप्त बात प्रकट कर देना ।

४. अधिकरणता—शस्त्रादि तैयार करा कर रख लेना अथवा अपने काम में आवे उससे अधिक हल, धनुष, बाण और शस्त्र आदि का संग्रह करके रख लेना ।

५. भोगोपभोगरिक्तता—अपने भोग में या उपभोग में आने वाली चीजों से अधिक रख लेना।

६ सामायिक व्रत

राग द्वेष से रहित होकर सब जीवों पर समभाव रख के एकान्त स्थान में बैठकर दो घड़ी ४८ मिनट तक धर्म ध्यान स्वाध्याय करना या माला--जप करना। सामायिक में श्रावक साधुवत् होता है। श्रावक को हमेशा कम से कम सामायिक तो जरूर करना चाहिये कदाचित हमेशा न बन सके तो महीने में या वर्ष में बने उतनी सामायिकें करें। जितनी सामायिक करनी हों याददास्त के लिये उनका नोट कर लेना चाहिये कि महीने, या एक वर्ष भर में इतनी समायिकें तो अवश्य करूंगा।

इस नवमें व्रत के पांच अतिचार

१. मनोदुष्प्रणिधान—मन में कुविल्प करना, घर, हट्टी दुकान आदि की चिन्ता करना।

२. वाग दुष्प्रणिधान—कर्कश कठोर पापकारी वचन बोलना।

३. काय दुष्प्रणिधान—शरीर हाथ पांव को हिलाते रहना।

४. अनवस्थान दोष—सामायिक का टाइम पूरा हुए बिना सामायिक पार लेना।

५. स्मृतिविहीन दोष—निद्रा लेना, प्रमाद से सामायिक किया या नहीं ऐसा संदेह हो जाना, सामायिक लेने का टाइम भूल जाना या पारना भूल जाना।

१० देशावकासिक व्रत

छटे दिक् परिमाण व्रत में जो दिशाओं में परिमाण की विशालत अधिक छूट रखी है वह यावज्जीव तक के लिये है,

उसको हमेशा संक्षिप्त अर्थात् कम कर लेना चाहिए। इस व्रत का यही तात्पर्य है। सातवें व्रत में बतलाये हुए चौदह नियमों को भी हमेशा धार लेना चाहिए परन्तु आज कल परंपरा से १० सामायिक दिन भर में कर लेने सुबह शाम के दो पडिक्कमणे और आठ सामायिक को देशावकासिक व्रत कहते हैं। यह व्रत उपवास, आयंबिल, नीव तथा एकासन से हो सकता है। गमनागमन आने-जाने की हद बांध लेनी चाहिए जैसे कि आज मैं उपाश्रय या घर के सिवाय कहीं नहीं जाऊंगा। ये व्रत हमेशा नहीं हुआ करते। वर्ष भर में इतने देशावकाशिक करूंगा, याददास्ती के लिए नोट कर लेना चाहिए।

इस दशवें व्रत के पाँच अतिचार

१. आनयन प्रयोग—इस दशवें व्रत में खुली रखी हुई भूमि के बाहर से किसी दूसरे के साथ कोई चीज मंगवा लेना।

२. प्रेषण प्रयोग—नियमित भूमि के बाहर दूसरे किसी के साथ कोई चीज भेजना।

३. शब्दानुपात—खुंखारादि शब्द करके किसी आदमी को बुला कर नियमित भूमि के बाहर काम करवा लेना।

४. रूपानुपात—इसी प्रकार अपना रूप दिखा कर इशारे से किसी को बुलाकर उससे काम करवा लेना।

५. पुद्गल प्रक्षेप—कङ्कर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाकर उससे काम करवा लेना।

११ पौषध व्रत

जिसके द्वारा धर्म पुष्ट हो उसको पौषध व्रत कहते हैं। यह पौषध चार पहर या आठ पहर का होता है यानी चार या आठ

पहर तक धर्म स्थान में बैठ कर साधुवत् धार्मिक क्रिया-कांड करना।

पौषध व्रत के चार प्रकार

१. आहार पौषध—उपहास, आयंबिल, नीवी, एकासणा की तपश्चर्या करना।

२. शरीर सत्कार पौषध—शरीर संबन्धी सत्कार करना। स्नान, तेल मर्दन, आभूषण आदि किसी प्रकार का शृङ्गार न करना।

३. अव्यापार पौषध—किसी प्रकार का सांसारिक व्यापार काम न करना।

४. ब्रह्मचर्य पौषध—ब्रह्मचर्य पालना।

इसमें पिछले तीन प्रकार का पौषध व्रत सर्वथा करने का होता है और आहार पौषध सर्वथा अथवा देश से भी हो सकता है। चौविहार उपवास व्रत करना यह सर्वथा आहार पौषध और तिविहार उपहास व्रत या अयंबिल आदि करना यह देश पौषध कहा जाता है।

इस ग्यारहवें व्रत के पाँच अतिचार

१. अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित शय्या संस्तारक--शय्या, संथारा, आसन आदि की अच्छी तरह पिडलेहणा न करना।

२. अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या संस्तारक--शैया, संथारा आसनादि को चरवला से ठीक ठीक प्रमार्जन नहीं करना।

३. अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित उच्चार प्रश्रवण भूमिक-बड़ी टट्टी लघु नीति पेशाब करने की भूमि को भली प्रकार से न देखना।

४. अप्रमार्जित दुष्पमार्जित उच्चार प्रश्रवण भूमिक--बड़ी नीति लघु नीति आदि परटने की भूमि का प्रमार्जन न करना।

५. पौषध विधि विपरीत--पौषध में खाने पीने आदि की चिन्ता करना, पौषध देर से लेना और जल्दी पारना।

१२ अतिथि संविभाग व्रत

जिन को तिथि आदि का भेद नहीं है ऐसे निस्पृही कंचन कामिनी के त्यागी पंच महाव्रत धारी मुनिराज को न्यायोपार्जित प्रासुक, एषणीय, अन्न, पानी का श्रद्धा और सत्कार पूर्वक दान देना, मुनिराज का योग न हो तो किसी व्रत धारी स्वधर्मी बन्धु को जिमा कर फिर एकासणा करना चाहिए। इस व्रत का यह आशय है कि सुपात्र की भक्ति कर भोजन करना चाहिए। यह व्रत इस प्रकार करना चाहिये कि पौषध लेकर पारणे के रोज एकासणे का पच्चक्खाण करे। आहार के समय आदर से भक्ति पूर्वक साधु महाराज को श्रद्धा से पानी बहरा कर बाद में समता पूर्वक एकासणा करे। जो जो चीज साधु महाराज ने ली हो वही चीजें अपने खाने पीने के काम में लेना या व्रतधारी साधर्मी बन्धु की भक्ति करके भोजन एकासणा करना।

इस बारहवें व्रत के पाँच अतिचार

१. सचित निक्षेपणता...साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित वस्तु को सचित वस्तु पर रख देना।

२. सचित पिधानता साधु महाराज के कल्पनीय वस्तु को सचित वस्तु से ढक देना।

३. परव्यपदेश—साधु महाराज को न देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना अथवा देने की बुद्धि से दूसरे की वस्तु को अपनी कहना ।

४. मत्सरतादान— मत्सर सहित "अभिमान से" दान देना । देखो मेरे जैसा कौन देता है ।

५. कालतिक्रम—गोचरी का समय बीत जाने पर बे-टाइम साधु महाराज को आहार पानी की विनती करना ।

सम्यक्त्व मूल बारह व्रतों के अतिचारों को समझना, समझाना परन्तु आचरना नहीं लगना नहीं ।

इन नियमों में से जिससे जितने पालें जा सकें उतने लेकर पालें ।

जैन धर्म की प्राचीनता

प्रिय पाठक गण ?

समय समय पर जैन धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में शंकाएं व्यक्त की जाती हैं। पर हम समझते हैं कि ये सब शंकाएं ऐसे ही व्यक्तियों के द्वारा की जाती हैं, जो इतिहास से अनभिज्ञ हैं। प्रत्येक इतिहासज्ञ निष्पक्ष व्यक्ति सदा से यह स्वीकार करता आया है कि जैन धर्म भारत का एक परम प्राचीन धर्म है। इस धर्म के प्रवर्तक आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभ देव जी को श्रीमद् भागवत आदि सभी पुराणों में भगवान् के २४ अवतारों में सर्वप्रथम मानव अवतार माना गया है। और इन्हीं श्री भगवान् ऋषभ देव जी के सुपुत्र श्री भरत जी के नाम पर हमारे इस महान् देश का नाम 'भारत' पड़ा है। कुछ लोगों में यह भ्रम है कि दुश्यन्त और शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर देश का नाम भारत है। पर वास्तव में दुष्यन्त से बहुत पूर्व होने वाले ऋषभ देव जी के पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर हमारे इस महान् राष्ट्र

का नाम भारत है ऐसा श्रीमद्भागवत पुराण में स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

हम समझते हैं कि जैन धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में इससे अधिक अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। बौद्ध धर्म तो निश्चित ही जैन धर्म से पर्याप्त अंशों में प्रभावित है यह निर्विवाद है। आशा है अब इस सम्बन्ध में किसी को किसी प्रकार का भ्रम नहीं रहेगा कि जैन धर्म भारत का एक अत्यन्त प्राचीन धर्म है।

